आत्मनिर्भर भारत : लोकल के लिए वोकल

भाकृअनुप ICAR

भाकृअनुप-भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान
लखनऊ 226002

ISO 9001 : 2015

आत्मनिर्भर भारत : लोकल के लिए वोकल

अजय कुमार साह
मनोज कुमार त्रिपाठी
विनय कुमार सिंह
श्वेता सिंह
ब्रह्म प्रकाश
अभिषेक कुमार सिंह

भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान
लखनऊ–226002

प्रकाशक : निदेशक, भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

उद्धरण : अजय कुमार साह, मनोज कुमार त्रिपाठी, विनय कुमार सिंह, श्वेता सिंह, ब्रह्म प्रकाश एवं अभिषेक कुमार सिंह, 2021।
आत्मनिर्भर भारत : लोकल के लिए वोकल।
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ, भारत, 116 पृष्ठ।

मुद्रण : दिसंबर 2021

सम्पादक : डॉ. अजय कुमार साह
डॉ. मनोज कुमार त्रिपाठी
डॉ. विनय कुमार सिंह
डॉ. श्वेता सिंह
श्री ब्रह्म प्रकाश
श्री अभिषेक कुमार सिंह

कॉपीराइट © : सर्वाधिकार सुरक्षित
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

ISBN : 978-81-954349-6-1

मुद्रित : माहेश्वरी प्रिंटिंग प्रेस, 289/214 मोतीनगर, लखनऊ–226004 मोबाइल : 9721505010

डॉ. अश्विनी दत्त पाठक
निदेशक

भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान
लखनऊ–226 002

ISO 9001 : 2015

प्राक्कथन

प्राचीन काल में भारत विश्व भर में सोने की चिड़िया के नाम से जाना जाता था। भारत का व्यापार दूर–दूर तक के देशों तक फैला था तथा भारत विभिन्न प्रकार के मसालों, वस्त्र आदि का निर्यात किया करता था। एक अनुमान के अनुसार पूरे विश्व का 25 प्रतिशत निर्यात भारत से ही होता था, जो आज की तुलना में अत्यधिक था। परंतु सैकड़ों वर्षों तक गुलामी की जंजीरों से जकड़े रहने के कारण तथा गलत आर्थिक नीतियों के कारण भारत ने एक स्वर्णिम परंपरा को खो दिया।

वर्ष 2020 के आरंभ में कोविड–19 महामारी ने पश्चिम के विकसित देशों सहित सम्पूर्ण विश्व को अपने खूनी पंजे में लपेट कर तबाही का ऐसा मंजर दर्शाया जिससे पूरी दुनिया एकाएक थम सी गई। लाखों लोगों की असमय काल के गाल में समा लेने वाली इस बीमारी ने अखिल विश्व को त्राहि–त्राहि करने पर मजबूर कर दिया। हमारे यहाँ एक कहावत है कि बड़ी से बड़ी त्रासदी भी अपने पीछे कोई एक सुअवसर अवश्य छोड़ जाती है। यद्यपि उस आपदा को अवसर में बदलना हमारे ऊपर ही निर्भर करता है कि हमने किस मनोयोग व मनोभाव से उसको लिया। ऐसे विकट समय में हमारे प्रधानमंत्री माननीय श्री नरेंद्र मोदी जी ने 12 मई, 2020 को हम सभी भारतीयों को "आत्मनिर्भर भारत" का मूल मंत्र देते हुए '*लोकल* के लिए *वोकल*' का नारा दिया।

'आत्मनिर्भर' का शाब्दिक अर्थ होता है स्वयं अथवा खुद पर निर्भर या आश्रित होना। आत्मनिर्भर भारत के आह्वान का अर्थ भारत को ऐसा देश बनाने की बात करना है जहाँ हमारे देश को किसी भी छोटी–बड़ी वस्तु के लिए दुनिया के किसी भी देश पर निर्भर न रहना पड़े। चाहे वो नई तकनीकी हो, इलेक्ट्रॉनिक उपकरण, दवाई, मशीनों, खाद्य पदार्थ या सैनिक हथियार हों। हमारे द्वारा प्रयोग की जाने वाली ट्रेन, हवाई जहाज़, कारें, मोबाइल, कंप्यूटर आदि हमारी आवश्यकता की सभी वस्तुएँ उच्च गुणवत्ता के साथ भारत में ही निर्मित की जाएँ जिससे हमें किसी अन्य देश से किसी भी वस्तु का आयात न करना पड़े। इस बड़े लक्ष्य को साकार करने में हर भारतवासी को योगदान देना होगा।

मुझे यह सूचित करते हुए अत्यंत हर्ष हो रहा है कि संस्थान द्वारा 16 से 17 मार्च, 2021 को संस्थान प्रांगण में *वर्चुअल* मोड पर "आत्मनिर्भर भारत : *लोकल* के लिए *वोकल*" विषय पर एक राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया। जिसमें कृषि के साथ–साथ रेलवे, रक्षा, भाषा जैसे विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत विद्वानों ने भारत को अपने–अपने कार्य क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनाने के प्रयासों एवं योजनाओं की चर्चा करते हुए अपनी कार्य योजना की रूप रेखा प्रस्तुत की। हर्ष का विषय है कि स्वतंत्रता के पश्चात भारत ने कृषि सहित विभिन्न क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रगति की। आज भारत दलहन, अरहर, जूट, दुग्ध उत्पादन में प्रथम स्थान पर, गेहूँ, चावल, मूँगफली, गन्ना, चाय, कपास, तंबाकू, आलू, प्याज, फल एवं सब्जियों में द्वितीय स्थान पर, अंडे तथा रेपसीड उत्पादन में तृतीय, कुल मांस उत्पादन में छठे तथा कॉफी उत्पादन में सातवें स्थान पर है। इस राष्ट्रीय संगोष्ठी में इन सभी विषयों पर शोध पत्र के साथ अनुभवों पर विस्तारपूर्वक चर्चा की गयी।

प्रस्तुत पुस्तक में संगोष्ठी में प्रस्तुत लेखों एवं सारांश को समाहित एवं संपादित कर प्रकाशन के रूप में प्रस्तुत किया गया है। मुझे आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि सभी पाठकों के लिए यह पुस्तक अत्यधिक ज्ञानवर्धक तथा सूचनापरक सिद्ध होगी तथा आप सभी को भारत को प्रत्येक क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनाने के लिए प्रेरित करेगी।

आपका

(अश्विनी दत्त पाठक)

डॉ. अजय कुमार साह
प्रधान वैज्ञानिक

भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान
लखनऊ–226 002

प्रस्तावना

कोरोना महामारी के कारण हुए तीसरे लॉकडाउन की समाप्ति के पांच दिन पहले अपने राष्ट्र के नाम संबोधन में माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने 'आत्मनिर्भर भारत' अभियान की शुरू करते हुए 20 लाख करोड़ रूपए के आर्थिक पैकेज की घोषणा की। यह पैकेज भारत के सकल घरेलू उत्पाद का करीब–करीब 10 प्रतिशत है जो कोविड–19 महामारी के कारण सुस्त पड़ी आर्थिक गति को तेजी प्रदान करने तथा देश के विभिन्न वर्गों के नागरिकों को रोजगार व आजीविका प्रदान करने के लिए शुरू किया गया।

जैसा कि हम सभी जानते हैं कि पिछले दो वर्षों से भारत एवं पूरा विश्व कोविड–19 की महामारी से जूझ रहा है। वर्ष 2020 में कोरोना संकट के समय पूरा देश कुछ महीनों के लिए बंद था। बाजार, उद्योग, मंडियाँ, परिवहन, यातायात सभी बंद हो गया था। उस समय जरूरी सामानों के आपूर्ति की समस्या हो गई थी, दैनिक दिनचर्या की वस्तुएं भी कैसे उपलब्ध हों, इस पर एक प्रश्न चिन्ह लग गया था। इस संकट के समय में, *लोकल* ने ही हमें बचाया और तमाम समस्याओं के बीच भी स्थानीय स्तर पर उपलब्ध संसाधनों ने हमें जीवन जीने में सहजता प्रदान की। समय ने हमें सिखाया है कि *लोकल* को हमें अपने जीवन का मूल मंत्र बनाना होगा। हमारे शास्त्रों में भी कहा गया है कि 'सर्वम् आत्म वंश सुखम्' अर्थात जो हमारे पास या वश में हैं, जो हमारे नियंत्रण में है वही सुख है। आत्मनिर्भरता हमें सुख और संतोष देने के साथ–साथ सशक्त भी करती है। अतीत में जाएं तो पायेंगे कि स्वदेशी के सिद्धांत को समझाते हुए महात्मा गांधी ने कहा था कि अगर हम स्वदेशी के सिद्धांत का पालन करें तो भारत के हर एक गाँव को हम स्वावलंबी एवं आत्मनिर्भर बना सकते हैं। यहां भी गांधी जी ने *लोकल* के लिए *वोकल* पर ही जोर दिया था और हमें यह भी पता होना चाहिए कि अगर 21वीं सदी को भारत की सदी बनाना है तो "आत्मनिर्भर भारत" राष्ट्र का मूल मंत्र होना ही चाहिए।

इन सभी तथ्यों पर अगर गंभीरता से विचार किया जाए तो आत्मनिर्भरता बुद्धिजीवी वर्ग के लिए सबसे ज्वलंत एवं समसामायिक विषय है जिस पर शोध संस्थानों, विकास विभागों, उद्योगों, वैज्ञानिकों, प्रबंधकों, स्वयंसेवी संस्थाओं, जनसुविधाओं से संबंधित सभी विभागों इत्यादि को एक मंच पर एकत्रित होकर परिचर्चा करने की जरूरत है। किस प्रकार संबंधित विभाग अपने कार्यक्षेत्र में इस विषय पर नवोन्मेषी विचारों के साथ आगे बढ़ रहा है। इन सभी पहलुओं पर विचार–विमर्श करने के लिए "आत्मनिर्भर भारतः *लोकल* के लिए *वोकल*" विषय पर एक राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन मार्च, 2021 में संस्थान के राजभाषा अनुभाग द्वारा किया गया। इस संगोष्ठी में चार तकनीकी सत्रों में चार उप–विषयों पर चर्चा की गई जिसमें कुल 17 व्याख्यान विभिन्न क्षेत्रों के विद्वानों द्वारा दिए गए तथा 30 शोध सारांश प्रस्तुत किए गये। इस आयोजन का मुख्य उद्देश्य यह था कि कृषि तथा अन्य क्षेत्रों में स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत भारत किस प्रकार प्रगति के पथ पर अग्रसर हुआ है। इस संगोष्ठी के आयोजन के पीछे एक कर्तव्य बोध यह भी था कि वर्तमान स्थितियों का आंकलन करते हुए भविष्य की रणनीति पर चर्चा हो जिससे हम पूर्णरूपेण आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर हों।

कृषि, रेलवे, सुरक्षा, तकनीक एवं भाषा के विभिन्न पहलुओं पर देश के अनेकों शोध एवं विकास संस्थानों से वैज्ञानिकों, प्रशासकों तथा विद्वानों ने इस राष्ट्रीय संगोष्ठी में अपने शोध पत्र प्रस्तुत किए। मेरे लिए अत्यन्त गर्व का विषय है कि मुझे इस राष्ट्रीय संगोष्ठी को आयोजित करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ तथा आत्मनिर्भर भारत के विभिन्न आयामों पर गंभीर चर्चा में सम्मिलित होने का अवसर प्राप्त हुआ। परिचर्चा उपरान्त उभर कर आई सूचनाओं को संकलित एवं संपादित कर पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। इस पुस्तक में विभिन्न विषयों पर प्रस्तुत रचना एवं ज्ञान सभी पाठकों के लिए अत्यंत लाभकारी एवं ज्ञानवर्धक सिद्ध होगा। मुझे यह विश्वास है कि इस पुस्तक में प्रकाशित आलेख कृषि, रेलवे, सुरक्षा, सूचना प्रौद्योगिकी, शिक्षा व्यवस्था एवं राजभाषा के क्षेत्र में कार्यरत कार्मिकों को आत्मनिर्भर भारत में अपने सकारात्मक योगदान के लिए प्रेरित करेंगे।

(अजय कुमार साह)

विषय सूची

1.	दलहनी फसलों में आत्मनिर्भरता से आगे बढ़ता भारत	1
2.	फलोत्पादन द्वारा कैसे बना सकते हैं आत्मनिर्भर भारतः सम्भावनाएं एवं कार्ययोजना	7
3.	भारतीय अन्तर्स्थलीय मात्स्यिकी के संरक्षण व संवर्धन की आवश्यकता एवं आय वृद्धि, उद्यमशीलता, आजीविका और आर्थिक उत्थान की संभावनाएं	14
4.	आत्मनिर्भर कृषि के लिए फसल बीमा योजना की आवश्यकता	16
5.	आत्मनिर्भरता में भारतीय रेलवे का योगदान	19
6.	आत्मनिर्भर भारत हेतु सुरक्षा बलों का योगदान	22
7.	रासायनिक खेती का स्वस्थ विकल्प है प्राकृतिक खेती	25
8.	शुष्क क्षेत्रीय बागवानी : आत्मनिर्भर भारत की ओर बढ़ते कदम	33
9.	प्रतिस्पर्धा के वैश्विक परिदृश्य में हिन्दी भाषा और बोलियां – यथार्थ और चुनौतियां	40
10.	आत्मनिर्भरता में बागवानी फसलों का योगदान	44
11.	आत्मनिर्भर भारत एवं कृषि : दुग्ध, पशुपालन तथा मांस–मछली उत्पादन में आत्मनिर्भरता	46
12.	आत्मनिर्भर भारत : *लोकल* के लिए *वोकल* स्वदेशी तकनीक द्वारा आर्थिक वृद्धि	48
13.	एक जिला एक उत्पाद योजनाः कौशल विकास, रोजगारपरक और आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ते कदम	50
14.	खाद्य तथा पोषण सुरक्षा हेतु कदन्न का मूल्य–संवर्धन एवं उद्यमिता विकास	57
15.	हिन्दी के लोक कवि घाघ और भड्डरी की कृषि सम्बंधी कहावतें आत्मनिर्भर भारत हेतु आज भी प्रासंगिक	60
16.	दलहन एवं तिलहन के उत्पादन द्वारा आत्मनिर्भर कृषि और आत्मनिर्भर किसान	64
17.	गन्ना उत्पादन की वैज्ञानिक तकनीक	65
18.	गन्ना आधारित फसल चक्र में कृषि आय बढ़ाने हेतु कालमेघ की वैज्ञानिक खेती	67
19.	आत्मनिर्भर भारत के अभ्युदय में उन्नत गन्ना किस्मों एवं नवीन उत्पादन प्रौद्योगिकी कार्यक्रमों का समग्र प्रभाव	69
20.	गन्ने द्वारा *जैवइथेनॉल* उत्पादन से ऊर्जा उत्पादन में भी लाई जा सकेगी आत्मनिर्भरता	72
21.	गन्ना फसल अवशेष प्रबंधन का मशीनीकरण	75
22.	चुकंदर बीज से चीनी तक की तकनीक	76
23.	गुड़ के मामले में आत्मनिर्भर भारत विदेशों में कर रहा भारी मात्रा में निर्यात	79
24.	भाकृअनुप–राष्ट्रीय अंगूर अनुसंधान केंद्र द्वारा विकसित अंगूर की किस्में	80

25.	*ड्रैगन फ्रूट* अर्थात कमलम्: पथरीली भूमि तथा सूखा क्षेत्र के लिए एक उपयुक्त फसल	82
26.	आलू "भविष्य का भोजन"	83
27.	कोरोना काल में प्रवासी मजदूरों के स्व–रोजगार हेतु कौशल विकास में राजस्थान के कृषि विज्ञान केन्द्रों का योगदान	84
28.	आत्मनिर्भर भारत ही बनाएगा गरीबी एवं बेरोजगारमुक्त समृद्ध भारत	85
29.	खाद्य, पोषण एवं आजीविका सुरक्षा में आत्मनिर्भरता लाने हेतु कृषि का महत्व	87
30.	फसल विविधीकरण से आत्मनिर्भरता की ओर	88
31.	प्राकृतिक खेती से आर्थिक, स्वास्थ्य एवं सामाजिक सुरक्षा	89
32.	कृषि में भारत को आत्मनिर्भर बनाने के उपाय	91
33.	आत्मनिर्भर भारत में खाद्य स्वावलंबन हेतु कृषि अनुसंधान की भूमिका	96
34.	महिला सशक्तिकरण–आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ते कदम	99
35.	ग्रामीण महिलाओं का बागवानी के माध्यम से सशक्तिकरण	102
36.	ग्रामीण महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में पहल	105
37.	आत्मनिर्भर भारत एवं कृषि: दुग्ध, पशुपालन तथा मांस–मछली उत्पादन में आत्मनिर्भरता	106
38.	आत्मनिर्भर भारत की प्रमुख कड़ी है आत्मनिर्भर किसान	107
39.	आत्मनिर्भर भारत की ओर बढ़ते कदम	108
40.	स्वदेशी शूकर पालन से किसानों में आत्मनिर्भरता एवं आर्थिक समृद्धि	110
41.	आत्मनिर्भर भारत की आधारशिला हैं हमारे गाँव	111
42.	रागी और सहजन आधारित पौष्टिक सत्तू का विकास और सुदृढ़ीकरण	113
43.	आत्मनिर्भर भारत बनाने में हम सबको देना होगा अपना–अपना यथासंभव योगदान	114
44.	दालों के जैवसंवर्धन द्वारा पोषण सुरक्षा में आत्मनिर्भरता	115

दलहनी फसलों में आत्मनिर्भरता से आगे बढ़ता भारत

नरेंद्र प्रताप सिंह, आदित्य प्रताप एवं हसमत अली
भाकृअनुप –भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर

भारत में अधिसंख्य लोगों के मुख्य रूप से शाकाहारी होने के कारण यहां पर दलहनी फसलों का विशेष महत्व है। अपने पोषण से युक्त दानों के साथ दलहनी फसलें विश्व से भुखमरी तथा अल्प पोषण की स्थितियों को मिटाने में कारगर है। भोजन में दलहनी फसलें प्रोटीन का एक मुख्य स्रोत हैं। इसके साथ ही दलहनी फसलें वायुमंडल की नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करके मृदा की उर्वरता को बढ़ाती हैं। दलहनी फसलों को न्यूनतम आदानों के साथ तथा कम सिंचाई की अवस्था में भी सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। प्रोटीन के साथ अन्य पोषक तत्व जैसे कार्बोहाईड्रेट, खनिज पदार्थ, विटामिन व अन्य पोषक तत्व भी प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। लौह तत्व जो कि एनीमिया रोग का नाश करनें में सहायक है, दलहनी फसलों में पाया जाता हैं (तालिका–1)। भारत एवं दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों में दालों का पोषक तत्वों तथा शाकाहारी जनसंख्या की बहुलता के कारण अन्य देशों की अपेक्षा अधिक महत्व है। अमेरिकी तथा अन्य यूरोपीय देशों में भी दालों के विभिन्न उत्पाद जैसे सूप, चटनी, बेकरी एवं ग्लुटेन मुक्त उत्पाद लोकप्रिय हैं। दालों का अधिकतम उपयोग साबुत रूप में होने के कारण, बीज एवं बीजपत्र के आकार, प्रकार, रंग और एकरूपता का बाजार भाव पर अधिक प्रभाव पड़ता है।

तालिका 1. दलहनी फसलों में पाये जाने वाले प्रमुख पोषक तत्व

दाल	ऊर्जा (किलो कैलोरी)	प्रोट्रीन (%)	कार्बोहाइड्रेट (%)	वसा (%)
चना	360	21	60.9	5.3
अरहर	335	22	57.6	1.7
मूँग	334	25	56.7	1.3
उड़द	347	24	59.6	1.4
लोबिया	323	29	54.5	1.0
मसूर	343	27	59.0	0.7
कुल्थी	330	24	56.5	1.1
मटर	315	26	56.5	1.1
राजमा	346	23	60.6	1.3
मोंठ	330	24	56.0	0.6
खेसारी	345	27	57.0	–

आज जब हमारी जरूरत लगभग 280 लाख टन दालों की है, भविष्य में 2030 तक यह लगभग 320 लाख टन तथा 2050 तक लगभग 390 लाख तक पहुंचने की संभावना है। अतः स्पष्ट है कि भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भारत को दलहन के क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनना ही होगा। भारत में विगत पाँच वर्षों में दलहन के क्षेत्रफल एवं उत्पादन में अभूतपूर्व वृद्धि दर्ज की गई है। क्षेत्रफल 235.5 लाख हे. से बढ़कर 3 करोड़ हे. तथा उत्पादन 170 लाख टन से बढ़कर 240 लाख टन तक पहुँच गया है। यानि विगत पाँच वर्षों में दलहन क्षेत्रफल में 64.5 लाख हे. की वृद्धि तथा उत्पादन में 70 लाख टन की वृद्धि हुई है। सर्वाधिक महत्वपूर्ण यह है कि गत 5 से 6 वर्षों के अंतराल पर ही हमने अपनी दलहन उत्पादकता को लगभग 140 लाख टन से बढ़ाकर 240 लाख टन तक कर लिया है जो हम सबके लिए अत्यंत गौरव का क्षण है। इसी को ध्यान में रखते हुए गत कुछ वर्षों में दलहनी फसलों के उत्थान तथा शोध कार्यों को बढ़ावा देने एवं किसानों को दलहन उगाने हेतु प्रोत्साहित करने के लिए अनेकों नीतियां बनाई गई। फलस्वरुप राष्ट्र में एक दलहन क्रांति का आगाज हुआ जिससे केवल 5 से 6 वर्षों के अंतराल में ही लगभग 100 लाख टन दलहन का उत्पादन प्रतिवर्ष बढ़ गया। इस प्रकार लगभग 2.61% की विकास दर से दलहनी फसलों के उत्थान में एक अभूतपूर्व वृद्धि दर्ज की गई। जो अथक वैज्ञानिक प्रयासों तथा नीति निर्धारकों की प्रगतिशील सोच के कारण संभव हो सकी।

पिछले दशक में देश में दालों के उत्पादन में वृद्धि (4.7% की दर से) रही जिसकी वजह से दलहन का अधिकतम उत्पादन 254.2 लाख टन तक जा पहुचा जो कि दलहन उत्पादन में आत्मनिर्भरता के बेहद करीब माना जाता है। वर्ष 2014–15 से दलहन के क्षेत्रफल में 20 प्रतिशत तथा उत्पादन में 36 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई है फलस्वरूप देश में दालों की उपलब्धता 287 लाख टन के करीब पहुँच चुकी है जो 4–5 साल पहले 220 लाख टन था। दालों की प्रति व्यक्ति उपलब्धता भी

35.4 ग्राम/व्यक्ति से बढ़कर 55.9 ग्राम/व्यक्ति तक पहुँच चुका है जो कि 52 ग्राम/व्यक्ति/दिन निर्धारित मात्रा से कहीं ज्यादा है। देश में दालों के आयात में भी लगभग 40 लाख टन की गिरावट दर्ज की गयी है। दलहनी फसलों के वार्षिक उत्पादन वृद्धि दर में 2011–15 से 2016–20 के दौरान 158% वृद्धि दर्ज की गई और वह इस समय 37 कि.ग्रा./हे./वर्ष है।

सफलता की गाथाएं

विगत एक दशक में दलहन के क्षेत्र में अनेकों ऐसी सफलताएं प्राप्त की गई जो संपूर्ण विश्व को अपनी ओर आकर्षित करती हैं। ये गाथाएं लंबे समय तक मील का पत्थर साबित होगी। इनमें से मुख्य रूप से निम्नलिखित शामिल हैं:

- फसलों की अवधि का कम करना इस दिशा में मूंग की अवधि को 75 दिन से घटाकर 55 दिन, मसूर में 140 से 120 दिन, चना में 135 से 100 दिन, तथा अल्पावधि अरहर में 140 से 120 दिन करना शामिल है।
- काबुली चना में दाने का आकार 35 ग्राम प्रति 100 दानों से बढ़ाकर 55 ग्राम प्रति 100 दाने करने में सफलता पाई गई। इसी प्रकार मसूर में दाने का आकार 3.2 ग्राम से 4 ग्राम प्रति 100 दानों तक बढ़ाया गया।
- मूंग तथा उड़द में एक साथ पकने वाली तथा पकने के उपरांत न बिखरने वाली फलियों की प्रजातियों का विकास किया गया।
- चना में उकठा रोग प्रतिरोधी तथा उच्च उर्वरता वाली भूमि हेतु ऐसी प्रजातियों का विकास किया गया जो अधिक सिंचाई तथा उर्वरता में भी बहुत अच्छी उपज दे सके।
- मटर में पकने के पश्चात भी हरे रहने वाले तथा मीठे दाने वाली प्रजातियों का विकास किया गया जिन्हें बाद में *कैनिंग* की आवश्यकता नहीं है।
- मसूर तथा चना में उच्च पोषण वाली प्रजातियों का विकास किया गया। चना में भी अधिक प्रोटीन युक्त प्रजातियां विकसित की गयी। इसी क्रम में खेसारी में कम *बीटा ओडीएपी* वाली प्रजातियां विकसित की गयीं। उपरोक्त के अतिरिक्त, भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर ने अपने सभी राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय सहयोगियों के साथ मिलकर अनेक ऐसी नई पहल कीं जिनसे भारत को दलहन के क्षेत्र में आत्मनिर्भर होने में मदद मिली। अनेकों नए शोध प्रारम्भ किये गए, इनमें मुख्य रूप से निम्नलिखित शामिल हैं:

- पूर्व प्रजनन तथा दूरस्थ संकरण के माध्यम से दलहन की वन्य प्रजातियों एवं विदेशी जननद्रव्य का प्रयोग
- जैविक तथा अजैविक तनाव प्रतिरोधकता हेतु चना एवं अरहर में जैव संवर्धित प्रजातियों का विकास
- अल्पावधि तथा ताप एवं प्रकाश असंवेदनशील जातियों का विकास
- नवीन प्रजातियों के विकास हेतु गतिमान प्रजनन अथवा *स्पीड ब्रीडिंग* का समावेशन
- चिन्हक सहायित प्रजनन द्वारा विभिन्न जैविक एवं अजैविक कारकों हेतु आण्विक प्रजनन
- अभिलेखों का डिजिटलीकरण अथवा *डिजिटलाइजेशन*
- अरहर में संकर प्रजातियों का विकास
- खरपतवार प्रबंधन, तरल जैविक खाद तथा उपज बढ़ाने हेतु *पॉलीमर* के ऊपर विशेष शोध कार्य एवं दलहनी फसलों में कटाई उपरांत प्रबंधन तथा मूल्य संवर्धन की दिशा में शोध कार्य।

अभी तक विभिन्न दलहनी फसलों में 735 से अधिक नवीन प्रजातियों का विकास किया जा चुका है जो न केवल अधिक उपज देने वाली हैं अपितु जैविक तथा अजैविक तनावों हेतु भी प्रतिरोधी है।

विगत दो दशकों में विभिन्न तरह की फसलों में प्रजाति प्रतिस्थापन दर एवं बीज प्रतिस्थापन दर को कई गुना तक बढ़ाया गया। बसंतकालीन एवं ग्रीष्मकालीन मूंग तथा उड़द को धान से परती क्षेत्रों में उनके समावेशन से दलहनी फसलों के क्षेत्रफल को बढ़ाया गया। सोयाबीन–गेहूँ तथा कपास–गेहूँ फसल प्रणालियों में दलहनी फसलों, विशेषकर अल्पावधि अरहर, उड़द एवं मूंग को समाहित करके इन फसलों का रकबा बढ़ाया गया।

वर्षा सिंचित तथा शुष्क क्षेत्रों में भी दलहनी फसलों को सहफसली के माध्यम से बढ़ावा दिया गया। धान के

परती क्षेत्रों में विशेषकर पूर्वोत्तर राज्यों में चना, मसूर एवं मटर तथा दक्षिणी राज्यों में मूंग को समाहित कर के क्षेत्रफल विस्तार किया गया। दलहनी फसलों की नवीन प्रजातियों के साथ नई कृषि पद्धतियों एवं प्रणालियों, खरपतवारनाशक, सूक्ष्म सिंचाई प्रबंधन, तथा संसाधन तथा संरक्षण तकनीकों का विकास किया गया।

दलहन उत्पादन बढ़ाने में तकनीकियों का योगदानः नई प्रजातियों का विकास

दलहनी फसलों में वर्ष 1966 के बाद से 771 उन्नतशील प्रजातियाँ विकसित की गई जो देश के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में उगाई जा रही हैं। ये सभी किस्में अधिक उपज देने के साथ साथ जैविक एवं अजैविक कारकों के प्रति अवरोधी भी है।

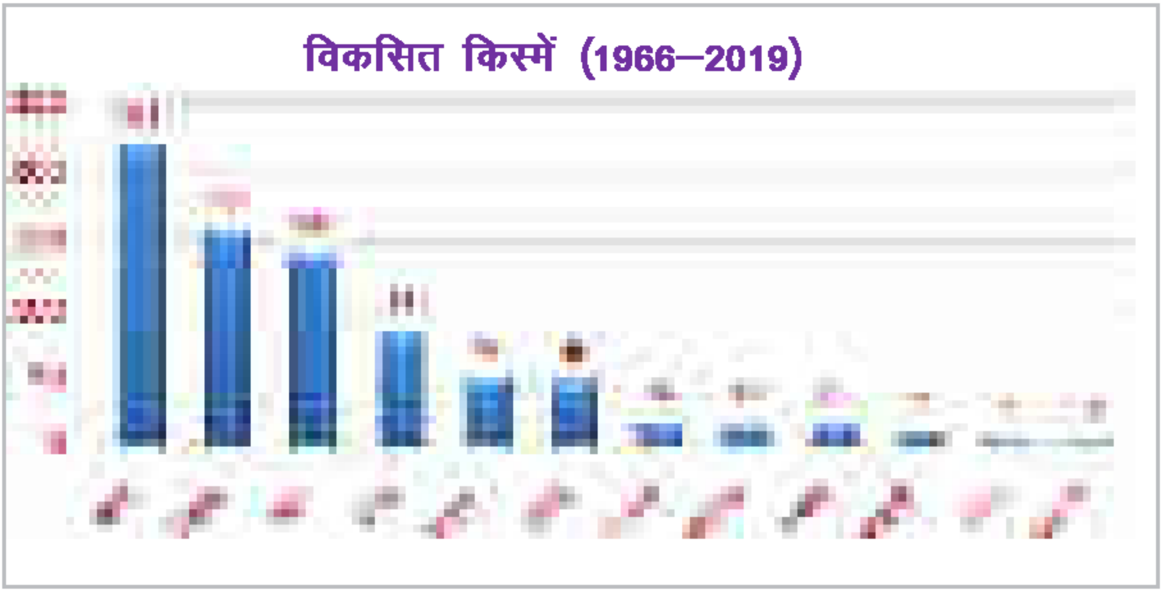

चित्र 1. भारत में उगाई जाने वाली प्रमुख दलहनी फसलें एवं उनमे विकसित की गई किस्में

कुछ प्रमुख विशेषताओं वाली दलहनी फसलों की किस्में:–

तालिका 1 : चना की किस्में

विशेषता	किस्में
जल्दी पकने वाली किस्में	जेजी 14, जाकी 9218, आरवीजी 202, आरवीजी 203, राजस, पूसा 547, जेजी 11, जेजी 16, शुभ्रा, जेजीके 1, काक 2
प्रचलित किस्में	जेजी 11, विजय, जेजी 16, जीएनजी 1581, जेजी 130
बड़े दानों वाली देशी किस्में	एमएनके 1, पीकेवी काबुली 4, फुले जी 0517 (कृपा), आईपीसीके 2004-29 (मध्य क्षेत्र); एमएनके 1 (दक्षिण क्षेत्र)
बड़े दानों वाली काबुली किस्में	जेजी 6, जेजी 14, शुभ्रा, उज्जवल
गर्मी के प्रति अवरोधी किस्में	जेजी 14 , आरवीजी 202, आरवीजी 203

विशेषता	किस्में
सूखे के प्रति अवरोधी	आरएसजी 14 (उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र), आरएसजी 888 (उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र), विजय (मध्य क्षेत्र), विकास (मध्य क्षेत्र) सीओ1 (दक्षिण क्षेत्र), आईसीसीवी 10 (दक्षिण क्षेत्र)
उकठा रोग अवरोधी	जीएनजी 1581, जेजी 16, दिग्विजय, गुजरात ग्राम 2, बीजी 391, बीजीडी 78, उज्जवल, जीएलके 26155, एचके 05-169

अरहर की किस्में

विशेषता	किस्में
शीघ्र पकने वाली किस्में	जेजी 11 (मध्य क्षेत्र), जेएससी 56 (मध्य क्षेत्र), जेजी 16 (उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र) एवं जाकी 9218 (मध्य क्षेत्र), पूसा 992, पीए 291, पीएयू 881 (उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र)
उकठा रोग अवरोधी	मारूथी, आशा, बीडीएन 2, बीएसएमआर 736, एमए 6, विपुला
बांझ रोग अवरोधी	बहार, शरद, पूसा 9, आईपीए 203, नरेन्द्र अरहर 1, एमएएल 13 (उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र), बीएसएमआर 736, बीएसएमआर 175, आशा (मध्य क्षेत्र)
उकठा एवं बांझ रोग अवरोधी	आशा, बीएसएमआर 736, बीएसएमआर 853, राजीव लोचन, बीडीएन 711

मूंग की किस्में

विशेषता	किस्में
शीघ्र पकने वाली	आईपीएम 205-7, पूसा, विशाल, सम्राट , आईपीएम 2-3, मेहा, एसएमएल 668 (उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र एवं उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र), आईपीएम 409-4
शीघ्र पकने वाली गर्मी के मौसम हेतु	एचयूएम 16, आईपीएम 410-3, आईपीएम 02-3, एसएमएल 832, पूसा 9972, एमएच 421, आईपीएम 205-7, आईपीएम 409-4
रबी में बुवाई हेतु	टीएम 96-2, डब्ल्यूजीजी 2, वम्बन 4
पीली चितेरी रोग अवरोधी	एमएच 2-15, आईपीएम 02-3, केएच 2115, पूसा 0672, आईपीएम 2-14, आईपीएम 512-1 (उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र), एचयूएम 1, जीएम 4, आईपीएम 410-3, आईपीएम 205-7 (मध्य क्षेत्र एवं दक्षिण क्षेत्र), सीओ 6, पन्त मूंग 4 (दक्षिण क्षेत्र)
चूर्णी कवक अवरोधी	टीएम 96-2, टीजेएम 3, टीएम 200-2, आईपीएम 2-14, टीएम 96-2, एलजीजी 460, एलजीजी 410 (दक्षिण क्षेत्र)
धान के बाद परती बुवाई हेतु	सीओ 7, वम्बन 3, एडीटी 3, आईपीएम 2-14

उड़द की किस्में

विशेषता	किस्में
शीघ्र पकने वाली	डब्ल्यूबीयू 109, नरेन्द्र उर्द 1, आजाद उर्द 1, ओबीजी 17, केयूजी 479, वम्बन 5, एकेयू 15
धान के बाद परती बुवाई हेतु	वम्बन 5, टीयू 40
रबी में बुवाई हेतु	एलबीजी 685, एलबीजी 752, टीयू 40
पीली चितेरी रोग अवरोधी	आईपीयू 02-43, पीयू 31, एलयू 39, केयूजी 479
चूर्णी कवक अवरोधी	वीबीजी 04-008, टीयू 40, एनयूएल 7, आईपीयू 02-43, एलबीजी 625, वम्बन 4, डब्ल्यूबीजी 26 (दक्षिणी क्षेत्र)

मसूर की किस्में

विशेषता	किस्में
छोटे दानों वाली	वीएल 126, एचएम 1, डब्ल्यूवीएल 77, पन्त मसूर 6, केएलएस 09-3
बड़े दानों वाली	वीएल 507, आईपीएल 406, पन्त मसूर 7, आईपीएल 316, शालीमार मसूर 2, आरवीएल 31, केएलबी 345, केएलबी 2008-4, आईपीएल 526
रतुआ रोग अवरोधी	वीएल 507, आईपीएल 316, आरवीएल 31, केएलबी 345, केएलबी 2008-4, केएलएस 09-3, आईपीएल 526, एचयूएल 57
उकठा रोग अवरोधी	वीएल 126, एचएम 1, आईपीएल 406, डब्ल्यूवीएल 77, पन्त मसूर 6, पन्त मसूर 7, एलएल 931, वीएल 507
शीघ्र पकने वाली	पूसा अगेती (एल 4717), आरवीएल 11-6
धान के बाद परती बुवाई हेतु	पूसा वैभव, केएलएस 218, पन्त मसूर 639, डीपीएल 62, पन्त एल 5

मटर की किस्में

विशेषता	किस्में
शीघ्र पकने वाली	आईआईएफडी 11-5, डीडीआर 27, विकास
चूर्णी कवक अवरोधी	पारस, पन्त मटर 25, प्रकाश (आईपीएफडी 1-10), एचएफपी 9907बी, पन्त मटर 42, एचएफपी 9426, आईपीएफ 5-19, टीआरसीपी-8, एसकेएनपी 04-09, एचएफपी 529, आईपीएफडी 10-12, आईपीएफडी 11-5
रतुआ रोग अवरोधी	पन्त मटर 25, प्रकाश एवं पन्त मटर 42
हरे दानों वाली	आईपीएफडी 10-12, एचएफपी 9426

लाभकारी सामान्य फसल प्रबंधन तकनीकी:

- लाभकारी फसल प्रणाली जैसे चावल–गेहूँ–मूँग, अरहर–गेहूँ, मक्का/ज्वार/बाजरा–चना/मसूर
- अधिक उपज प्राप्त करने के लिए *राइजोबियम* और *फास्फेट* घुलनशील जीवाणु (15–20 ग्राम/कि.ग्रा. की दर से) के साथ बीज टीकाकरण
- पलवार सहित संसाधन संरक्षण तकनीकी और अवशेष पुनर्चक्रण
- जनसंख्या प्रबंधन के लिये ऊंची क्यारी रोपण और जल उपयोग दक्षता में वृद्धि के *लियेरिज* एंव कूँड प्रणाली
- बीज को बोने से पहले रात भर पानी में भिगोने से 10–20 प्रतिशत उपज में वृद्धि प्राप्त होती है।
- 100 कि.ग्रा. डी.ए.पी. के साथ 20 कि.ग्रा. गंधक का आधार अनुप्रयोग एवं 15 कि.ग्रा. जस्ता/हे. के प्रयोग से उपज में 18–20 प्रतिशत वृद्धि दर्ज की गयी है।
- यूरिया/डी.ए.पी. के 2% घोल से फूल और फली बनने के समय पर्णीय छिड़काव बहुत ही ज्यादा लाभकारी सिद्ध होता है।
- एकीकृत खरपतवार प्रबंधन; खरपतवारनाशी पेन्डीमेंथलीन (1.25 कि.ग्रा./हे.) का अंकुरण से पहले + इमाजीथापर (100 ग्रा./हे.) अंकुरण के बाद प्रयोग करें।

लाभकारी सामान्य फसल सुरक्षा तकनीकी

- रोग और कीट पूर्वानुमान *मॉडल* का प्रयोग
- मृदाजनित रोगों और कीटों के नियंत्रण के लिए गर्मियों मे गहरी जुताई
- रोग के नियंत्रण के लिए रोग प्रतिरोधी किस्मों का प्रयोग
- बीजजनित रोगों के नियंत्रण के लिए थीरम + कार्बान्डेजिम (2:1) का 3 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से बीजोपचार

- मृदाजनित रोगों के जैव नियंत्रण के लिए *ट्राईकोडर्मा* + कार्बासिन (4+1 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से बीजोपचार
- कीट नियंत्रण के लिए *फेरोमोन* जाल (4–5 जाल/हे.) और *ट्रैप* फसलों का प्रयोग
- सूत्रकृमि के नियंत्रण के लिए नीम बीज करनल पाउडर का 50 कि.ग्रा./हे. की दर से प्रयोग।

नीतिगत प्रयास

राष्ट्र में दलहन की उत्पादकता एवं उपलब्धता बढ़ाने हेतु गत कुछ वर्षों में अनेक परियोजनाएं एवं नीतियों पर कार्य किया गया। दलहनी फसलों पर न केवल न्यूनतम समर्थन मूल्य घोषित किए गए अपितु समय–समय पर इन पर लागत मूल्य के हिसाब से संशोधन एवं बोनस की व्यवस्था भी की गई। न्यूनतम समर्थन मूल्य पर खरीदारी सुनिश्चित करने हेतु राष्ट्र में *बफर स्टॉक* की स्थापना की गई। यही नहीं, दलहन का आयात रोकने एवं स्वदेशी फसलों को बढ़ावा देने के लिए दलहन पर आयात शुल्क में वृद्धि की गई। इसका परिणाम यह हुआ कि आज राष्ट्र में दलहन आयात अपने निम्नतम स्तर पर है जिससे लगभग ₹ 15,000 करोड़ से अधिक की भारतीय मुद्रा की प्रति वर्ष बचत हो रही है। अच्छी किस्मों एवं उच्च गुणवत्तायुक्त बीज अच्छी फसल का एक प्रमुख घटक है, इसी को ध्यान रखते हुए राष्ट्र में 150 दलहन बीज *हब* की स्थापना की गई जिनसे प्रतिवर्ष डेढ़ लाख क्विंटल उच्च गुणवत्ता युक्त बीज उपलब्ध कराया जा रहा है। इतना ही नहीं, देश में स्थापित जनक बीज उत्पादन *हब* नई एवं अच्छी प्रजातियों का जनक बीज उपलब्ध कराने में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं। विगत वर्षों में राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन, राष्ट्रीय किसान विकास योजना, 60,000 दलहन गाँव तथा त्वरित दलहन सुधार कार्यक्रम जैसी महत्वाकांक्षी परियोजनाओं से फसलों के उत्थान कार्यक्रम को अभूतपूर्व गति मिली।

दलहनी फसलों के शोध कार्यक्रम को भी पिछले कुछ वर्षों में एक नई दिशा मिली है तथा नई एवं उन्नत किस्मों विकसित करने की दिशा में एक अभूतपूर्व कार्य किया गया है। गत 5 वर्षों में ही 100 से अधिक ऐसी उन्नत किस्में विकसित की गयीं जो न केवल अधिक उपज देने वाली हैं अपितु रोग एवं कीट प्रतिरोधक क्षमता लिए यह किस्में पर्यावरण के अनुकूल भी हैं। इन किस्मों को किसानों तक पहुंचाने के लिए भी अभूतपूर्व कार्य किया गया जिससे बीज प्रतिस्थापन दर बढ़कर 30% से अधिक हो गई है। दलहनी फसलों में प्रजाति प्रतिस्थापन दर 60% से अधिक है जिसके कारण हम राष्ट्र में एक दलहन क्रांति लाने में सफल हुए हैं। आज जबकि हम राष्ट्र में 240 से 250 लाख टन दलहन फसलों का उत्पादन कर रहे हैं हमें अपनी भविष्य की आवश्यकताओं की ओर भी ध्यान देना होगा। सन 2050 तक हमें 320 लाख टन दलहन की आवश्यकता होगी। इसके लिए एक वृहद कार्ययोजना बनाए जाने की आवश्यकता है। हमें ऐसी किस्मों के विकास की ओर ध्यान देना होगा जो न केवल उत्पादकता में अच्छी हों अपितु पौष्टिकता से भरपूर भी हों ताकि जनमानस को इन फसलों के माध्यम से उच्च पोषण युक्त भोजन उपलब्ध कराया जा सके। ऐसी फसल प्रणालियां विकसित करनी होंगी जिनसे भोजन की उपलब्धता के साथ–साथ मृदा उर्वरता तथा जलवायु परिवर्तन की समस्या का भी निवारण किया जा सके। यह भी एक चिंतनीय विषय है कि राष्ट्र में कुल दलहन उत्पादन का लगभग 10 से 15% उचित भंडारण तथा मूल्य संवर्द्धन के अभाव में खराब हो जाता है। अतः इस दिशा में भी सघन शोध प्रयासों की आवश्यकता है ताकि कुल दलहन उत्पादन का एक बड़ा हिस्सा खराब होने से बचाया जा सके। इसके साथ ही हमें कृषि लागत मूल्य कम करने की दिशा में भी प्रयास करने होंगे।

फलोत्पादन द्वारा कैसे बना सकते हैं आत्मनिर्भर भारतः सम्भावनाएं एवं कार्ययोजना

विशाल नाथ

भाकृअनुप– राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुजफ्फरपुर

बागवानी फसलें, आमदनी बढ़ोत्तरी के साथ–साथ स्वस्थ एवं आत्मनिर्भर भारत बनाने की दिशा में अपना योगदान देने के लिए तत्पर हैं। देश में पैदा की जाने वाली फल, सब्जी, मसाले, फूल एवं अन्य फसलें उत्पादन और उत्पादकता के क्षेत्र में कीर्तिमान स्थापित कर रही हैं और देश में पोषण सुरक्षा को भी संबल प्रदान करती आ रही हैं जिसमें फलोत्पादन का एक विशिष्ट स्थान है। वर्तमान समय में देश के अन्दर प्रति वर्ष 3200 लाख मीट्रिक टन बागवानी फसलों का उत्पादन हो रहा है। जिसमें लगभग 31 प्रतिशत की भागीदारी केवल फल फसलों की ही है। फल अनेक विटामिन, खनिज तत्व एवं गुणकारी अवयवों द्वारा स्वस्थ भारत के निर्माण में अपना योगदान दे रहे हैं। इनके व्यापार और निर्यात से किसानों की आमदनी भी दिन प्रतिदिन बढ़ रही है। अतः अद्यतन वैज्ञानिक ज्ञान के उपयोग और योजनाबद्ध क्रियान्वयन द्वारा फलोत्पादन आत्मनिर्भर भारत के निर्माण में एक सशक्त विकल्प सिद्ध हो सकता है। वर्तमान लेख में विभिन्न फल फसलों की देशव्यापी सम्भावनाओं और कार्ययोजना के प्रारूप पर प्रकाश डाला गया है जिससे भारत की आत्मनिर्भरता को बल मिलेगा।

फल उत्पादन में भारत अग्रणी देश है तथा विश्व में चीन के बाद क्षेत्रफल के दृष्टिकोण से सबसे बड़ा राष्ट्र है। आंकड़ों के अनुसार (वर्ष 2017–18) वर्तमान समय में भारत के सभी राज्यों को मिलाकर लगभग 65.1 लाख हे. क्षेत्रफल पर फलों की खेती द्वारा प्रति वर्ष 973.6 लाख टन फल उत्पादन हो रहा है। मौजूदा समय में फलों की उत्पादकता 14.59 टन/हे. है तथा प्रति व्यक्ति उपलब्धता लगभग 200 ग्राम/दिन हो गयी है। इन उपलब्धियों के कारण देश की बढ़ती हुई जनसंख्या को शुद्ध फल उपलब्ध कराने तथा उनके प्रसंस्कृत उत्पाद तैयार करने के क्षेत्र में रोजगार सृजन की अपार सम्भावनाएं देखी जा रही हैं जो भारत को आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर करेगी। अतः आवश्यकता इस बात की है कि फल उत्पादन के द्वारा भविष्य में एक स्वस्थ और आत्मनिर्भर भारत का सपना देखा जाए और उसे पूरा करने का प्रयास पूर्ण मनोयोग से किया जाए। देश में पोषण सुरक्षा हेतु ताजे फलों एवं मूल्य संवर्धित पदार्थो की बढ़ती मांग की पूर्ति कैसे हो, यह विचारणीय विषय है। किसानों की आय बढ़ाने के विकल्प के रुप में फल उत्पादन एवं विपणन, ग्रामीण क्षेत्रों में लघु उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए फलोत्पादन से जुड़े उपादानों की इकाईयों की स्थापना, रोजगार के अधिक अवसर उपलब्ध करवाने हेतु विशेष प्रशिक्षण और आधारभूत संरचना विकास पर बल देकर यह कार्य सम्भव किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, अद्यतन वैज्ञानिक ज्ञान एवं नई शोध उपलब्धियों जैसे–*सेंसर* आधारित तकनीक, ड्रोन उपयोग, *डिजीज* डायग्नोस्टिक तकनीक, *टिश्यू कल्चर* द्वारा पौध बनाना, सघन बागवानी, छत्रक प्रबंधन, बूंद–बूंद सिंचाई के साथ उर्वरकों का प्रयोग, जैव कीटनाशकों का उपयोग, *स्मार्ट पैकेजिंग*, प्रसंस्करण में *ऑटोमेशन*, *ई–मार्केटिंग* आदि के सफल समन्वयन द्वारा फल उत्पादन और रोजगार सृजन को बढ़ावा देने जिसकी अपार संभावनाएं भी देश में मौजूद हैं, आत्मनिर्भर भारत का सपना संजोया जा सकता है।

भारत में बागवानी विकास की प्रक्रिया अत्यन्त रोचक रही है। देश की आजादी से पूर्व सन् 1905 में देश में छह कृषि महाविद्यालयों की स्थापना कोयम्बटूर, कानपुर, लायलपुर (अब पाकिस्तान में), नागपुर, पुणे और साबौर में की गयी थी जहां पर फल वृक्षों पर शोध कार्य प्रारम्भ किए गये। इसके बाद सन् 1936 में कन्नूर (कर्नाटक) में फलों पर आधारित प्रसंस्करण एवं शोध केन्द्र की स्थापना की गयी। आज देश में फल वृक्षों के महत्व को समझते हुए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के अधीन पांच केन्द्रीय शोध संस्थान एवं उनसे संबंद्ध क्षेत्रीय शोध केन्द्र तथा चार राष्ट्रीय अनुसंधान केन्द्र फल वृक्षों पर शोध, विकास एवं प्रचार–प्रसार का कार्य कर रहे हैं। अखिल भारतीय परियोजनाओं के अन्तर्गत क्षेत्रीय समस्याओं के समाधान

हेतु देशव्यापी कार्य हो रहा है। इसके अतिरिक्त, देश में बागवानी के सात विश्वविद्यालय एवं 17 संकायों में भी फल वृक्षों पर शोध कार्य किया जा रहा है। देश के अधिकांश कृषि विश्वविद्यालयों एवं अन्य विश्वविद्यालयों में भी फल विज्ञान पर अलग से विभाग कार्यरत हैं, जहां पर फल वृक्षों के उत्पादन, उत्पादकता एवं गुणवत्ता के अनेक विषयों पर शोध किया जाता है। केन्द्रीय कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार के अधीन राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड, गुरुग्राम एवं राज्य सरकारों के अधीन बागवानी निदेशालय भी फल वृक्षों के शोध एवं प्रसार कार्य को बढ़ावा दे रहे हैं ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् खाद्यान्न उत्पादन पर विशेष बल दिया गया और साठ के दशक में हरित क्रांति की सफलता से देश ने खाद्यान्न के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता प्राप्त की। इसके बाद इस बात पर विचार–विमर्श होने लगा कि खाद्य सुरक्षा के साथ–साथ प्रत्येक नागरिक को उचित पोषण भी मिले, जब भोजन में संतुलित एवं गुणवत्तायुक्त पोषण की बात की जाती है, तब बागवानी फसलें विशेषकर फल एवं सब्जियों का महत्व और भी अधिक बढ़ जाता है। भारत, विश्व का पहला देश है, जहां पर खाद्य सुरक्षा पोषण बिल पारित किया गया, जिसके तहत देश के सभी नागरिकों को भर पेट भोजन उपलब्ध करवाया जाना सुनिश्चित किया गया है और अब उन्हें संतुलित एवं पोषक तत्व उपलब्ध कराने की बारी है। संतुलित पोषण से तात्पर्य भोजन में सभी आवश्यक तत्व जैसे–प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेट, विटामिन, खनिज आदि का प्रचुर मात्रा में होना आवश्यक है। अतः अब इन्द्रधनुषी क्रांति की तरफ बढ़ना होगा। शायद इसी दृष्टिकोण से संयुक्त राष्ट्र आम सभा ने वर्ष 2020–21 को फल एवं सब्जियों का वर्ष घोषित किया था। फलों को भोजन का एक हिस्सा बना लेने से अधिकांश पोषक तत्वों की आवश्यकताओं की पूर्ति स्वतः हो जाती है। फलों में आम, पपीता, अनार, केला, सेब, खुबानी आदि विटामिन 'ए' के मुख्य स्रोत हैं तथा बारबेडोज चेरी, आंवला, नींबू, अमरुद, कीवी, स्ट्रॉबेरी, अनन्नास आदि विटामिन 'सी' के स्रोत हैं । सेब, केला, अनार, फालसा, करौंदा, शहतूत, आदि लौह खनिज तथा खुबानी, संतरा, अनन्नास, लीची, पपीता आदि में कैल्शियम भरपूर मात्रा में पाया जाता है । इसके अतिरिक्त, फलों के सेवन से शरीर में रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है एवं विभिन्न रोगों की रोकथाम में सहायता मिलती है जिससे स्वस्थ शरीर और प्रखर बुद्धि का विकास होता है। उदाहरण के लिए खजूर, केला, पपीता आदि के सेवन से तुरंत ऊर्जा का संचार होता है । विटामिन 'ए' से परिपूर्ण फलों के सेवन से आँख की रोशनी तेज होती है और त्वचा एवं प्रजनन संबंधी विकार दूर होते हैं, तथा शरीर का सम्पूर्ण विकास होता है। इसी प्रकार विटामिन 'सी' से धनी फलों के सेवन से सर्दी–जुकाम की समस्या से छुटकारा मिलता है। लौह तत्व वाले फलों के सेवन से खून की कमी (रक्त अल्पता) दूर होती है तथा प्रचुर मात्रा में कैल्शियम वाले फलों के सेवन से हड्डियां मजबूत होती हैं एवं दांतों की समस्या से निजात मिलता है। फलों में एंटीऑक्सीडेंट भी प्रचुर मात्रा में मिलता है, जिसके कारण विभिन्न रोगों के समाधान में लाभ मिलता है ।

फलोत्पादन में भारतीय परिदृश्य

भारत एक अग्रणी फल उत्पादक देश है एवं कुछ फल वृक्ष जैसे–आम, जामुन, आंवला, बेर, बेल, केर, करोंदा, फालसा, कैंथ आदि भारत के देशज हैं। भारत में फल उत्पादन वर्ष 1950–51 से वर्ष 2017–18 तक लगभग 11 गुना बढ़ गया है। देश में फल उत्पादन के अन्तर्गत क्षेत्रफल एवं उत्पादन लगभग लगातार बढ़ता जा रहा है। वर्ष 2017–18 के आंकड़ों के अनुसार भारत में 65.1 लाख हे. भूमि पर फल वृक्षों की खेती हो रही है, जिससे 973.6 लाख टन फलों का प्रति वर्ष उत्पादन मिल रहा है। वर्तमान में फल की उत्पादकता 14.95 टन प्रति हे. है तथा इसकी सकल उपलब्धता 200 ग्राम/व्यक्ति/दिन हो गई है। देश के प्रमुख फल आम, केला, नींबूवर्गीय फल, पपीता, अमरुद, सेब, अनार, अंगूर, चीकू, अनन्नास, लीची आदि हैं। इनमें मुख्य भाग केला व आम का है, जो कुल उत्पादन में 54.7 प्रतिशत तक भागीदारी रखते हैं। भारत में उगाये जाने वाले कुछ फल वृक्षों जैसे–आम, अंगूर, अनार, केला, पपीता, चीकू, आदि की उत्पादकता विश्व की औसत उत्पादकता से या तो अधिक है या उसके समकक्ष है ।

प्रमुख फल उत्पादक प्रदेशों में, उत्तर प्रदेश में आम, अमरुद एवं आंवला का उत्पादन सबसे ज्यादा होता है जबकि आंध्र प्रदेश में केला, पपीता एवं मौसम्बी का उत्पादन सर्वाधिक होता है। इसी प्रकार अंगूर एवं अनार का महाराष्ट्र में, चीकू एवं नींबू का गुजरात में

तालिका 1. विभिन्न फलों का उत्पादन करने वाले प्रमुख प्रदेश, अधिकतम एवं न्यूनतम उत्पादकता वाले प्रदेशों के बीच का अंतर

फल	अधिकतम उत्पादन		अधिकतम उत्पादकता		न्यूनतम उत्पादकता		अन्तर (टन/हे.)
	प्रदेश	उत्पादन (मीट्रिक टन)	प्रदेश	उत्पादकता (टन/हे.)	प्रदेश	उत्पादकता (टन/हे.)	
आम	उत्तर प्रदेश	4551.81	राजस्थान	17.64	हिमाचल प्रदेश	0.75	16.83
अमरुद	उत्तर प्रदेश	928.44	आंध्र प्रदेश	24.12	अरुणाचल प्रदेश	1.89	22.23
पपीता	आंध्र प्रदेश	1687.22	आंध्र प्रदेश	93.72	सिक्किम	0.74	92.98
अंगूर	महाराष्ट्र	2286.44	पंजाब	28.67	राजस्थान	1.33	27.34
केला	आंध्र प्रदेश	5003.07	मध्य प्रदेश	69.54	सिक्किम	2.90	66.64
अनार	महाराष्ट्र	1789.46	तमिलनाडु	23.39	हिमाचल प्रदेश	1.14	22.25
संतरा	मध्य प्रदेश	2103.64	पंजाब	23.40	सिक्किम	1.45	21.95
मौसम्बी	आंध्र प्रदेश	2003.11	आंध्र प्रदेश	24.17	हिमाचल प्रदेश	1.53	22.64
नींबू	गुजरात	605.62	कर्नाटक	23.37	हिमाचल प्रदेश	0.58	22.79
अनन्नास	पश्चिम बंगाल	345.15	कर्नाटक	62.42	सिक्किम	3.21	59.21
चीकू	गुजरात	326.36	तमिलनाडु	29.50	हिमाचल प्रदेश	1.50	28.00
आंवला	उत्तर प्रदेश	384.34	तमिलनाडु	20.56	ओडिशा	0.36	20.20

तथा संतरा मध्य प्रदेश में एवं अनन्नास पश्चिम बंगाल में सबसे ज्यादा पैदा होता है । सारणी–1 में दिए गए आंकड़ों से यह स्पष्ट है कि अमरुद, पपीता एवं मौसम्बी की उत्पादकता आंध्र प्रदेश में सबसे ज्यादा है, जबकि अनन्नास एवं नीबू की उत्पादकता कर्नाटक में सबसे अधिक है। इसी तरह अनार, चीकू, आंवला की उत्पादकता तमिलनाडु में सबसे अधिक होती है, जबकि अंगूर एवं किन्नू की उत्पादकता पंजाब में तथा केलों की उत्पादकता मध्य प्रदेश में सबसे ज्यादा है।

विश्व पटल पर फलों के उत्पादन में भारत का प्रमुख स्थान है । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद विभिन्न स्तर पर किए गए संयुक्त प्रयासों के फलस्वरुप देश में सुनहरी क्रांति परिलक्षित हुई है। यह क्रांति बागवानी में नये– नये अनुसंधानों जिनमें उन्नतशील प्रजातियों का विकास, कलमी पौधों का रोपण, समस्याग्रस्त भूमि एवं जैविक कारकों के लिए मूलवृंतो का प्रयोग, पौधों की संघाई व काट–छांट द्वारा छत्रक प्रबंधन, सघन बागवानी, बूंद–बूंद विधि से सिंचाई एवं उसके साथ उर्वरकों के अनुप्रयोग, उचित पोषण आदि से संभव हुआ है। कीट एवं रोगों की रोकथाम के लिए समन्वित प्रबंधन करना जरुरी है, जिसमें कीटों एवं रोगो को आर्थिक हानि स्तर से नीचे रखना होता है। इसमें प्रयुक्त तकनीकियों में जलवायु अनुसार फसल व किस्मों का चुनाव, बीजोपचार, पौध उपचार, बगीचे की गहरी ग्रीष्मकालीन जुताई, समय पर निराई–गुड़ाई, मित्र कीटों का संचरण, जैव व रासायनिक कीट व रोगनाशकों का अनुप्रयोग आदि समाहित है। फल उत्पादन में हुई अभूतपूर्व वृद्वि में उन्नत प्रजातियों का प्रमुख योगदान है। कुछ व्यावसायिक फल वृक्षों की उन्नतशील प्रजातियों को सारणी–2 में दर्शाया गया है।

आत्मनिर्भर भारत के लिए फलों का उत्पादन जितना महत्वपूर्ण है, उतना ही महत्वपूर्ण तुड़ाई उपरांत उनका रखरखाव करना भी है। आज भी भारत में बागवानी फसलों का तुड़ाई उपरांत लगभग 20 प्रतिशत

तालिका 2. प्रमुख फल एवं उनकी किस्में

फल फसल	उन्नत किस्में
आम	लंगड़ा, चौसा, दशहरी, मल्लिका, पूसा श्रेष्ठ, पूसा पीताम्बर, पूसा अरुणिमा, पूसा सूर्या, पूसा प्रतिभा, पूसा लालिमा, अर्का अनमोल, अर्का सुप्रभात
अमरुद	इलाहाबाद, सफेदा, सरदार ग्वाबा, ललित, श्वेता, पंत प्रभाव, अर्का पूर्णा, अर्का रश्मि, अर्का किरण, अर्का मृदुला
अंगूर	फ्लेम सीडलेस, थामसन सीडलेस, रेड ग्लोब, पूसा स्वर्णिका, पूसा सीडलेस, ब्यूटी सीडलेस, पूसा नवरंग, शरद सीडलेस, बेंगलुरु ब्लू
पपीता	ळनी डयू, कुर्ग हनी डयू, वाशिंगटन, ताइवान, पूसा नन्हा, पूसा डिलिशियस, पूसा जायन्ट, पूसा मजेस्टी, कोयम्बटूर–6, कोयम्बटूर–7, सूर्या, अर्का प्रभात
नींबू	कागजी कलां, पंत लेमन 1, यूरेका, प्रमालिनी, विक्रम, साई शर्बती, फूले शर्बती, पूसा अभिनव, पूसा उदित
मौसम्बी	वाशिंगटन नेवल, माल्टा ब्लड रेड, जाफा, वेलेंसिया लेट, सथगुड़ी, हेमलिन, पूसा राउण्ड, पूसा शरद
बेर	गेला, उमरान, बनारसी कडाका, कैथली, थार सेविका, गोमा कीर्ति
बेल	एन.बी–5, एन.बी.–9, पंत शिवानी, पंत उर्वशी, पंत अपर्णा, पंत सुजाता, थार नीलकंठ, थार दिव्या, गोमा यशी
सेब	रेड डिलिशियस, गोल्डन डिलिशियस, स्टार्किंग डिलिशियस, रिचारैड, ग्रैनी स्मिथ, यलो न्यूटन, समर क्वीन, अन्ना
केला	ड्वार्फ कवेंडिस, कदली, रोबस्टा, नेपूवन, पूवन, रस्थाली
लीची	शाही, बेदाना, स्वर्ण रुपा, कलकतिया, अर्ली सीडलेस, मुजफ्फरपुर, देहरादुन, सहारनपुर, चाईना
अनार	भगवा, जालौर सीडलेस, रुबी, मृदुला, गणेश, सोलापुर लाल, सुपर भगवा

नुकसान हो जाता है। इसको बचाने के लिए आवश्यक है कि फलों की तुड़ाई उपयुक्त समय एवं उचित तरीके से करनी चाहिए। तुड़ाई उपरांत उनका श्रेणीकरण करके सही प्रकार के डिब्बों में पैकिंग करें जिससे फलों को बाजार में विक्रय हेतु भेजते समय कोई नुकसान न हो । फलों के ताजेपन को बनाये रखने के लिए उनके उचित भंडारण एवं विपणन के समय वातानुकूलित वाहन का प्रयोग करना चाहिए। अपने देश और क्षेत्र का *ब्राण्ड* स्थापित करके हम आत्मनिर्भरता की तरफ बढ़ सकते हैं तथा अपनी पहचान बना सकते हैं और इसके लिए डिब्बों पर उचित प्रकार से छपाई (*क्यू आर कोड*) होनी चाहिए, जिसमें फल की किस्म, *पैकिंग* का दिनांक एवं प्रयोग समयावधि आदि अंकित होनी चाहिए। यहां यह उल्लेख करना आवश्यक है कि भारत में फलों का प्रसंस्करण बहुत कम मात्रा में किया जाता है और यहां लोगों द्वारा ताजे फलों को खाना ज्यादा पसंद किया जाता है परन्तु बाजार में एक साथ फलों की आवक बढ़ने से यदि उनका विक्रय न हुआ तो उनके सड़ने की समस्या ज्यादा हो जाती है और इसलिए आवश्यक है कि जब फलों की अधिकता हो और उनके विक्रय की दर कम हो, उस समय फलों को खरीदकर उनके विभिन्न परिरक्षित उत्पाद बनाने चाहिए। परिरक्षित उत्पादों में अचार, मुरब्बा, *स्कवैश जैम, जेली, कैंडी* आदि बना कर डिब्बा बंदी करनी चाहिए। इसके अलावा फलों के ताजे गूदों को भी भंडारित किया जाता है एवं सुखाकर पाउडर के रुप में भी परिरक्षित किया जा सकता है। आजकल पर्वों के अवसर पर लोगों में ताजे फल, सूखे मेवे एवं फलों से बनी विभिन्न प्रकार की परिरक्षित मिठाईयों के आदान–प्रदान का प्रचलन बढ़ा है। भविष्य में परिरक्षित उत्पादों की मांग और ज्यादा बढ़ने की संभावना है। भारत में आज भी फलों के समुचित भंडारण की व्यवस्था नहीं है, जिस पर ज्यादा ध्यान देने की आवश्यकता है।

फल उत्पादन का वैश्विक परिदृश्य एवं भारत

भारत में मृदा एवं जलवायु की विविधता बहुत ही व्यापक है । इसके कारण लगभग सभी प्रकार के उष्ण, उपोष्ण एवं शीतोष्ण फलों की खेती की जाती है । फल स्वास्थवर्द्धक एवं औषधीय गुणों से परिपूर्ण होते हैं। इनकी खेती अधिक उत्पादकता में सक्षम, अधिक मानव श्रम दिवस का सृजन, भूमि के क्षरण को रोकने एवं उर्वराशक्ति बढ़ाने में उपयोगी, पर्यावरण में संतुलन बनाये रखने के साथ–साथ स्थान विशेष की सुन्दरता को बढ़ाने में भी सक्षम होती है। फलदार वृक्ष विभिन्न क्षेत्रों जैसे शुष्क कृषि क्षेत्रों, वर्षा आधारित क्षेत्रों, पहाड़ी क्षेत्रों, रेगिस्तानी, तटीय क्षेत्रों के साथ ऊसर, बंजर एवं परती भूमि पर रोपित किये जा सकते हैं। सस्य फसलों (145 मानव श्रम दिवस) की तुलना में फल वृक्षों की खेती से अधिक रोजगार सृजन (860 मानव श्रम दिवस) किया जा सकता है । देश में अनेक तरह के फल वृक्ष पाये जाते हैं किन्तु व्यावसायिक स्तर पर लगभग 28 फल वृक्षों की खेती ही प्रचलित है । भारत में फलों के उत्पादन में अभूतपूर्व प्रगति हुई है और आज विश्व पटल पर भारत, चीन के बाद सबसे बड़ा फल उत्पादक देश है। विश्व के प्रमुख फल उत्पादक देशों में चीन, भारत, ब्राजील, अमेरिका, मैक्सिको, स्पेन, इंडोनेशिया, फिलीपींस, इटली एवं टर्की हैं। भारत की औसत फल उत्पादकता 14.95 टन/हे. है, परन्तु विश्व के कुछ ऐसे देश भी हैं (इंडोनेशिया, अमेरिका एवं ब्राजील), जिसकी फल उत्पादकता भारत से अधिक है। विश्व के कुल फल उत्पादन (8536.7 लाख टन) का 12.8 प्रतिशत उत्पादन भारत द्वारा किया जाता है।

राज्यवार फलोत्पादन की स्थिति

फलों के अंतर्गत क्षेत्रफल की दृष्टि से आंध्र प्रदेश (15.65 प्रतिशत) का सबसे बड़ा योगदान है, तत्पश्चात् क्रमशः महाराष्ट्र (12.05 प्रतिशत), उत्तर प्रदेश (10.82 प्रतिशत), गुजरात (9.24 प्रतिशत), मध्य प्रदेश (7.62 प्रतिशत) एवं कर्नाटक (7.4 प्रतिशत) का स्थान आता है। किन्तु उत्पादन की दृष्टि से महाराष्ट्र का योगदान (11.58 प्रतिशत) सबसे अधिक है, उसके बाद आंध्र प्रदेश (10.00 प्रतिशत), उत्तर प्रदेश (7.3 प्रतिशत), कर्नाटक (6.63 प्रतिशत), गुजरात (6.49 प्रतिशत) एवं मध्य प्रदेश (5.44 प्रतिशत) का नाम आता है। इन आंकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि यह आवश्यक नहीं है, जिस प्रदेश का क्षेत्रफल सबसे ज्यादा है, वहां का उत्पादन भी सबसे ज्यादा हो। यही कारण है कि आंध्र प्रदेश में फल वृक्षों के अंतर्गत क्षेत्रफल सबसे ज्यादा होने के बावजूद भी फलों का उत्पादन महाराष्ट्र में सबसे ज्यादा होता है। फलों का कम या ज्यादा उत्पादन क्षेत्रफल पर तो निर्भर करता ही है, परन्तु साथ ही साथ वहां की जलवायु, मृदा उर्वरता, सिंचाई के साधन, पोषण एवं कीट–व्याधि के उचित नियंत्रण आदि पर भी निर्भर करता है। अधिक उत्पादन के लिए उचित किस्मों, छत्रक प्रबंधन, मूलवृंतों का प्रयोग, सघन बागवानी एवं उचित देखभाल भी आवश्यक माना गया है जो आत्मनिर्भर भारत निर्माण की दिशा में एक पायदान की तरह है क्योंकि इन सभी कार्यों एवं वस्तुओं के लिए कहीं न कहीं रोजगार तथा धनार्जन के अवसर उत्पन्न होते हैं।

आत्मनिर्भरता से एक कदम आगे

भारत में उत्पादित फलों का घरेलू उपयोगों के साथ–साथ प्रति वर्ष विदेशों में निर्यात भी किया जाता है। बागवानी फसलों के कुल निर्यात का लगभग 31.98 प्रतिशत ताजे फलों एवं सूखे मेवे से आता है। जिन फलों का भारत से निर्यात किया जाता है उनमें आम, अंगूर, केला, अनार, काजू एवं अखरोट प्रमुख हैं। आम का मुख्य रुप से संयुक्त अरब अमीरात, यूनाईटेड किंगडम, सऊदी अरब, कतर, अमेरिका, कुवैत, ओमान, नेपाल एवं सिंगापुर में निर्यात किया जाता है। अंगूर का नीदरलैंड, रुस, यूनाईटेड किंगडम, जर्मनी, संयुक्त अरब अमीरात, सऊदी अरब, थाइलैंड, हांगकांग, बेल्जियम आदि तथा केले का नेपाल, बांग्ला देश, ईरान, कतर, अमेरिका, संयुक्त अरब अमीरात, ओमान, सिंगापुर, जर्मनी, हांगकांग, यूनाईटेड किंगडम, थाईलैंड, कनाडा, कोरिया आदि देशों में निर्यात किया जाता है। सेब का निर्यात मुख्य रुप से नेपाल, बांग्ला देश, ईरान, कतर, संयुक्त अमेरिका, यूनाइटेड अरब अमीरात, ओमान, सिंगापुर, जर्मनी, पनामा गणराज्य, यूनाईटेड किंगडम, लाइबेरिया, थाइलैंड आदि को किया जाता है। आजकल चीकू का भी निर्यात यूनाइटेड अरब अमीरात, बहरीन, ओमान, कतर, कनाडा, सउदी अरब अमीरात, यूनाइटेड किंगडम, सिंगापुर आदि को होने लगा है। एपीडा द्वारा प्रस्तुत आंकड़ों के अनुसार वर्ष 2018–19 में भारत ने ताजे फलों का निर्यात करके ₹ 48,173.5 करोड़ अर्जित किए हैं जो आत्मनिर्भरता का द्योतक है और आत्मबल को बढ़ाने वाला है।

फल उत्पादन के समक्ष चुनौतियां

भारत में फल उत्पादन की उपलब्धियां संतोषजनक हैं, परन्तु पूर्ण रूप से आत्मनिर्भर होने, विदेशी मुद्रा अर्जित करने और एक स्थाई विकल्प के रूप में स्थापित होने के लिए फलोत्पादन के क्षेत्र में अभी भी बहुत आगे बढ़ने की जरुरत है। देश को फल के निर्यातक के रुप में स्थापित होने और आत्मनिर्भरता के मार्ग में अनेक बाधाएं आ सकती हैं जिनमें से कुछ प्रमुख चुनौतियां निम्नलिखित हैं:

1. **जनसंख्या वृद्धि:** जहां स्वतंत्रता के समय देश की जनसंख्या 36.1 करोड़ थी, वहीं आज बढ़कर 136 करोड़ तक पहुँच चुकी है। प्रति व्यक्ति खेती योग्य जमीन की उपलब्धता भी घटती जा रही है। बढ़ती जनसंख्या की पोषण जरुरतों को पूरा करने हेतु उत्पादन स्तर को भी इसी दर से बढ़ाना चाहिए ।

2. **जल स्रोतों पर दबावः–** देश के 44 प्रतिशत भू–भाग में असिचित तथा वर्षा आधारित खेती की जा रही है, जिसमें सिंचाई सुविधाएं दिये बिना उत्पादन में बढ़ोतरी सम्भव नहीं है। ऐसे क्षेत्रों में टपक सिंचाई एवं नमी प्रबंधन की विधियां विशेष कारगर होगी।

3. **उत्पाद गुणवत्ता में कमी:–** विश्व के कुल उत्पादन में भारत भले ही दूसरे स्थान पर है, परन्तु हमारे उत्पाद अन्तर्राष्ट्रीय मानकों को पूरा करने में कमी–कमी विफल रहते हैं। इस कारण निर्यात में हमारी भागीदारी बहुत कम हो जाती है । घरेलू स्तर पर भी गुणवक्तायुक्त फलों की मांग बढ़ रही है।

4. **तुड़ाई उपरांत प्रबंधन व मंडारण की आधारभूत संरचना में कमी:** आज भी देश के कुल फल उत्पादन का लगभग 20–25 प्रतिशत भाग बिना उपयोग किए ही खराब हो जाता है। इसका प्रमुख कारण इन फसलों की शीघ्र खराब होने की प्रकृति, *सप्लाई चेन* का अभाव तथा भंडारण सुविधाओं में कमी का होना है। वर्तमान में हम कुल उत्पादन का 2–3 प्रतिशत भाग ही परिरक्षित कर पानें में सक्षम हैं। वहीं कुछ विकसित देशों में 70.80 प्रतिशत तक परिरक्षण किया जा रहा है। इसे बढ़ाने की चुनौती हमारे सामने है।

5. **निर्यात भागीदारी कम होना:** ताजे फलों और उनके उत्पादों को निर्यात कर विदेशी मुद्रा अर्जित होती है, परन्तु भारत कुल उत्पाद का लगभग 2 प्रतिशत ही निर्यात कर पा रहा है। निर्यात व घरेलू जरुरतों के मध्य सन्तुलन कर इसे बढ़ावा देने की आवश्यकता है।

6. **जलवायु परिवर्तन का प्रभाव:** असमय सूखा एवं बाढ़, ओले एवं पाला पड़ना, चक्रवाती तूफान आना आदि जैसी समस्याओं से भी फलों की उत्पादकता पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त, नये–नये कीट एवं व्याधियों का पैदा होना भी एक चुनौती बनता जा रहा है। इसके लिए फल उत्पादन के नये वैज्ञानिक तौर–तरीके एवं मौसम परिवर्तन के पूर्वानुमान पर बल देने की आवश्यकता है ।

7. **उत्पादन सामग्री की समयबद्ध उपलब्धता:–** जहां एक तरफ कृषकों तक नवीन तकनीकी ज्ञान पहुंचाने की आवश्यकता है, वही उत्पादन सामग्री जैसे–गुणवक्तायुक्त पौध/बीज, खाद–उर्वरक, पानी, उपकरण/मशीन आदि सही समय पर व पर्याप्त मात्रा में उपलब्धता सुनिश्चित करने की आवश्यकता है।

8. **आय में वृद्धि कैसे हो?** किसानों की आमदनी कैसे बढ़े? किसान आत्मनिर्भर कैसे हों? यह देश के सामने एक बहुत बड़ी चुनौती है। इसके लिए किसान बागवानी को एक विकल्प के रुप में देख रहे हैं। किसानों की आय में बढ़ोत्तरी, उत्पादन स्तर को बढ़ाने के साथ–साथ लागत को कम करने से होगी। इसके अतिरिक्त, फल उत्पादन के साथ, अन्य उद्यमों को भी समावेशित करने से उन्हें उद्यमशील और आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है।

फलोत्पादन द्वारा रोजगार की सम्भावनाएं एवं आत्मनिर्भरता का पथ

- फल उत्पादन की नवीनतम तकनीकों के साथ सरकार की विभिन्न योजनाओं (मृदा स्वास्थ्य कार्ड, फसल बीमा योजना, राष्ट्रीय किसान विकास योजना, प्रधानमंत्री सिंचाई योजना, समन्वित उद्यानिकी विकास मिशन) आदि की मदद से भारत में फल उत्पादन के दिशा में रोजगार बढ़ाने की अपार संभावनाएं हैं।

- विश्व में आज पोषण सुरक्षा को लेकर जागरुकता बढ़ी है। ताजे फलों (आम, पपीता, सेब, केला, अंगूर, अनार, लीची, अमरुद, मौसम्बी, आदि) एवं सूखे मेवे (काजू, बादाम, अखरोट, पिस्ता, छुहारा, अंजीर, किशमिश आदि) की मांग दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। अतः देश में फल उत्पादन को बढ़ाने में रोजगार का सृजन हो सकता है जिससे लोग आत्मनिर्भर होंगे।
- आज जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए अन्य उपायों के साथ–साथ फलों की खेती एवं फल आधारित वानिकी को विशेष बढ़ावा देकर युवकों को आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है। कुछ फल वृक्ष जैसे–आंवला, बेल, बेर, जामुन, चिरोंजी, इमली, शरीफा, अंजीर, करौंदा, फालसा, लसोड़ा, खिरनी, जंगल, जलेबी, कैंथ, शहतूत की खेती से नये क्षेत्र का विकास किया जा सकता है और पोषक सुरक्षा सुनिश्चित की जा सकती है।
- किसानों की आमदनी बढ़ाने और उन्हें आत्मनिर्भर बनाने में फलों की खेती विशेष रूप से लाभदायक सिद्ध हो रही है। वैज्ञानिक तरीके से फलों की खेती करके कम क्षेत्रफल से ज्यादा उत्पादन कर सकते हैं। फल के बगीचों में एक वर्षीय फसलों को समाहित करके तथा मधुमक्खी पालन, मुर्गी पालन आदि को जोड़कर भी आमदनी बढ़ा सकते हैं और स्वावलम्बी हो सकते हैं।
- फलों के परिरक्षित उत्पादों को घरेलू स्तर पर या कुटीर उद्योग के रूप में विकसित करके आमदनी को आसानी से बढ़ाया जा सकता है और विशेष ब्रांड स्थापित करके लाभ लिया जा सकता है।
- बागवानी से जुड़े अनेकों उद्यम जैसे–नर्सरी, मौन पालन, पैकिंग, डिब्बाबंदी, *वेक्सिंग*, प्रसंस्करण व संशोधन, कागज व गत्ते के बक्से आदि में भी स्वयं समृद्धि होने से भी आमदनी बढ़ाने में सफलता मिलती है।
- आत्मनिर्भरता के लिए बागवानी की पुरानी एवं परंपरागत विधियों से हटकर नई पहल करने की जरुरत है, जिसमें अनुबंध खेती से त्रिपक्षीय लाभ (किसान, कृषि उत्पाद क्रेता, वित्त पोषक संस्थाएं) के अवसर मिलेंगे। इसके साथ ही ग्रामीण युवाओं का शहरों की ओर पलायन भी रुकेगा तथा बागवानी फसलों के उत्पाद निर्यात को बल मिलेगा, जो भारतीय अर्थव्यवस्था को मजबूत करने और देश को आत्मनिर्भर बनाने में सहायक सिद्ध होगा।
- *एग्री क्लीनिक, कस्टम हायर* केन्द्र, बागवानी आधारित *स्टार्टअप, एग्री इनपुट, ड्रोन* उपयोग, डिजीज *डायग्नोस्टिक* तकनीक, *टिश्यू कल्चर* द्वारा पौध बनाना, सघन बागवानी, छत्रक प्रबंधन, बूँद–बूँद सिंचाई के साथ उर्वरकों का प्रयोग, *बायोपेस्टिसाइड* उत्पादन, *स्मार्ट पैकेजिंग*, प्रसंस्करण में *ऑटोमेशन, ई–मार्केटिंग* आदि के द्वारा फलोत्पादन बढ़ाने, देश को सम्पन्न बनाने और युवाओं में रोजगार के नये अवसर पैदा करने की अपार संभावनाएं हैं जो देश को आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर होने का मार्ग प्रशस्त करेंगे।

आत्मनिर्भरता के लिए बागवानी क्षेत्र में सरकार की पहल

वर्तमान सरकार बागवानी एवं फलोत्पादन द्वारा आत्मनिर्भर भारत के लिए कृत संकल्प है। सरकार ने *आपरेशन ग्रीन्स* के माध्यम से अतिरिक्त बजट का प्रावधान किया है जिसमें टमाटर, आलू और प्याज (*टीओपी*) के अतिरिक्त, सभी फलों एवं सब्जियों को शामिल किया गया है जिससे किसानों को बेहतर मूल्य मिलेगा और वे आत्मनिर्भर हो सकेंगे। आत्मनिर्भरता को बढ़ाने तथा लोगों में विश्वास पैदा करने के लिए सरकार द्वारा *एफपीओ, एफपीसी, जेएलसी* के माध्यम से किसानों को संगठित करने और सम्मिलित प्रयास से फलोत्पादन की दिशा में सहयोग दिया जा रहा है।

अतः बागवानी और विशेष रूप से फलोत्पादन एवं उनके मूल्य संवर्धन द्वारा देश में आत्मनिर्भर एवं स्वावलंबी बनाने की अपार सम्भावनाएं विद्यमान हैं। अब समय आ चुका है कि इनको अंगीकृत करके देश और समाज के उन्नयन की दशा में ठोस कदम उठाया जाए और जनसहभागिता के द्वारा देश को पुनः आत्मनिर्भर बनाया जाए।

भारतीय अन्तर्स्थलीय मात्स्यिकी के संरक्षण व संवर्धन की आवश्यकता एवं आय वृद्धि, उद्यमशीलता, आजीविका और आर्थिक उत्थान की संभावनाएं

कृपाल दत्त जोशी एवं कुलदीप कुमार लाल

भाकृअनुप–राष्ट्रीय मत्स्य आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, लखनऊ

हमारे देश के विशाल भौगोलिक क्षेत्र और विविध स्थलाकृतिक स्थलों में असंख्य प्राकृतिक संसाधन उपलब्ध हैं, जो अपनी पारिस्थितिक अखंडता और मूल्यवान जैव विविधता को बनाए रखने के अलावा, इस क्षेत्र में आजीविका के लिए अपार अवसर प्रदान करते हैं। देश के अपार जल संसाधन 8,129 किमी की लंबी तट रेखा, विशेष आर्थिक क्षेत्र के 20.2 लाख वर्ग किमी, महाद्वीपीय किनारे के जलक्षेत्रों का 5.06 लाख किमी, नदियों और नहरों का 1,91,024 किमी, जलाशयों का 33.0 लाख हेक्टेयर, 23.5 लाख हे. तालाबों और टैंकों, 13. लाख हे. में झीलें और रुके जल भंडार, 12.4 लाख हे. में खारे पानी और 2.9 लाख हे. में फैली जलराशि मछलियों के लिए विशाल आवास क्षेत्र उपलब्ध करते हैं। नदियों का एक विशाल तंत्र, विभिन्न छोटी–बड़ी नदियाँ और धाराएँ; इन नदियों/नालों पर जलाशयों का निर्माण; संलग्न जलाच्छादित क्षेत्र और नदीमुख देश में उपलब्ध बहुमूल्य अन्तर्स्थलीय जल संसाधन हैं। हमारे देश के ये विविध जलीय संसाधनों में कुल 3638 मत्स्य प्रजातियाँ पाई जाती हैं, जिसमें 13.74% विदेशी प्रजातियाँ हैं।

भारतीय मत्स्यिकी का स्वरुप व दोहन का स्तर

यह उपलब्ध विस्तृत जलीय संसाधन हमारे विविध समृद्ध मत्स्य आनुवंशिक स्रोतों के लिए आवास के अतिरिक्त, देश की खाद्य टोकरी में अत्यधिक योगदान दे रहे हैं। भारतीय मत्स्य क्षेत्र का राष्ट्रीय सकल घरेलू उत्पादन का लगभग 1.1% और कृषि के सकल घरेलू उत्पादन का 5.5% के साथ आर्थिक क्षेत्र में योगदान है। वर्ष 2018–19 में देश का कुल मछली उत्पादन 134 लाख टन था, जिसमें अंतर्देशीय क्षेत्र ने महत्वपूर्ण योगदान दिया (98 लाख टन) और शेष (3.54 लाख टन) समुद्री से था। जहां तक वैश्विक मछली उत्पादन का प्रश्न है, भारतीय मत्स्यिकी क्षेत्र दुनिया में तीसरा सबसे बड़ा मछली उत्पादक और दूसरा सबसे बड़ा जलीय कृषि उत्पादक है। देश भर में लगभग 1.5 से 2.0 करोड़ लोग प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से मात्स्यिकी क्षेत्र से जुड़े हैं और आजीविका प्राप्त कर रहे हैं।

मात्स्यिकी क्षेत्र में रोज़गार के अवसर

मात्स्यिकी क्षेत्र में आजीविका पाने तथा इसके संवर्धन के अनेकों अवसर उपलब्ध हैं। जिसके अंतर्गत तालाबों में पारंपरिक मछली पालन के अलावा, आर्द्रभूमि और जलाशयों में मत्स्य उत्पादन, मछली पालन में रोजगार सृजन, आर्द्र भूमि और जलाशयों में पिंजरों और बाड़ों में मत्स्य पालन, तेजी से बढ़ती प्रजातियों का उच्च घनत्व में एकल पालन, पुनःचक्रीय मत्स्य पालन तन्त्र, *बायोफ्लॉक* मछली पालन, मत्स्य आधारित पर्यटन, मत्स्य आहार, मत्स्य जाल, मछली पकड़ने के शिल्प और सहायक उपकरण सहित रोजगार सृजन के असंख्य अवसर पैदा हो रहे हैं। मछली को इनके आवासों में देखने, सजावटी मछली पालन और व्यापार कुछ अन्य क्षेत्रों में उद्यमियों और प्रगतिशील मछली किसानों को आकर्षित करने पर ध्यान देने की आवश्यकता है। मछली पकड़ने के बाद के प्रसंस्करण और मूल्य संवर्धन, मछली आहार उद्योग, पिंजरे, बाड़े , कृषि मशीनरी और मत्स्य जल उत्पादन भी कुछ उभरते हुए क्षेत्र हैं जिन्हें मत्स्य विकास के साथ साथ रोजगार सृजन के लिए बढ़ावा दिया जाना चाहिए। समय की आवश्यकता को देखते हुए उपलब्ध संसाधनों के भविष्य के लिए समुचित बचाव व सतत उपयोग को केंद्र बिंदु मानकर उपाय करने की आवश्यकता है।

संस्थान का मात्स्यिकी संरक्षण व संवर्धन में योगदान

संस्थान द्वारा विगत 5 वर्षों में देश के विभिन्न जलीय संसाधनों से 20 से अधिक मत्स्य प्रजातियों का पता लगाया गया जो विज्ञान के लिए बिल्कुल नई थीं। प्रत्येक नई प्रजाति को दिए गए वैज्ञानिक नाम की खोज

करने और सम्बंधित प्रजातियों की समीक्षा की गई।

अति महत्वपूर्ण मत्स्य प्रजातियों के संरक्षण व संवर्धन के उद्देश्य से शुक्राणु के हिमशीतलीकरण विधि का अविष्कार करके इस विधि का मत्स्य बीज उत्पादन में उपयोग किया गया। यह तकनीक मत्स्य आनुवंशिक संसाधनों के संरक्षण के लिए उपयोगी है। यह प्रौद्योगिकी अब अपने व्यवसायीकरण के लिए प्रगतिशील किसानों और राज्य मछली फार्म प्रबंधकों के बीच लोकप्रिय हो रही है।

संस्थान ने अपनी स्थापना के समय से ही बहुमूल्य जलीय कृषि उत्पादों के नुकसान को रोकने के लिए बेहतर रोकथाम, नियंत्रण के लिए मछली रोगों के समय पर निदान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अनुसंधान के इस क्षेत्र में संस्थान के योगदान के फलस्वरूप राष्ट्रीय मत्स्य विकास बोर्ड, हैदराबाद ने संस्थान को एक *मेगा प्रोजेक्ट*–राष्ट्रीय निगरानी कार्यक्रम जलीय पशु रोग का वित्त पोषण किया। यह परियोजना 19 राज्यों और 3 केंद्र शासित प्रदेशों में पहले चरण में 31 सहयोगी केंद्रों की भागीदारी के माध्यम से कार्यान्वित की जा रही है।

संस्थान ने मछली कोशिकाओं का राष्ट्रीय जैव संग्रहालय (*रिपोजिटरी*) स्थापित किया है। यह इस क्षेत्र में अनुसंधान का समर्थन करने के लिए राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शोधकर्ताओं के लिए उपयोगी है। इस राष्ट्रीय संग्रहालय में 63 मत्स्य कोशिकाओं से सम्बंधित महत्वपूर्ण जानकारी जमा थीं, जो शोधकर्ताओं के उपयोग के लिए उपलब्ध हैं और यह दुनिया में अपनी तरह की कुछ *रिपोजिटरी* में से एक है।

संस्थान द्वारा मत्स्य प्रजातियों के सत्यापन, उत्पाद *फोरेंसिक* और मछली आनुवंशिक *स्टॉक* की पहचान के लिए उपकरण के रूप में आण्विक *मार्कर* विकसित किए। उपकरण का अपने मूल वितरण *रेंज* में मछली के व्यवस्थित, वर्गीकरण स्तर और प्रजातियों के स्तर से नीचे के प्रकार में संभावित उपयोगिता है।

संस्थान द्वारा गंगा नदी तंत्र की महत्वपूर्ण मत्स्य प्रजातियों के संवर्धन के उद्देश्य से पांच कार्प (कैटला, रोहू, मृगल, कैलाबसु, बाटा) किस्मों के लगभग 2.0 लाख उन्नत अंगुलिकाओं का दिसम्बर 2017 को नदी में संग्रहण किया गया। इन अंगुलिकाओं को कानपुर के पास छपरा घाट, बिठूर में नदी में डाला गया, जो धार्मिक अनुष्ठानों के कारण मछलियों के लिए संरक्षित है।

समस्त अंतर्स्थलीय जल संसाधनों में उपलब्ध विविध मत्स्य आनुवंशिक संसाधन अत्यधिक मानवीय दबावों के कारण कम होते जा रहे हैं। इसलिए इनके आवास सुधार, कानूनी रूप से संरक्षण, *इन–सीटू* संरक्षण के माध्यम से घटती प्रजातियों का संवर्धन, प्रबंधन, विविधता और पारिस्थितिक अखंडता के निर्वाह के लिए समस्त विधियों से संरक्षण आवश्यक है। घटती जैव विविधता के प्रभावी और सतत संरक्षण के लिए एकल प्रजाति–दृष्टिकोण के बजाय पारिस्थितिकी तंत्र आधारित दृष्टिकोण अपनाने की भी आवश्यकता है। इन बहुमूल्य संसाधनों के संरक्षण और प्रबंधन के लिए एक एकीकृत दृष्टिकोण प्रारम्भ करने की तत्काल आवश्यकता है। इसके साथ ही भारतीय मत्स्य अधिनियम के कठोर प्रवर्तन, संरक्षण और प्रबंधन आवश्यक हैं।

आत्मनिर्भर कृषि के लिए फसल बीमा योजना की आवश्यकता

अजय कुमार साह
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

आत्मनिर्भर भारत योजना का शुभारम्भ 12 मई 2020 को किया गया। जिसका मुख्य उद्देश्य लगभग 130 करोड़ भारतीयों को आत्मनिर्भर बनाना और उन्हें रोजगार मुहैया कराना है। पिछले दो वर्षों से कोरोना जैसी भयंकर महामारी के संकट से जूझ रहे भारतीय किसानों को निजात दिलाने तथा प्रत्येक वर्ग के लोगों को रोजगार उपलब्ध कराने में यह योजना अत्यन्त लाभकारी सिद्ध होगी। भारत सरकार ने आत्मनिर्भर भारत अभियान के अन्तर्गत 20 लाख करोड़ रुपए की धनराशि का आवंटन राहत पैकेज के रूप में किया जो कि भारत के सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 10 प्रतिशत है। इसके साथ ही कृषि क्षेत्र को और अधिक बेहतर बनाने के लिए भारत सरकार ने इस योजना के अंतर्गत एक लाख करोड़ रुपए की धनराशि *एग्री–इन्फ्रास्ट्रक्चर फंड* के रूप में भी प्रदान की तथा आवश्यक वस्तु अधिनियम में संशोधन करके खाद्य वस्तुओं को आवश्यक वस्तुओं की सूची से बाहर कर दिया गया जिससे खाद्य वस्तुओं के भंडारण को बढ़ाया जा सका। किसानों को कृषि उत्पादों के विक्रय में सरलता लाने के लिए भारत सरकार ने "एक देश एक बाजार" के तहत किसानों को अपनी सुविधा के अनुसार अपने कृषि उत्पाद का क्रय एवं विक्रय करने का अधिकार भी प्रदान किया है। यदि इन महत्वपूर्ण योजनाओं को ध्यान में रखते हुए विश्वासपूर्ण ढंग से कृषि क्षेत्र में आगे की ओर कदम बढ़ाया जाए तो आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि भारतीय अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रो में सबसे अग्रणी क्षेत्र कृषि का हो सकता है। इसके साथ ही, किसानों एवं मजदूरों को रोजगार प्राप्त कराने तथा उनकी आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति को मजबूत बनाने में पुनः एक नयी आशा की किरण नजर आएगी, जिसके साथ–साथ भारतीय अर्थव्यवस्था को सफलतापूर्वक आगे बढ़ने में गति प्रदान की जा सकेगी।

इस नई आत्मनिर्भर योजना से कृषि क्षेत्र तथा किसानों को अधिकतम लाभ प्रदान करने में सुरक्षा कवच का होना भी आवश्यक है और इसलिए इस संदर्भ में किसानों द्वारा उत्पादित फसलों को किस प्रकार प्रकृतिक आपदाओं से आर्थिक सुरक्षा प्रदान किया जाए, इस पर विचार करना अति आवश्यक होगा ।

भारतीय कृषि मानसून पर निर्भर होने के कारण सदैव जोखिम भरा व्यवसाय रहा है। प्रत्येक वर्ष प्राकृतिक आपदाओं जैसे– बाढ़, सूखा, चक्रवात इत्यादि के कारण बड़े पैमाने पर फसल की विफलता देश के किसी न किसी हिस्से में देखने को मिलती है। जिससे भारतीय किसानों को व्यापक रूप से जोखिम उठाना पड़ता है तथा उनको आर्थिक नुकसान होता है। भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का बहुत बड़ा योगदान होने के कारण कृषि के प्रभावित होने से भारतीय अर्थव्यवस्था पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है। विभिन्न प्रकार से कृषि में होने वाले नुकसानों से किसानों को निजात दिलाने के लिए भारत सरकार ने फसल बीमा योजना को नए स्वरूप में प्रारंभ किया है। जिसका मुख्य उद्देश्य किसानों की फसलों को सुरक्षा प्रदान करने के साथ–साथ किसानों की आय को दोगुना करके भारतीय किसानों की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति को और अधिक मजबूती प्रदान करना है।

भारतीय कृषि की अनूठी प्रकृति और किसानों की असमान आर्थिक एवं मानसिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए समय–समय पर सरकार द्वारा फसल बीमा योजना को लाया गया और बार–बार असफल प्रयासों को दोहराया गया। समयांतराल पर कुछ संशोधन भी किए गए परन्तु *प्रीमियम सब्सिडी* समर्थन के बाद भी फसल बीमा योजना अपेक्षित परिणामों को प्राप्त करने तथा किसानों को लाभ पहुंचाने में विफल रही।

भारतीय किसानों को लाभ पहुँचाने के उददेश्य से भारत सरकार द्वारा विभिन्न वर्षों में फसल बीमा पर आधारित योजनाओं को लागू किया गया जो कि निम्नलिखित हैं :

1. साधारण बीमा योजना (1972 – 1979)
2. *पायलट* फसल बीमा योजना (1979 – 1984)
3. व्यापक फसल बीमा योजना (1985 –1999)

4. राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना (1999 – 2000)
5. मौसम आधारित फसल बीमा योजना (2007 – 2008)
6. प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना (2016)– वर्तमान सरकार द्वारा लायी गयी।

फसल बीमा योजना का महत्व

भारतीय कृषि मानसून पर निर्भर होने के कारण तथा अनिश्चित समय पर वर्षा एवं वर्षा के असमान वितरण के कारण फसल की उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। इसके साथ मूल्य अस्थिरता होने के कारण किसानों को अधिक जोखिम सहन करना पड़ता है। जोखिमों और अनिश्चितता के परिद्रश्य को देखते हुए कृषि के जोखिमों को कम करने अथवा किसानों को जोखिमों से निजात दिलाने के लिए प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना को 2016 में शुभारम्भ किया गया। भारतीय फसल बीमा योजना कृषि क्षेत्र में विकास प्रक्रिया को आगे ले जाने में एक महत्वपूर्ण अंग बना। भारत में पारंपरिक रूप से जोखिमों को निजी तौर पर निहित करने में कुछ हद तक सफलता प्राप्त की जा सकी। जिससे भारतीय किसानों के आर्थिक विकास में बदलाव लाने में भी फसल बीमा योजना सक्षम हो सकी है।

एफ०ए०ओ० एवं विभिन्न कृषि संगठन की रिपोर्ट के अनुसार भारतीय कृषि में सबसे अधिक क्षेत्रफल सूखे से प्रभावित होता है जो कि सभी आर्थिक प्रभावों में से लगभग 84 प्रतिशत है अर्थात जब तक कृषि क्षेत्र की सुरक्षा के लिए प्रभावी प्रयोजन नही किए जाएँगे तब तक यह स्थिति अनुकूल होने के बहुत ही कम आसार नजर आते है। कृषि क्षेत्र के विकास में यह आवश्यक हो गया है कि जनसांख्यकीय संरचना में सीमांत एवं लघु किसानों के विकास का बोध सर्वोपरी किया जाए।

फसल बीमा योजना की चुनौतियाँ

1. बीमा संस्कृति का अभाव

आमतौर पर किसानों को कृषि बीमा योजना के बारे में पर्याप्त जानकारी न होने के कारण दौड़ भाग बहुत ज्यादा करनी पड़ जाती है। तथा इसके साथ ही फसल बीमा योजना को अक्सर गैर निवेश के रूप में भी माना जाता है। क्योंकि प्रतिवर्ष किसानों से प्रीमियम के रूप में भारी मात्रा में धनराशि वसूली जाती है। परंतु किसानों की फसलों से संबन्धित क्षतिपूर्ति भूगतान बहुत ही कम मात्रा में अथवा न के बराबर बीमा कम्पनियों के द्वारा किया जाता है।

2. कृषि में अधिक लागत

कृषि में आय का ह्रास के लिए कृषि उत्पाद के बाजार मूल्यों में अनिश्चितता को सदैव से एक मुख्य कारण माना गया है। किसानों को बीज, खाद एवं उर्वरक को अधिक दामो पर क्रय करना पड़ता है। जिसके साथ ही किसानों को गुणवत्ता युक्त बीज, खाद एवं उर्वरक समय पर उपलब्ध न होने के कारण किसानों को विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

3. भूमि का असमान वितरण

कृषि क्षेत्रफल वितरण सदैव से एक जटिल समस्या रही है। देश में बढ़ती आबादी के कारण लगातार सीमांत एवं लघु किसानों की जनसंख्या बढ़ने के साथ – साथ जोत का आकार भी छोटा होता जा रहा है। जिसके कारण बुवाई से लेकर कटाई तक के कृषि कार्य में जटिलता के साथ लागत भी बढ़ जाता है और औसत उत्पादन पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना के लाभ

1. आय की स्थिरता

आय की स्थिरता से आशय यह है कि किसानों की खराब हुई फसलों के कारण होने वाले नुकसान से निजात दिलाने में फसल बीमा योजना एक प्रकार से सुरक्षा कवच का काम करता है। तथा किसानों को उनकी उपज मूल्य जोखिमों का प्रबंधन करने की अनुमति देता है।

2. तकनीकी उन्नति

फसल बीमा योजना के अंतर्गत कृषि कंपनियाँ कृषि यंत्रिकरण को बढ़ावा देने के साथ–साथ कृषि में होने वाली क्षति को कम करने में भी सहायता प्रदान करती है तथा किसानों को नयी–नयी तकनीकों की जानकारी भी समय पर उपलब्ध कराती है। साथ ही गुणवत्ता युक्त बीज, उर्वरक, रसायन तथा अन्य निवेश भी समय पर उपलब्ध करता है।

3. जागरूकता प्रदान करना

बीमा कंपनियाँ किसानों को विभिन्न प्राकृतिक आपदाओं की अग्रिम जानकारी तथा इन आपदाओं से फसल को कैसे बचा सकते हैं इस बारे में भी जागरूक करते हैं। साथ ही होने वाले नुकसान तथा उसके आंकलन पर भी दिशा निर्देश दिया जाता है।

नुकसान भरपाई

किसानों को विभिन्न प्रकार की प्रक्रतिक आपदाओं से होने वाली क्षति की भरपाई करने में फसल बीमा कम्पनियाँ क्षति–आपूर्ति राशि प्रदान करती है। जिससे किसानों को कृषि उपज में होने वाले नुकसान से कुछ हद तक आर्थिक सुरक्षा प्रदान किया जा सके।

संभावित जोखिमों के खिलाफ किसानों के आर्थिक हित की रक्षा करने में नई कृषि विधियों को अपनाने में फसल बीमा कम्पनियाँ सहयोग प्रदान करती है। तथा लगातार फसल उत्पादन विफलता के कारण उत्पन्न हो रही समस्या से छुटकारा पाने एवं ग्रामीण ऋण की समस्या को दूर करने में फसल बीमा कम्पनियाँ सहयोग प्रदान करती है।

कुछ सुझाव

फसल बीमा योजना के अन्तर्गत निम्नलिखित बिन्दुओं को ध्यान में रखना अति आवश्यक है:

1. ग्राम पंचायत स्तर पर फसल बीमा योजना इकाई की स्थापना किया जाना अति आवश्यक हो गया है।
2. अनुमानित उपज का अग्रिम मूल्य तय किया जाना तथा उस मूल्य पर ही फसल का क्रय किया जाना अत्यंत महत्वपूर्ण हो गया है। क्योंकि इसके आभाव में लगातार बीज, खाद एवं उर्वरक के बढ़ते दामों के कारण खेती करना लगातार कठिन एवं घाटे का सौदा होता जा रहा है।
3. कटाई के पहले एवं बाद में होने वाले फसल के नुकसान को पूर्ण रूप से योजना के अंतर्गत समाहित किया जाना चाहिए।
4. *एस.एम.एस.* के माध्यम से फसल बीमा कंपनियों के द्वारा समय समय पर कृषि की सूचना जैसे– मौसम संबन्धित जानकारी, सिचाई, बाजार भाव, कटाई इत्यादि प्रदान करना अति आवश्यक है। जिससे आने वाली आपदाओं से बचने के लिए समय पर फसलों का उचित प्रबंधन किया जा सके और विपणन को सुदृढ़ करते हुए किसानों को आर्थिक नुकसान से बचाया जा सके।

आत्मनिर्भरता में भारतीय रेलवे का योगदान

मोनिका अग्निहोत्री
पूर्वोत्तर रेलवे, लखऊ

भारत में रेलवे के लिए पहली बार प्रस्ताव मद्रास में सन् 1832 में लाया गया। इसी के परिणामस्वरूप भारत में पहली ट्रेन सन् 1837 में मद्रास में लाल पहाड़ियों से चिंताद्रीपेत पुल तक चली थी। इसे आर्थर कॉटन द्वारा सड़क–निर्माण में ग्रेनाइट परिवहन के लिए बनाया गया था, इसमें विलियम एवरी द्वारा निर्मित *रोटरी स्टीम लोकोमोटिव* प्रयोग किया गया था। 8 मई 1845 को मद्रास रेलवे की स्थापना की गई। उसके बाद उसी वर्ष ईस्ट इंडिया रेलवे की स्थापना भी हुई। 1 अगस्त 1849 को संसद के अधिनियम द्वारा *ग्रेट इंडियन पेनिनसुला रेलवे (जीआईपीआर)* की स्थापना की गई। सन् 1850 में *ग्रेट इंडियन पेनिनसुला रेलवे कम्पनी* ने बम्बई से थाणे तक रेल लाइन बिछाने का कार्य प्रारम्भ किया गया एवं इसी वर्ष हावड़ा से रानीगंज तक रेल लाइन बिछाने का काम प्रारंभ हुआ। सन् 1853 में पहली प्रवासी ट्रेन ने मुंबई से थाणे तक (34 किमी. की दूरी) की दूरी तय की तथा आज यह एक विशाल परिवहन तंत्र में परिवर्तित हो चुकी है एवं निरंतर विकास के नए प्रतिमान स्थापित करते हुए आगे बढ़ रही है।

भारतीय रेल भारत सरकार–नियंत्रित सार्वजनिक परिवहन सेवा है। वर्तमान समय में भारत में *रेलवे ट्रैक* की कुल लंबाई 67,415 किलोमीटर है और प्रतिदिन 231 लाख यात्रियों और 33 लाख टन माल ढोती है। भारतीय रेलवे के स्वामित्व में 12,147 *लोकोमोटिव,* 74,003 यात्री कोच और 2,89,185 *वैगन* हैं और 8,702 यात्री गाड़ियों के साथ प्रतिदिन कुल 13,523 गाड़ियां संचालित होती हैं। भारतीय रेलवे में 300 *रेलवे यार्ड,* 2,300 माल ढुलाई और 700 मरम्मत केन्द्र हैं। भारतीय रेल विश्व की चौथी एवं एशिया की दूसरी सबसे बड़ी रेल सेवा है। 12.27 लाख कर्मचारियों के साथ, भारतीय रेल विश्व की आठवीं सबसे बड़ी व्यावसायिक इकाई है।

यह भारत में परिवहन क्षेत्र का मुख्य घटक है। यह न केवल देश की मूल संरचनात्मक आवश्यकताओं को पूरा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, अपितु बिखरे हुए क्षेत्रों को एक साथ जोड़ने में और देश की राष्ट्रीय अखंडता का भी संवर्धन करती है। राष्ट्रीय आपात स्थिति के दौरान आपदाग्रस्त क्षेत्रों में राहत सामग्री पहुंचाने में भारतीय रेलवे अग्रणी रहा है। देश के औद्योगिक और कृषि क्षेत्र की त्वरित प्रगति ने रेल परिवहन की उच्च्च स्तरीय मांग का सृजन किया है, विशेषकर मुख्य क्षेत्रों में जैसे कोयला, लौह अयस्क, पेट्रोलियम उत्पाद और अनिवार्य वस्तुएं जैसे खाद्यान्न, उर्वरक, सीमेंट, चीनी, नमक, खाद्य तेल आदि।

आज के परिवेश में भारतीय रेल लगभग 130 करोड़ भारतवासियों के लिए आत्मनिर्भर भारत के लिए एक मंत्र बन गया है और कोविड–19 के दौरान भारतीय रेल द्वारा बहुत से ऐतिहासिक कार्य किये गये, जैसे –

1. कोविड–19 के दौरान भारतीय रेल ने राष्ट्र की जीवन रेखा की भूमिका का निर्वहन किया। 01 मई 2020 से श्रमिक दिवस से स्पेशन ट्रेनों का संचालन आरम्भ करते हुए 4621 श्रमिक स्पेशल ट्रेनें चलाई गयीं। इसके साथ ही 5601 ट्रेन कोचों को *कोविड केयर* केन्द्र में परिवर्तित किया गया रेल के 17 समर्पित चिकित्सालयों में 5,000 बेड आरक्षित थे। 33 पृथक चिकित्सालय *ब्लॉक* भी *कोविड केयर* हेतु आरक्षित किये गये। 63.1 लाख प्रवासी श्रमिक गंतव्य तक पहुंचाए गये। कोविड–19 जैसे प्रतिकूल समय में रेलवे ने 15 दिसंबर, 2020 तक 6.4 लाख टन सामग्री की ढुलाई की और बेहतर संयोजकता प्रदान की है। इस दौरान 958 विशेष ट्रेनें, 618 पूजा विशेष ट्रेनें, 3936 उपनगरीय सेवा, 264 कोलकाता मेट्रो एवं 138 सवारी ट्रेनें शुरू की गयी।
2. कोविड–19 के दौरान रेलवे ने सद्भावना बढ़ाने का कार्य किया। इस दौरान आवश्यक सामग्री जैसे– खाद्यान्न, कोयला, पेट्रोलियम, खाद, लौह अयस्क एवं अन्य आवश्यक सामग्री की आपूर्ति की गयी। *मेक इन इंडिया* के क्षेत्र में 5.5 लाख *पीपीई किट,* 1.4 लाख लीटर *सैनिटाइजर* एवं 20 लाख

पुनः उपयोगी *फेस कवर* का उत्पादन किया गया। 1.85 करोड़ खाने के पैकेट एवं 2.21 करोड़ पानी की बोतलों का वितरण किया गया और आपदा को अवसर के रूप में लेकर सेवा की गयी।

3. आधारभूत संरचना के क्षेत्र में 350 बड़ी परियोजनाओं को पूरा करके गाड़ियों की गति एवं संरक्षा में सुधार किया गया। वर्ष 2014–20 में पूंजीगत व्यय ₹ 6.45,600 करोड़ हुआ जो 60 वर्षों (1951 से 2014) में संचयी निवेश (₹ 4,95,958 करोड़) को पार कर गया है। 1353 कि.मी. लंबी, 32 रेल परियोजनाएं पूरी हो गयी हैं।
4. पूर्वोत्तर के सातों राज्यों में भी *रेल* संयोजकता पहुंच चुकी है। त्रिपुरा में 112 कि.मी. लम्बी अगरतला–सबरूम रेल लाइन पूरी हो चुकी है तथा लामडिंग से होजाई तक 45 कि.मी. लम्बी दोहरीकरण परियोजना भी पूरी हो चुकी है।
5. आत्मनिर्भर भारत के तहत *प्रोक्योरमेंट पॉलिसी* में बदलाव करते हुए *इलेक्ट्रिक लोकोमोटिव* के 95% से ज्यादा कलपुर्जे स्वदेशी स्रोत से लिए जाएंगे। *रेल व्हील फैक्ट्री (आर.डब्ल्यू.एफ.)* में *एक्सेल* क्षमता में बढोत्तरी से आयात पर निर्भरता कम होगी। वंदे भारत ट्रेन के 44 रेकों में *मेक इन इंडिया* के *कम्पोनेंट* को बढ़ाया गया है। बनारस रेल इंजन कारखाना, वाराणसी ने श्रीलंका को 7 डीजल रेल इंजनों का निर्यात किया है। साथ ही, 27 जुलाई 2020 को बंगलादेश को 10 बड़ी लाइन इंजन की आपूर्ति की गई है, जो हमारी आत्मनिर्भरता के साथ–साथ निर्यात करने की क्षमता की ओर एक कदम है।

सहायक कम्पनियां

भारतीय रेल, कार्य संचालन के विभिन्न पहलुओं की देखभाल करने के लिए रेल इंडिया टेक्नीकल एवं *इकोनॉमिक सर्विसेज लिमिटेड (आरआईटीईएस), इंडियन रेलवे कन्स्ट्रक्शन (आईआरसीओएन)* अंतर्राष्ट्रीय लिमिटेड इत्यादि अनेक सरकारी क्षेत्र के उपक्रम स्थापित किये हैं।

लखनऊ में भारतीय रेल द्वारा अनुसंधान अभिकल्प और मानक संगठन (*आरडीएसओ*) तथा अनुसंधान और विकास (*आर एंड डी*) स्थापित किया गया है, जो तकनीकी मामलों में रेल मंत्रालय के परामर्शदाता के रूप में कार्य करता है। यह रेल विनिर्माण और डिज़ाइनों से संबद्ध अन्य संगठनों को भी परामर्श देता है।

केन्द्रीयकृत रेल सूचना प्रणाली (*सीआरआईएस*) संचालन के लिए भी केन्द्र स्थापित हैं, जिसका कार्य विभिन्न कम्प्यूटरीकरण परियोजनाओं का खाका तैयार करना और क्रियान्वयन करना है। इनके साथ–साथ ही *रोलिंग स्टॉक,* पहिए, *एक्सेल* और रेल के अन्य सहायक संघटकों के विनिर्माण के लिए विभिन्न उत्पादन इकाईयाँ हैं, जैसे– चितरंजन *लोकोमोटिव वर्क्स* (विद्युत इंजन), डीजल इंजन आधुनिकीकरण कारखाना, डीजल इंजन कारखाना, एकीकृत *कोच फैक्ट्री, रेल कोच फैक्ट्री* और रेल पहिया फैक्टरी इत्यादि। उल्लेखनीय है कि बनारस लोकोमोटिव वर्क्स ने एक महीने में 39 इलेक्ट्रिक इंजन बनाकर *ऑल टाइम हाई रिकॉर्ड* बनाया है। साथ ही, रेल व्हील फैक्ट्री ने एक ही दिन में चार अलग–अलग तरह के पहियों जैसे *मोजाम्बिक कोचिंग ईएमयू, बीएमआरसीएल प्रोटोटाइप* और *बीजी कोचिंग* का निर्माण किया है।

रेलवे प्रशिक्षण केन्द्र

रेल के अधिकारियों एवं कर्मचारियों को प्रशिक्षण देने हेतु रेलवे स्टाफ कालेज, बड़ौदा; *इंडियन रेलवे इंस्टीट्यूट ऑफ मेकेनिकल एण्ड इलेक्ट्रॉनिक इंजीनियरिंग,* जमालपुर; *इंडियन रेलवे इंस्टीट्यूट ऑफ सिग्नल इंजीनियरिंग,* पुणे; *इंडियन रेलवे इंस्टीट्यूट ऑफ इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग,* नासिक इत्यादि स्थापित हैं।

भारत को आत्मनिर्भर बनाने हेतु भारतीय रेल व्यवस्था को सुधारने हेतु महत्वपूर्ण कदम

- वर्ष 2017 में भारतीय रेल व्यवस्था को सुधारने हेतु महत्वपूर्ण कदम उठाये गए। रेल सुरक्षा निधि ₹ 1,00,000 करोड़ के एक कोष के साथ 5 साल की अवधि में बनाया जा रहा है। *लिफ्ट* और *एस्केलेटर* प्रदान करके 500 से अधिक रेलवे स्टेशनों को अलग–अलग तरीके से अनुकूल बनाया जा रहा है। तीर्थयात्रा और पर्यटन के लिए समर्पित गाड़ियों को प्रक्षेपण करने के लिए कदम उठाए जा रहे हैं।

- भारतीय रेल में प्रौद्योगिकी की प्रगति को आत्मसात करने के लिए अनेकों प्रयास किए जा रहे हैं और भारतीय रेल बहुत से रेल उपकरणों जैसे *रोलिंग स्टॉक* के उत्पादन में आत्मनिर्भर हो गया है। भारतीय रेल, ईंधन किफायती नई *डिज़ाइन* के उच्च *हॉर्स पावर* वाले इंजन, उच्च गति के कोच और माल यातायात के लिए आधुनिक बोगियों को कार्य में लाने की प्रक्रिया में है। आधुनिक *सिग्नलिंग* जैसे *पैनल–इंटर लॉकिंग, रूट रिले इंटर लॉकिंग,* केंद्रीकृत यातायात नियंत्रण, स्वतः *सिग्नलिंग* और बहु–पहलू रंगीन प्रकाश *सिग्नलिंग* की भी शुरूआत की जा रही है।
- इसके अतिरिक्त, सरकार ने दिल्ली, मुंबई, चेन्नई, बैंगलूरू, हैदराबाद और कोलकाता मेट्रोपोलिटन शहरों में रेल आधारित *मास रेपिड ट्रांजिट* प्रणाली शुरू की है, जिसका लक्ष्य शहरों के यात्रियों के लिए विश्वसनीय सुरक्षित एवं प्रदूषण रहित यात्रा मुहैया कराना है। यह परिवहन का सबसे तेज साधन सुनिश्चित करती है, समय की बचत के साथ–साथ दुर्घटना को कम करती है। इस परियोजना में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। विशेषकर दिल्ली मेट्रो रेल परियोजना का कार्य उल्लेखनीय है।
- भारतीय रेल, मूल संरचना के विकास में निजी क्षेत्रों की भागीदारी का क्रमशः विस्तार कर रही है, उदाहरण के लिए *पीपावाव रेलवे कॉर्पोरेशन लिमिटेड (पी.आर.सी.एल.)* रेल परिवहन में पहला सरकारी निजी भागीदारी का मूल संरचना मॉडल है। यह भारतीय रेल और *गुजरात पीपावाव पोर्ट लिमिटेड* की संयुक्त उद्यम कम्पनी है, जिसकी स्थापना 271 कि.मी. लंबी रेलवे लाइन का निर्माण, रख–रखाव और संचालन करने के लिए की गई है। यह गुजरात राज्य में पीपावाव पत्तन को पश्चिमी रेल के सुरेन्द्र नगर जंक्शन से जोड़ती है।
- भारतीय रेल अपनी ऊर्जा की सभी जरूरतों को पूरा करने के लिए शत–प्रतिशत आत्मनिर्भर बनने के लक्ष्य को हासिल करने और साथ ही राष्ट्रीय सौर ऊर्जा लक्ष्यों में योगदान देने के लिए, भारतीय रेलवे द्वारा प्रमुख हितधारकों के साथ व्यापक बातचीत की जा रही है। वर्ष–2030 तक 33 *बिलियन यूनिट* से अधिक की ऊर्जा खपत जरूरतों को पूरा करने की ओर अग्रसर है। साथ ही, वर्तमान वार्षिक आवश्यकता लगभग 21 *बिलियन यूनिट* को पूरा करेगी। भारतीय रेलवे अपनी खाली भूमि पर सौर ऊर्जा संयंत्र स्थापित करने के लिए *डेवलपर्स* को पूरा सहयोग दे रही है तथा प्रमुख सौर ऊर्जा *डेवलपर्स* से वर्ष–2030 से पहले पर्यावरण के अनुकूल "शुद्ध शून्य कार्बन उत्सर्जक" बनने की भारतीय रेलवे की यात्रा में साझेदार बनने की अपनी उम्मीदों को साझा किया तथा रेलवे वर्ष 2023 तक शत–प्रतिशत विद्युतीकरण करने का लक्ष्य है। भारतीय रेलवे अपनी कर्षण या खींचने की शक्ति की आवश्यकता को पूरा करने और परिवहन का एक पूर्ण *'ग्रीन मोड'* बनने के लिए सौर ऊर्जा के उपयोग के लिए प्रतिबद्ध है।
- भारतीय रेलवे किसान रेल चलाकर किसानों के जीवन में बड़ा बदलाव ला रही है। सोलापुर मंडल का सांगोला स्टेशन दिल्ली, कोलकाता और पटना के लिए किसान रेल में अनार, सीताफल, बेर, अंगूर आदि फलों के लदान का केन्द्र बना हुआ है। नवंबर 2020 में यहां से 2,500 टन से अधिक फलों का लदान किया गया है।

निष्कर्षतः, भारतीय रेल देश की जीवन रेखा है। रेलवे द्वारा अर्जित राजस्व की अधिकतम राशि देश के अन्य क्षेत्रों को भी आत्मनिर्भर बनाने में सहयोग प्रदान करती है तथा भारत को एक छोर से दूसरे छोर तक जोड़ने में महती भूमिका निभाती है।

आत्मनिर्भर भारत हेतु सुरक्षा बलों का योगदान

एस.पी. सिंह
ग्रुप केन्द्र, केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल, लखनऊ

उत्तर में हिमाच्छादित हिमालय से लेकर सुदूर दक्षिण में कन्याकुमारी के तरंगित समुंदर तक और राजस्थान के तपते रेगिस्तान से लेकर पूर्वोत्तर के हरे–भरे जंगलों तक भारत में विविधता ही विविधता दिखाई देती है, फिर भी भारत अखंड है। इस अखंडता को चरितार्थ और जीवंत बनाये रखने में सुरक्षा बलों का अप्रतिम योगदान रहा है। कहते हैं कि यदि देश सुरक्षित ही नहीं तो कितनी भी तरक्की कर लें या समृद्धि प्राप्त कर लें उसका कोई मायने नहीं रहता। हमारी संस्कृति पुरातनकाल से ही हमें यह सीख देती रही है कि पूरी वसुधा ही हमारा परिवार है। 'वसुधैव कुटुंबकम' हमारा ध्येय मंत्र हुआ करता था। अपने उच्च सांस्कृतिक मूल्यों व विरासत के कारण भारत प्राचीन काल में 'सोने की चिड़िया' के नाम से जाना जाता था। यह देश नाना प्रकार के धन–धान्य से परिपूर्ण था। इसी कारण इसकी चर्चा देश–देशान्तर व दिक्–दिगन्त में हुआ करती थी, फलतः विदेशी लोग व आक्रांता भी भारत की तरफ आकर्षित हुए।

प्राचीन काल में भारत का कारोबार कई देशों यथा– ईरान, ईराक व अरब देशों तक फैला था तथा कई प्रकार के मसालों, वस्त्र आदि का निर्यात व व्यापार हुआ करता था। एक अनुमान के अनुसार यह व्यापार लगभग 25 प्रतिशत तक था जो आज की तुलना में बहुत ज्यादा था। भारत अपने आप में एक समृद्ध देश था परंतु हजारों वर्षों तक गुलामी की जंजीरों में जकड़े रहने के कारण यह एक विपन्न देश बन गया।

कहते हैं कि बड़ी त्रासदी भी अपने पीछे कोई न कोई एक सुअवसर छोड़ जाती है। परन्तु यह इस बात पर निर्भर करता है कि उस आपदा को हम कैसे लेते हैं? उसे अवसर के रूप में हम कैसे बदलने का प्रयत्न करते हैं? क्या हम उसे सच्चे मनोयोग व मनोभाव से ले रहे हैं या नहीं? वर्ष 2020 के शुरूआती महीनों में देश में कोविड–19 नामक वैश्विक महामारी ने दस्तक दी। इस महामारी ने विश्व के विकसित राष्ट्रों में तबाही का ऐसा मंजर दिखाया कि पूरी दुनिया एकाएक थम सी गई। अपने को आर्थिक रूप से सम्पन्न कहलाने वाले देश अमेरिका, इंग्लैंड, रूस व यूरोप के कई देशों में लाखों लोगों ने अपनी जान गंवाई और शायद इतनी भयावह स्थिति में वे देश कभी नहीं रहे होंगे। पूरी दुनिया त्राहि–त्राहि करने लगी। चारों तरफ विनाश का मंजर था। रेल, बस, हवाई सेवाएं एकाएक ठप हो गई। पूरी दुनिया मानो ठहर सी गई हो। ऐसे समय में हमारे प्रधानमंत्री माननीय श्री नरेन्द्र मोदी जी ने 'आत्मनिर्भर भारत' के मूल मंत्र का आह्वान किया तथा '*लोकल* के लिए *वोकल* ' का नारा दिया। इस अवधारणा अथवा दृष्टि के पीछे बहुत सोची–समझी बात छिपी थी कि कैसे इस त्रासदी से निपटा जाए और दुनिया को इस घोर संकट से निकाला जाए।

'आत्मनिर्भर भारत' माननीय प्रधानमंत्री जी के उस दृष्टि को स्पष्ट करता है कि भारत कैसे एक आत्मनिर्भर राष्ट्र बन सकता है और विश्व को पहले की भांति कैसे निर्णायक नेतृत्व दे सकता है? दिनांक 12 मई 2020 को पहली बार सार्वजनिक रूप से कोरोना विषाणु वैश्विक महामारी से उबरने के लिए उन्होंने ₹ 20 लाख करोड़ के राहत *पैकेज* की घोषणा की। यह राशि देश के सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 10 प्रतिशत है। इसकी खास बात यह है कि उन्होंने किसी को भी नकद नहीं दिया अपितु अर्थव्यवस्था के सम्यक संचालन हेतु जो अभूतपूर्व दृष्टिकोण दिया उससे न तो देश घाटे में रहेगा और न ही किसी को आगे वित्तीय मनमानी करने की छूट मिलेगी। अब इस योजना के बारे में संक्षेप में जानेंगेः–

आत्मनिर्भर भारत अभियान के पांच स्तंभ हैं:

1. **अर्थव्यवस्थाः** एक ऐसी अर्थव्यवस्था जो छोटे–छोटे परिवर्तन (*इन्क्रीमेंटल चेंज*) नहीं अपितु ऊंची छलांग (*क्वांटम जंप*) लाए।
2. **बुनियादी ढांचाः** एक ऐसा बुनियादी ढांचा, जो आधुनिक भारत की पहचान बने तथा विदेशी कंपनियों को आकर्षित कर सके।
3. **तंत्र प्रौद्योगिकीः** एक ऐसी व्यवस्था जिसमें आधुनिक तकनीक को अपनाने और समाज में

डिजिटल तकनीक का उपयोग बढ़ाना शामिल हो।

4. **जनसांख्यिकी (*डेमोग्राफी*) :** भारत की जीवंत जनसांख्यिकी हमारी ताकत है। यह आत्मनिर्भर भारत के लिए ऊर्जा का स्रोत है।

5. **मांग :** भारत के पास बड़ा घरेलू बाजार और मांग है। उसे पूरी क्षमता से इस्तेमाल किये जाने की आवश्यकता है।

यदि हम सभी प्रकार से सम्पन्न और खुशहाल हो जाएं तो भी हम तब तक निश्चिंत नहीं हो सकते जब तक कि हमारी सुरक्षा सुदृढ़ न हो। यह समृद्धि हमारे जीवन में तब तक स्थायित्व नहीं ला सकती है जब तक हम पूर्णतया सुरक्षित न हों। यह सुरक्षा पुख्ता होनी चाहिए और हमें चहुंओर से मिलनी चाहिए: नभ, जल व थल, हर एक जगह से। हमारी भौगोलिक सीमाएं पूर्णतया चाक–चौबंद होनी चाहिए। यह तभी संभव हो सकता है जब हमारे सुरक्षा बल इतने सशक्त व पेशेवर हों कि परिंदा भी कहीं से पर न मार सकें। यदि ऐसा नहीं हुआ तो जैसा कि पूर्व में बताया जा चुका है कि कैसे हमारा देश सोने की चिड़िया था और आक्रांताओं ने कई बार इसे इस तरह लूटा कि यह एक विपन्न देश बन गया और भौगोलिक पराधीनता के साथ–साथ मानसिक दिवालियेपन से भी अभिशप्त हो गया।

मेरा तो मानना है कि जहां सुरक्षा नहीं है वहां सम्पन्नता आ ही नहीं सकती। सम्पन्नता व खुशहाली के लिए सुरक्षा सबसे महत्वपूर्ण व अहम कड़ी है। देश की एकता व अखंडता को अक्षुण्ण बनाए रखने में सुरक्षा बलों का हमेशा से विशेष योगदान रहा है। इसे हम अनेक काल–खंडों में देख सकते हैं। भारत में जब बाहरी आंक्राता आए तो उस समय जो राजे–रजवाड़े अथवा क्षत्रप थे, वे संगठित नहीं थे। उनकी सेनाओं में अत्याधुनिक हथियारों, साजो–सामान का अभाव था। वे सेनाएं अस्त्र–शस्त्र से सुसज्जित नहीं थीं और बहुत बड़ी संख्या में होने के बावजूद भी युद्ध में पराजित हुई। ऐसा माना जाता है कि अपनी नौसेना के बल पर ही इंग्लैंड ने एक समय पूरी दुनिया पर शासन किया जबकि जनसंख्या की दृष्टिकोण से वह एक छोटा देश था।

सुरक्षा के अहम सोपान

किसी भी राष्ट्र की सुरक्षा के लिए उसकी सीमाओं, उसकी जनशक्ति व अवसंरचनाओं की सुरक्षा मुख्य है। इस पर हम संक्षेप में प्रकाश डालते हैं:–

1. **आधारभूत संरचना/देश की भौगोलिक सीमाओं की सुरक्षा :** देश की समृद्धि में बड़े–बड़े कल–कारखानों, पुलों, बंदरगाहों, हवाई अड्डों, बांधों व परियोजनाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। हमें इन सभी की सुरक्षा सुनिश्चित करनी होगी। देश की सीमाओं (जल, थल व नभ) की मुस्तैदी से सुरक्षा की जानी चाहिए। थोड़ी सी चूक मुम्बई हमले जैसे अवसर देती है और देश की साख पर प्रतिकूल असर छोड़ती है।

2. **लोगों की सुरक्षा:** लोगों में सुरक्षा भावना बलवती हो। उनकी जान–माल की हिफाजत हो, यह एक सभ्य व विकसित समाज में अपरिहार्य जरूरत है। ऐसा कहें कि जहां लोगों की सुरक्षा नहीं होगी वहाँ आर्थिक प्रगति व सम्पन्नता नहीं आ सकती, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। इसका जीवंत उदाहरण जम्मू–कश्मीर, छत्तीसगढ़ व झारखंड जैसे राज्य हैं जहां प्रचुर मात्रा में खनिज सम्पदा उपलब्ध होने के बावजूद भी ये राज्य दूसरे राज्यों की तुलना में काफी पिछड़े हैं।

3. **तकनीक आधारित–*साइबर* सुरक्षा:** आज देश की बहुसंख्यक आबादी *सोशल नेटवर्किंग* साइट्स का उपयोग करती हैं। अधिकतर *सोशल नेटवर्किंग साइट्स* के *सर्वर* विदेशों में हैं, जिससे भारत में *साइबर* अपराध घटित होने पर उनकी जड़ तक पहुंच पाना सुरक्षा एजेंसियों के लिए बहुत कठिन हो जाता है। *साइबर* अपराध को रोकने के लिए सुरक्षा बलों व स्थानीय पुलिस व प्रशासन को इन तकनीक में कुशल होना होगा।

सुरक्षा के नए आयाम

भारत की सैन्य क्षमताओं को बढ़ाने के लिए *डी.आर.डी.ओ.* ने कई नवाचार व तकनीक विकसित की हैं व नित नए अनुसंधान कार्य को बड़ी तीव्र गति से बढ़ाया जा रहा है। हमारे वैज्ञानिक नई–नई तकनीक से सुसज्जित मिसाइलों, पनडुब्बियों व उपग्रहों का निर्माण कर रहे हैं। कंप्यूटर की एक *क्लिक* से दूर–दराज व दूर–देश में बैठे दुश्मन को निशाना साध कर नेस्तनाबूत किया जा सकता है। इस दिशा में हमारे वैज्ञानिक व

अनुसंधानकर्ता दिन–रात एक किये हुए हैं। इससे हमारी सेनाएं व सुरक्षा बल मजबूत होंगे और देश के सामने जो नक्सलवाद, आतंकवाद व फिरका–परस्त ताकतें सिर उठाती हैं, उन्हें सफाया करने में सफलता मिलेगी।

कृतिम बुद्धिमत्ता

आने वाला समय कृतिम बुद्धिमत्ता का है। इससे सामरिक क्षेत्र में बहुत ही बदलाव होने वाला है। *रोबोट* आधारित युद्ध लड़े जाएंगे। *साइबर* आधारित अपराधों को रोकने के लिए तकनीक को बढ़ावा देना होगा अन्यथा *साइबर* अपराधी किसी उपकरण का दुरुपयोग करके गोपनीय व्यावसायिक जानकारी, सरकारी जानकारी या किसी यंत्र को अक्षम कर सकते हैं। इससे बहुत बड़ी जन–धन हानि हो सकती हैं। इन सब क्षेत्रों में हमें निरन्तर काम करने की आवश्यकता है। इस दिशा में भारत सरकार बड़ी संजीदगी से काम कर रही है।

सुरक्षा तंत्र का बढ़ावा देना

सुरक्षा एजेंसियों द्वारा यह भी पता लगया गया है कि *ऑनलाइन* मुद्रा स्थानांतरित करने वाले विभिन्न *एप* के माध्यम से आतंकवादियों एवं देश विरोधी तत्वों की *फंडिंग* की जाती है। *साइबर* अपराध से निपटने के लिए सरकार ने कई उपाय किये हैं जिसमें सूचना, सुरक्षा, शिक्षा और जागरूकता, *कंप्यूटर इमरजेंसी रिस्पांस टीम, साइबर* स्वच्छता केन्द्र आदि स्थापित किये गये हैं। भारत सूचना साझा करने के लिए सर्वोत्तम कार्य प्रणाली अपनाने के लिए अमेरिका, ब्रिटेन और चीन जैसे देशों के साथ समन्वय स्थापित कर रहा है। अंतर एजेंसी समन्वय के लिए भारतीय साइबर अपराध समन्वय केन्द्र (*इण्डियन साइबर क्राइम कोऑर्डिनेशन सेन्टर*–14सी) की स्थापना की गई है।

आज देश की समृद्धि में सुरक्षा बलों का अभूतपूर्व योगदान है। सही मायनों में कहा जाए तो सुरक्षा बलों के बगैर एक समृद्ध देश या राष्ट्र की कल्पना करना, बेइमानी होगी। समय की मांग है कि सुरक्षा बल अपने आपको नित–नवीन बदलते परिवेश, तकनीक व रणनीति से परिचित रहें और मुस्तैदी से आगे बढ़ते रहें।

रासायनिक खेती का स्वस्थ विकल्प है प्राकृतिक खेती

अजय कुमार साह
भाकृअनुप—भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

रासायनिक उर्वरकों के अंधाधुंध प्रयोग से खेतिहर जमीन बीमार हो रही है। भूमि के साथ—साथ यह समस्या किसानों से भी प्रत्यक्ष रूप से जुड़ी है। भारत में हज़ारों किसान प्रत्येक वर्ष आत्महत्या करते हैं। वर्ष 1995 से 2020 तक 3 लाख से अधिक किसान आत्महत्या कर चुके हैं। इस समस्या के मूल में महँगे बीज, मृदा का क्षरण तथा जीवन के लिये खतरनाक रासायनिक उर्वरक व कीटनाशक के साथ—साथ ₹ 79,530 करोड़ (2020—2021) की सरकार समर्थित रासायनिक उर्वरक अनुदान भी है।

खाद्य एवं कृषि संगठन ने पुष्टि की है कि रासायनिक कृषि का संबंध किसानों की ऋणग्रस्तता और आत्म हत्याओं से है तथा यह भी रेखांकित किया है कि वर्ष 1997—2005 के बीच सिर्फ महाराष्ट्र राज्य में 30,000 किसानों ने आत्महत्या की। बंबई उच्च न्यायालय ने महाराष्ट्र में किसानों की आत्महत्या के कारणों को संबोधित करते हुए कहा कि कपास उगाए जाने वाले क्षेत्रों में आत्महत्या की अधिक घटनाएँ हुईं, जहाँ रासायनिक उर्वरकों का उपयोग अधिकाधिक किया गया था। सरकार की प्राक्कलन समिति की वर्ष 2015 की रिपोर्ट में रासायनिक खेती के प्रति वर्तमान नीति की निंदा करते हुए कहा गया था कि विद्यमान उर्वरक अनुदान व्यवस्था ने भारतीय कृषि का सर्वाधिक नुकसान किया है।

हरित क्रांति एवं रासायनिक खेती

1960 के दशक में अपनाई गई हरित क्रांति ने देश में कृषि उत्पादन के एक नए युग का सूत्रपात किया। इस क्रांति का प्रमुख उत्प्रेरक नवीन संकर क़िस्मों के साथ रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग रहा। उस समय भारत खाद्यान्न की अत्यंत कमी से जूझ रहा था और कृषि में इन संकर क़िस्मों तथा रासायनिक उर्वरकों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों और सिंचाई में भारी निवेश ने उच्च फसल उत्पादन का लक्ष्य पूरा किया। किसानों के जी—तोड़ मेहनत से निश्चय ही हरित क्रांति ने तात्कालिक संकट का समाधान किया। किंतु हरित क्रांति ने भविष्य के लिये एक हानिकारक पद्धति का सूत्रपात भी किया। मृदा का क्षरण, सिंचाई—गहन और जल—प्रदूषणकारी खेती तथा पारिस्थितिकी के प्रतिकूल कृषि की शुरुआत हुई। इस प्रकार की कृषि पद्धति न तो कृषि के टिकाऊ विकास के लिये उचित है और न ही सार्वजनिक स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से लाभकारी है। सतही प्रयास के रूप में कृषि क्षेत्र में बदलाव हेतु कर्ज़ माफ़ी, न्यूनतम समर्थन मूल्य, संविदा खेती जैसे अवयवों पर तो बल दिया गया, लेकिन यह सब नाकाफी है। खेतों में प्रयोग किए गए रासायनिक खाद और कीटनाशक का बहुत कम हिस्सा अपने वास्तविक उद्देश्य के काम आता है। इसका एक बड़ा हिस्सा तो हमारे विभिन्न जल—स्रोतों में पहुंच जाता है और भू—जल को प्रदूषित करता है। इसके कारण मानव तथा पशुओं के लिए गंभीर स्वास्थ्य—समस्याएं उत्पन्न हुई। नदी और अन्य जल—स्रोतों के प्रदूषण का बुरा असर मछलियों को भी भुगतना पड़ता है।

रासायनिक खेती तथा किसान

भारत के 86 प्रतिशत कृषक लघु व सीमांत कृषक हैं जो महँगी रासायनिक कृषि के कारण आर्थिक तंगी से जूझ रहे हैं और वहीं दूसरी ओर उर्वरक कंपनियां आर्थिक लाभ अर्जित कर रही हैं। सरकार प्रदत्त भारी उर्वरक सब्सिडी का लाभ लघु कृषकों को नहीं मिलता बल्कि उर्वरक निर्माता इसका लाभ उठाते रहे हैं। पिछले दो दशकों में किसानों के आत्मनिर्भरता और स्वावलम्बिता में भारी गिरावट आई है। वे कृषि की नई तकनीकों को अपनाने की दौड़ में शामिल होने के कारण रासायनिक कीटनाशक, खरपतवारनाशक, रासायनिक खाद, बाहरी बीजों व उपकरणों पर बहुत अधिक निर्भर हो गए हैं। उन्हें उम्मीद थी कि यह निर्भरता उन्हें आर्थिक समृद्धि की ओर ले जाएगी। वास्तव में वे इस निर्भरता से आर्थिक तंगी की ओर अग्रसर हुए।

अपनी परम्परागत खेती की समझ तो किसानों को थी किन्तु इन नई किस्मों को जो नए तरह के रोग लग रहे थे, उसके उपचार के लिये वे क्या करें, उन्हें पता नहीं था। इसी का फायदा उठाकर बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने उन्हें महँगी रासायनिक दवा का प्रयोग करने पर मजबूर किया। इस चक्कर में तो वे ऐसे फँसे कि अंधाधुंध पैसा खर्च कर डाला पर फिर भी बीमारियों व कीड़ों के प्रकोप को सन्तोषजनक ढंग से कम नहीं कर पाये। जहाँ एक ओर किसान इन अनुभवों से गुजर रहे थे, वहीं दूसरी ओर बड़ी–बड़ी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने किसानों पर अपना नियंत्रण बढ़ाने के प्रयास शुरू कर दिये। इस नियंत्रण को बढ़ाने का प्रमुख साधन बीज को बनाया गया क्योंकि बीज पर नियंत्रण होने से पूरी खेती–किसानी पर नियंत्रण सम्भव है। अतः बड़ी कम्पनियों ने बीज क्षेत्र में अपने पैर पसारने आरम्भ किये। पहले बीज के क्षेत्र में छोटी कम्पनियाँ ही अधिक नजर आती थीं परन्तु अब विश्व स्तर की बड़ी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने छोटी–छोटी कम्पनियों को खरीदना आरम्भ किया। जो बड़ी कम्पनियाँ इस क्षेत्र में आई, वे पहले से कृषि रसायनों व विशेषकर कीटनाशकों, खरपतवारनाशकों आदि के उत्पादन में लगी हुई थीं। इस तरह बीज उद्योग व कृषि रसायन उद्योग एक ही तरह की कम्पनी के हाथ में केन्द्रीकृत होने लगा। इससे यह खतरा उत्पन्न हुआ कि ये कम्पनियाँ ऐसे बीज तैयार करेंगी जो उनके रसायनों के अनुकूल हों अथवा बीज को वे अपने रसायन की बिक्री का माध्यम बनाएँगी। इस तरह बीज उद्योग का अपना जितना मूल्य था, उससे कहीं अधिक बिक्री रसायनों आदि के माध्यम से हो सकती थी। इसी कारण अनेक बड़ी रासायनिक कम्पनियाँ इस उद्योग की ओर आकर्षित हुईं। समय के इसी कालखंड में *जेनेटिक इंजीनियरिंग* में हुए महत्त्वपूर्ण अनुसंधान से वैज्ञानिक विशिष्ट गुणों वाले जीन को एक जीव से दूसरे जीव में प्रवेश दिला कर जीवन के विभिन्न रूपों को एवं उनके गुणों को बदलने की क्षमता प्राप्त कर ली। *जेनेटिक इंजीनियरिंग* में हुए इस प्रगति को बड़ी कम्पनियों ने अवसर में परिवर्तित कर दिया और उन्होंने ऐसे बीज बना डाले जो उनके रसायनों की बिक्री के अनुकूल हो। इन कम्पनियों ने *जेनेटिक इंजीनियरिंग* में बड़े पैमाने पर निवेश करना आरम्भ किया। इस तरह जिन कम्पनियों के हाथ में बीज उद्योग और रसायन थे, उन्हीं के पास कृषि कार्य से सम्बन्धित *जेनेटिक इंजीनियरिंग* भी पहुँचने लगी। इस प्रकार इन कम्पनियों की खेती–किसानी को प्रभावित करने की क्षमता कई गुणा बढ़ गई। आज भारत का किसान इन बड़ी कंपनियों के हाथ की कठपुतली बनकर रह गया है। वह पूरी तरह से दूसरों या यूं कहें कि इन बहुराष्ट्रीय रासायन निर्माता कंपनियों के षडयंत्र में जकड़ सा गया है।

छद्म खाद्य सुरक्षा

अंग्रेजी सत्ता के समय 1943 में बंगाल में पड़े अकाल ने देश में खेती की सूरत बदल दी थी। इस अकाल ने नीतिकारों को यह महसूस करा दिया था कि सबसे पहली प्राथमिकता लोगों का पेट भरने की है। इसके बाद खेती की पैदावार बढ़ाने के रास्ते तलाशे गये। बाद में हरित क्रान्ति का आगाज हुआ। धीरे–धीरे बीजों से लेकर खेती के नये तौर–तरीके और खाद की खुराक को चुस्त करने की शुरुआत हुई। खेती–बाड़ी को लाभ का सौदा बनाकर देश को आत्मनिर्भर बनाने की कोशिश शुरू हुई। समय के साथ हम खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भर हुए, लेकिन इसके साथ–साथ एक असुरक्षा की भी शुरुआत हुई है। खाद्य सुरक्षा की तरफ तो हम बढ़े, पर भोजन की पूरी परिभाषा में खरे नहीं उतर पाये। एक तरफ जहाँ भोजन में आवश्यक तत्वों की कमी हुई वहीं दूसरी तरफ खेती में ऐसे तत्वों का उपयोग बढ़ा जो शरीर के लिये घातक हैं। असल में खाद्य सुरक्षा की होड़ में हम सिर्फ उत्पादन बढ़ाने पर केन्द्रित रहे, गुणवत्ता की तरफ ध्यान नहीं दे पाये। यह सब कृषि रसायनों के उत्पादन हेतु बड़े उद्योगों की शुरुआत से हुआ। तीन परिस्थितियों के कारण देश के कृषि व्यवस्था तंत्र ने उद्योगों के आगे घुटने टेक दिये। पहला, पूरी जनसंख्या के लिए पर्याप्त भोजन की आवश्यकता जो उच्च रसायनों के उपयोग से सम्भव था। दूसरा, आकर्षक विज्ञापन जिन्होंने उत्पादन को आकर्षित किया और तीसरा, सरकार द्वारा इन उद्योगों को लम्बी–चौड़ी *सब्सिडी*। आज देश में लगभग 200 बड़े, मझोले और छोटे दर्जे के उद्योग हैं जो खेती में प्रयोग होने वाले रसायनों की आपूर्ति कर रहे हैं। वर्ष 2019–2020 में 427.52 लाख मीट्रिक टन रासायनिक खादों का उत्पादन अपने देश में हुआ, जो दुनिया में तीसरे स्थान पर है। वर्ष 1969 में भारत में 12.4 किलोग्राम रासायनिक उर्वरक का प्रयोग होता था जो

कि वर्ष 2018 में बढ़कर 175 किलोग्राम हो गया। इतनी मात्रा में रासायनिक खादों का प्रयोग पर्यावरणीय विषमताओं का भी कारक है। इन खादों का अधिकांश हिस्सा पानी के साथ या तो नदी–नालों के रास्ते समुद्र या फिर भूमिगत जल को प्रदूषित करता है। अत्यधिक फास्फेट के प्रयोग से उत्पादित खाद्य मानव शरीर के लिये हानिकारक होता है। इसी तरह अत्यधिक मात्रा में नाइट्रोजन के उपयोग से पानी में ऑक्सीजन की कमी हो जाती है जिससे जल पादप और जीवों पर प्रतिकूल असर पड़ता है। यही वजह है कि यूरोप और अमेरिका ने इनके उपयोग को नियंत्रित किया है। फास्फोरस उर्वरक में कैडमियम होता है जो गुर्दो के लिये नुकसानदायक होता हैं। उसमें फ्लोराइड की भी अधिकता पाई जाती है, जो शरीर के लिये घातक है। पेट से लेकर दाँतों की बीमारी का एक कारण फ्लोराइड ही है। यह भी पाया गया है कि फास्फेट का अधिक उपयोग मिट्टी में यूरेनियम–238 की मौजूदगी का कारण बन सकता है जो बाद में पानी–भोजन के साथ शरीर में भी पहुँच सकता है। रासायनिक खादों के लगातार अत्यधिक उपयोग से मिट्टी में अतिसूक्ष्म आवश्यक तत्वों की भी कमी आती है। पिछले 50–60 सालों में जस्ता, लौह, तांबा एवं मैग्नीशियम हमारी मिट्टी से खत्म से हो गये हैं। रासायनिक खादों के उत्पादन में ऊर्जा का जो अत्यधिक उपयोग होता है उसके भी दुष्परिणाम आने लगे हैं। अमोनिया खाद बनाने के लिये दुनिया की 5 फीसद जलाऊ गैस का उपयोग किया जाता है। चूँकि नाइट्रोजन खाद की माँग अधिक है इसलिये उसके उत्पादन से नाइट्रस ऑक्साइड, कार्बन डाइऑक्साइड के बाद दूसरा बड़ा वायु प्रदूषण का कारण बन रहा है। दूसरे देशों में खासतौर से यूरोप, ब्रिटेन और ऑस्ट्रेलिया ने इस दिशा में जरूरी कदम उठाने शुरू कर दिये हैं। वहाँ पानी–मिट्टी को उर्वरकों के प्रदूषण से बचाने के लिये कायदे–कानून बन चुके हैं। साथ ही खेती में उनके उपयोग पर नियंत्रण भी शुरू हो चुका है, पर अपने देश में नियंत्रण के अभाव में हालात गम्भीर हो रहे हैं। रासायनिक खादों के अधिक प्रयोग से मिट्टी में उपयोगी तत्वों की कमी हो रही है। अगर ऐसा ही चलता रहा तो जल्द ही बड़े दुष्परिणाम सामने आयेंगे।

कृषि अनुसंधान की दिशा

अब समय आ गया है कि रासायनिक खेती से होने वाले दुष्परिणामों पर गंभीर चिंतन कर स्वस्थ एवं समृद्ध खेती की ओर कदम बढ़ाया जाए। खाद्य की गुणवत्ता, मिट्टी के स्वास्थ्यवर्धक एवं परिस्थितिकी अनुकूल कृषि अनुसंधान हों जिससे खेती की ऐसी पद्धति विकसित हो जो किसान, समाज एवं पर्यावरण हितैषी हो। नवीन कृषि अनुसंधान से हम जानने–समझने का प्रयास करें कि किस तरह प्रकृति अपनी ओर से मिट्टी को उपजाऊपन बनाती है और पौधों को विभिन्न पोषक तत्व उपलब्ध कराती है। इसकी समझ बनाने के बाद हम अपनी खेती को प्रकृति की इस प्रक्रिया से जोड़ कर ही चलें और उसमें व्यवधान डालने वाला कोई कार्य न करें। परिस्थितिकी अनुकूल वैज्ञानिक प्रक्रिया ही किसानों की दृष्टि से सबसे सस्ती और टिकाऊ सिद्ध होगी। इस विधि में विभिन्न जीवाणु, केंचुए, वनस्पतियां, मधुमक्खियाँ, मेंढक आदि अपने आप मिट्टी के उपजाऊपन को बढ़ाने और कीटों से रक्षा करने का कार्य करेंगे। रसायनों से की जा रही खेती में एक समस्या ठीक की जाती है तो कोई दूसरी समस्या उत्पन्न हो जाती है। कभी एक पोषक तत्व की कमी थी तो कभी उसकी अधिकता हो जाती है। कभी विभिन्न पोषक तत्वों में असंतुलन उत्पन्न हो जाता है। कभी किसी सूक्ष्म पोषक तत्व की कमी हो जाती है तो कभी दूसरे की। अलग–अलग सूक्ष्म तत्व के लिए, अलग–अलग कृत्रिम खाद के लिए किसान को कहा जाता है। सूक्ष्म पोषक तत्व तो कितने ही हैं। आखिर कितना आर्थिक बोझ सहने की किसान की क्षमता है? अतः उचित यही होगा कि प्रकृति द्वारा संतुलित पोषक तत्व उपलब्ध करवाने की जो व्यवस्था है उसी को अच्छी तरह समझा जाए और उसके अनुकूल कृषि कार्य किए जाएं। अगर कृषि अनुसंधान को इस रूप में विकसित किया जाए, तो हमारे देश का हर किसान इसमें भागीदार बन सकेगा। कृषि भूमि को धीरे–धीरे रसायनों की लत से मुक्त कर हमें अपने देश में उपलब्ध जैविक खाद का भरपूर उपयोग करना होगा और किसानों को इस कार्य के लिए तकनीकी और आर्थिक सहायता देनी होगी।

प्राकृतिक खेती–एक स्वस्थ विकल्प

प्राकृतिक खेती जापान के किसान एवं दार्शनिक मासानोबू फुकुओका (1913–2008) द्वारा स्थापित कृषि की पर्यावरण हितैषी पद्धति है। फुकुओका ने इस पद्धति

का विवरण जापानी भाषा में लिखी अपनी 1975 की पुस्तक *'सिजेन नोहो'* में किया है। इसलिए कृषि की इस पद्धति को 'फुकुओका विधि' भी कहते हैं तथा यह एक पारिस्थितिक कृषि दृष्टिकोण है। इस पद्धति में 'कुछ भी न करने' की सलाह दी जाती है जैसे जुताई न करना, गुड़ाई न करना, उर्वरक न डालना, कीटनाशक न डालना, निराई न करना आदि। वैसे तो भारत में प्राकृतिक खेती बहुत ही प्राचीन परम्परा रही है, इसीलिए इसे ऋषि कृषि भी कहते हैं। लेकिन स्वतंत्र भारत के इतिहास में विशेषकर हरित क्रांति के बाद अपने देश में प्राकृतिक खेती के सूत्रधार श्री सुभाष पालेकर जी हैं, उन्हें इस काम के लिए 2016 में 'पद्मश्री' से भी सम्मानित किया जा चुका है। श्री सुभाष पालेकर ने 1972 से 1985 तक रसायनिक उर्वरकों की मदद से खेती की तथा इस दौरान उनको उपज अच्छी प्राप्त हुई, लेकिन बाद में उन्हीं खेतों से फसलों के उत्पादन में गिरावट आनी शुरू हो गई। इस बात से उनके मन में घटती उपज के प्रति एक जिज्ञासा उत्पन्न हुई। कृषि में स्नातक करने की वजह से उनमें इस सवाल का जवाब खोजने की इच्छा शक्ति प्रबल हुई और तीन वर्षों तक उन्होंने इसके कारणों की तलाश की। पालेकर जी ने निष्कर्ष यह निकाला कि रसायनिक खेती का कृषि विज्ञान एक झूठे दर्शन पर आधारित है, फिर उन्हें हरित क्रांति में दोष दिखाई देने लगा। इस तरह उन्होंने वैकल्पिक कृषि पर शोध शुरू कर दिया। इसके बाद से वह प्राकृतिक खेती की ओर आकर्षित हुए और इसके प्रति किसानों में जागरूकता लाने का उनका प्रयास अनवरत जारी है।

भारत में इस खेती की शुरूआत सबसे पहले दक्षिण भारत के कर्नाटक राज्य में हुई और धीरे–धीरे यह खेती भारत के अन्य राज्यों में भी प्रसिद्ध होने लगी है। कर्नाटक राज्य में इस खेती की शुरूआत श्री सुभाष पालेकर ने स्टेट फार्मर्स एसोसिएशन, कर्नाटक राज्य रैथा संघ और *मेंबर ऑफ ला वाया कम्पेसिना* के साथ मिलकर की थी।

इस खेती की पद्धति को *जीरो बजट* खेती भी कहते हैं। *जीरो बजट* या प्राकृतिक खेती, एक कृषि तकनीक है जिसमें उर्वरकों और कीटनाशकों या अन्य रसायनिक तत्वों का प्रयोग किए बिना या यूँ कहें कि बाजार से किसी भी प्रकार का निवेश खरीदकर प्रयोग किए बिना फसलों को उगाया जाता है। *जीरो बजट* प्राकृतिक खेती तकनीक के तहत जो फसल उगाई जाती है उसकी बढ़वार के लिए रसायन की जगह प्राकृतिक खाद का प्रयोग किया जाता है और ये खाद खुद से तैयार की जाती है।

प्राकृतिक खेती के सिद्धांत

1. पहला सिद्धांत है, खेतों में कोई जुताई नहीं करना, और न ही मिट्टी पलटना। धरती अपनी जुताई स्वयं स्वाभाविक रूप से पौधों की जड़ों के प्रवेश तथा केंचुओं व छोटे प्राणियों तथा सूक्ष्म जीवाणुओं के जरिए कर लेती है।
2. दूसरा सिद्धांत है कि किसी भी तरह की बाहर से तैयार खाद या रासायनिक उर्वरकों का उपयोग न किया जाए। इस पद्धति में हरी खाद और गोबर की खाद को ही उपयोग में लाया जाता है।
3. तीसरा सिद्धांत है, निंराई–गुड़ाई न की जाए। खरपतवार मिट्टी को उर्वर बनाने तथा जैव–बिरादरी में संतुलन स्थापित करने में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। बुनियादी सिद्धांत यही है कि खरपतवार को पूरी तरह समाप्त करने के बजाए नियंत्रित किया जाना चाहिए।
4. चौथा सिद्धांत रसायनों पर बिल्कुल निर्भर न करना है।

प्राकृतिक खेती के फायदे

1. **कम लागत**–प्राकृतिक खेती तकनीक में किसी भी प्रकार के रसायन और कीटनाशकों को खरीदने की जरूरत नहीं पड़ती है और इस तकनीक में किसान केवल अपने द्वारा बनाई गई निवेशों का प्रयोग करते हैं, जिसके चलते इस प्रकार की खेती करने में कम लागत लगती है।
2. **मृदा के लिए सेहतमंद**–रसायन और कीटनाशक तत्वों का इस्तेमाल खेती के दौरान इसलिए किया जाता है ताकि फसलों में किसी भी प्रकार का कीड़ा ना लग सके और फसल का अच्छे से विकास हो सके। हालांकि जब किसानों द्वारा रसायन और कीटनाशक तत्वों का छिड़काव फसलों पर किया जाता है, तो इनके कारण मृदा की उर्वरा शक्ति क्षीण पड़ने लगती है, और कुछ समय बाद जमीन बीमार हो जाती है। इस कारण

फसलों की पैदावार घटने लगती है। लेकिन प्राकृतिक खेती तकनीक का प्रयोग किसानों द्वारा खेती के लिये किया जाए तो इसकी मदद से जमीन का उपजाऊपन बना रहता हैं और फसलों की पैदावार अच्छी होती है।

3. **अधिक पैदावार एवं मुनाफा**–प्राकृतिक खेती के तहत जो फसल उगाई जाती है उसकी पैदावार काफी अच्छी होती है। इस खेती के तहत केवल खुद से बनाई गई खाद का ही इस्तेमाल किया जाता है और ऐसा होने से किसानों को किसी भी फसल को उगाने में कम खर्चा आता है। इस प्रकार अधिक उत्पादन एवं कम लागत लगने के कारण उस फसल पर किसानों को अधिक मुनाफा होता है।

प्राकृतिक खेती के चार स्तंभ

1. जीवामृत/जीवनमूर्ति

जीवामृत या जीवनमूर्ति की मदद से मिट्टी को पोषक तत्व मिलते हैं और ये एक उत्प्रेरक एजेंट के रूप में कार्य करता है, जिसके कारण मिट्टी में सूक्ष्मजीवों की गतिविधियां बढ़ जाती है और फसलों की पैदावार अच्छे से होती है। इसके अलावा जीवामृत की मदद से पेड़ों और पौधों को कवक और जीवाणु संयंत्र रोग होने से भी बचाया जाता है।

जीवामृत बनाने की विधि – एक *बैरल/ड्रम* में 200 लीटर पानी डालें और उसमें 10 कि.ग्रा. गाय का ताजा गोबर, 5 से 10 लीटर गाय का मूत्र, 2 कि.ग्रा. दाल का बेसन, 2 कि.ग्रा. गुड़ और 100 ग्राम मेड़ या जंगल की मिट्टी को मिला लें। सभी को अच्छी तरह से मिलाने के बाद *ड्रम* को जालीदार कपड़े से ढककर इस मिश्रण को 48 घंटों के लिए छाया में रख दें। 48 घंटों में चार बार लकड़ी के डंडे से मिश्रण को मिलाएँ। इस तरह यह मिश्रण प्रयोग के लिए तैयार हो जाता है।

किस तरह से इस्तेमाल करें इस मिश्रण को – एक एकड़ जमीन के लिए 200 लीटर जीवामृत मिश्रण की आवश्यकता होती है, और किसान फसलों में प्रति माह दो बार जीवामृत का छिड़काव करें। सिंचाई के पानी में इसे मिलाकर भी फसलों पर छिड़काव कर सकते हैं।

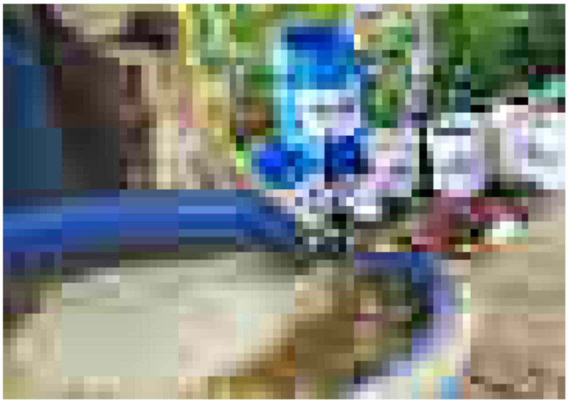

प्राकृतिक खेती का महत्वपूर्ण घटक–जीवामृत

प्राकृतिक खेती का आधार– गाय पालन

2. बीजामृत/बीजामूर्ति

इस उपचार का प्रयोग नए पौधे के बीज रोपण के दौरान किया जाता है और बीजामृत की मदद से नए पौधों की जड़ों को कवक, मिट्टी से पैदा होने वाली बीमारी और बीजों की बीमारियों से बचाया जाता है। बीजामृत को बनाने के लिए 5 कि.ग्रा. गाय का गोबर, 5 लीटर गाय मूत्र, 20 लीटर पानी, 50 ग्राम चूना, 50 ग्राम मिट्टी को एक साथ मिला लें। तैयार मिश्रण को 24 घंटे के लिए छाया में रखें तथा दो बार इसको लकड़ी के डंडे से मिलाएँ। अब यह 100 कि.ग्रा. बीज के शोधन के लिए तैयार हो जाता है।

किस तरह से इस्तेमाल करें इस मिश्रण को – किसी भी फसल के बीजों को बोने से पहले उन बीजों

को बीजामृत से शोधित कर लें, और उसके बाद उन बीजों को कुछ देर सूखने के लिए छोड़ दें। 24 घंटे बाद इन बीजों को जमीन में बो दें।

3. आच्छादन (*मल्चिंग*)

मिट्टी की नमी को संरक्षित करने के लिए और उसकी प्रजनन क्षमता को बनाए रखने के लिए *मल्चिंग* किया जाता है। *मल्च* प्रक्रिया के अंदर मिट्टी की सतह पर कई तरह के सामग्री लगायी जाती हैं, ताकि खेती के दौरान मिट्टी की गुणवत्ता को नुकसान न पहुंचे। मल्चिंग तीन प्रकार की होती हैं जो कि मिट्टी मल्च, *स्ट्रॉ मल्च* और *लाइव मल्च* है।

मिट्टी *मल्च*–खेती के दौरान मिट्टी की ऊपरी सतह को कोई नुकसान ना पहुंचे इसलिए मिट्टी *मल्च* का प्रयोग किया जाता है। मिट्टी के सतह के पास और मिट्टी को एकत्रित करके रखा जाता है, ताकि मिट्टी की जल प्रतिधारण क्षमता को बढ़ाया जा सके।

स्ट्रॉ मल्च–*स्ट्रॉ* (भूसा) सबसे अच्छी *मल्च* सामग्री में से एक है और भूसे *मल्च* का उपयोग सब्जी के पौधों की खेती में अधिक किया जाता है। सब्जी की खेती में धान और गेहूँ के भूसे का उपयोग कर अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है और मिट्टी की गुणवत्ता भी संरक्षित रहती है।

लाइव मल्च–*लाइव मल्चिंग* प्रक्रिया के अंदर एक खेत में एक साथ कई तरह के पौधे लगाए जाते हैं और ये सभी पौधे एक दूसरे पौधों को बढ़ने में मदद करते हैं। उदाहरण के लिए, कॉफी और लौंग के पेड़ को बढ़ने के लिए बहुत ज्यादा धूप की आवश्यकता नहीं होती है, वहीं गेहूं, गन्ना, बाजरा, रागी और मक्के के पौधों को ज्यादा

प्राकृतिक खेती में *स्ट्रॉ मल्च*

प्राकृतिक खेती में *लाइव मल्च*

धूप चाहिए। इसलिए *लाइव मल्चिंग* प्रक्रिया के अंदर ऐसे दो पौधे को एक साथ लगा दिया जाता है जिनमें से कुछ ऐसे पौधे होते हैं जो कि कम धूप लेने वाले पौधों को अपनी छाया प्रदान करते हैं और ऐसा होने से सभी पौधों का अच्छे से विकास हो पाता है।

4. *व्हापासा*

सुभाष पालेकर जी के अनुसार पौधों को बढ़ने के लिए अधिक पानी की जरूरत नहीं होती है और पौधे *व्हापासा* यानी भाप की मदद से भी बढ़ सकते हैं। व्हापासा वह स्थिति होती है जिसमें हवा अणु और पानी के अणु मिट्टी में मौजूद होते हैं और इन दोनों अणु की मदद से पौधे का विकास होता है।

गन्ना के साथ अन्तः फसल की प्राकृतिक खेती

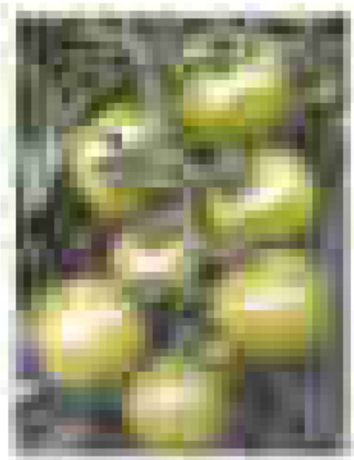

प्राकृतिक विधि से प्राप्त टमाटर की फसल

रासायनिक खेती	प्राकृतिक खेती
रासायनिक रूप से प्रबंधित मिट्टी में अवशेषों को छोड़ती है जो कि भू–जल में चला जाता है और जल को प्रदूषित कर देता है।	सभी प्रथाएं आपस में जुड़ी हुई हैं और अंतिम उत्पाद अपघट्य होगा। इसलिए पर्यावरण प्रदूषण का कोई कारण नहीं है।
अकार्बनिक *इनपुट* सामग्री महंगी होती है और उत्पादन और संचालन के लिए बहुत अधिक तकनीकी ज्ञान और निवेश की आवश्यकता होती है।	कार्बनिक *इनपुट* सामग्री कम खर्चीला स्रोत हैं, जो आसानी से उपलब्ध हैं और लागू करने में बहुत आसान है।

रासायनिक खेती और प्राकृतिक खेती– तुलनात्मक बिंदु

रासायनिक खेती	प्राकृतिक खेती
पौधों के पोषक तत्वों की पूर्ति कार्बनिक स्रोत के बजाय केवल अकार्बनिक स्रोत के माध्यम से की जाती है। यह अंततः मृदा–पारिस्थितिकी तंत्र के विकास को बाधित कर देता है।	खाद्य *वेब* संबंधों और तत्व चक्रण पर ध्यान केंद्रित किया जाता है, जिसका उद्देश्य कृषि – पारिस्थितिकी तंत्र को स्थिरता, संवहनीयता और संतुलन प्रदान करता है।
अधिकांश पोषक तत्व जड़ क्षेत्र से बाहर निकल जाते हैं और फसल बढ़वार के लिए उपयोग नहीं हो पाता है। इसी तरह रासायनिक रूप से प्रबंधित मिट्टी फसलों को अधिक संरचना समर्थन प्रदान नहीं करती है।	भौतिक (संरचना), रासायनिक (पोषक तत्व परिवर्तन और खनिजकरण) और जैविक गतिविधि (अपघटन) फसल की स्थिति और विकास के पक्ष में हैं। मिट्टी की जीवंतता फसल वृद्धि के लिए एक अच्छा विकास माध्यम और समर्थन प्रदान करती है।

प्रेरक संदेश

16 दिसम्बर, 2021 को भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी ने गुजरात के आनंद में आयोजित तीन दिवसीय कार्यक्रम के समापन समारोह में प्राकृतिक खेती पर विशेष चर्चा करते हुए कहा कि कृषि से जुड़े हमारे इस प्राचीन ज्ञान को हमें न सिर्फ फिर से सीखने की ज़रूरत है, बल्कि उसे आधुनिक समय के हिसाब से तराशने की भी ज़रूरत है। प्रधानमंत्री ने कहा कि आजादी के बाद के दशकों में जिस तरह देश में खेती हुई, जिस दिशा में बढ़ी, वो हम सबने बहुत बारीकी से देखा है। अब आज़ादी के 100वें वर्ष तक का जो हमारा सफर है, वो नई आवश्यकताओं, नई चुनौतियों के अनुसार अपनी खेती को ढालने का है। हरित क्रांति और रसायनिक उर्वरकों के प्रयोग का जिक्र करते हुए प्रधानमंत्री ने कहा कि ये सही है कि रसायनों और उर्वरकों ने हरित क्रांति में अहम भूमिका निभायी है। लेकिन ये भी उतना ही सच है कि हमें इसके विकल्पों पर भी साथ ही साथ काम करते रहना होगा। उन्होंने आगे कहा कि इससे पहले खेती से जुड़ी समस्याएं भी विकराल हो जाएं उससे पहले बड़े कदम उठाने का ये सही समय है। हमें अपनी खेती को रसायनशास्त्र की प्रयोगशाला से निकालकर प्रकृति की प्रयोगशाला से जोड़ना ही होगा। जब मैं प्रकृति की प्रयोगशाला की बात करता हूं तो ये पूरी तरह से विज्ञान आधारित ही है।

किसानों को प्राकृतिक खेती की जरूरत को समझाते हुए प्रधानमंत्री ने कहा, "आज दुनिया जितना आधुनिक हो रही है, उतना ही *'बैक टू बेसिक'* की ओर बढ़ रही है। *'बैक टू बेसिक'* का मतलब है अपनी जड़ों से जुड़ना! इस बात को आप सब किसान साथियों से बेहतर कौन समझता है? हम जितना जड़ों को सींचते हैं, उतना ही पौधे का विकास होता है। कृषि से जुड़े हमारे इस प्राचीन ज्ञान को हमें न सिर्फ फिर से सीखने की ज़रूरत है, बल्कि उसे आधुनिक समय के हिसाब से तराशने की भी ज़रूरत है। इस दिशा में हमें नए सिरे से शोध करने होंगे, प्राचीन ज्ञान को आधुनिक वैज्ञानिक *फ्रेम* में ढालना होगा। प्राकृतिक खेती के फायदे बताते हुए उन्होंने आगे कहा कि प्राकृतिक खेती से जिन्हें सबसे अधिक फायदा होगा, वो हैं देश के 80 प्रतिशत सीमांत एवं छोटे किसान। इनमें से अधिकांश किसानों का काफी खर्च, रसायनिक उर्वरकों पर होता है। अगर वो प्राकृतिक खेती की तरफ मुड़ेंगे तो उनकी स्थिति और बेहतर होगी। प्रधानमंत्री ने देश के हर एक राज्य को प्राकृतिक खेती अपनाने का आहवान किया तथा उन्होंने प्राकृतिक खेती को जनआंदोलन बनाने का भी आग्रह किया। इस अमृत महोत्सव में हर पंचायत से कम से कम एक गाँव को प्राकृतिक खेती से जोड़ने का भी आहवान किया। इस अवसर पर प्रधानमंत्री ने आजादी के अमृत महोत्सव में माँ भारती की धरा को रासायनिक खाद और कीटनाशकों से मुक्त करने का संकल्प लेने के लिए भी सभी को प्रेरित किया।

शुष्क क्षेत्रीय बागवानी : आत्मनिर्भर भारत की ओर बढ़ते कदम

पी.एल. सरोज एवं पी.पी. पारीक

भाकृअनुप—केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर, राजस्थान

भारत की आत्मनिर्भरता में कृषि, विशेषकर बागवानी फसलों का महत्वपूर्ण योगदान है। बागवानी फसलों में शुष्क क्षेत्रीय बागवानी फसलों का अपना महत्व है। इन्हें कम पानी वाली फसलों की संज्ञा भी दी जा सकती है। यद्यपि आज भी बहुत सी फल फसलें अवप्रयोगी हैं, लेकिन मानव जीवन में उनका पोषणोषधीय महत्व अत्यधिक है। शुष्क बागवानी फलों में से अधिकांश का औषधीय प्रयोग भी किया जाता है। इसलिए इन्हें सही मायने में नकदी फसल बोलना अतिश्योक्ति नहीं होगी। किसानों की आय को बढ़ाने के लिए खेती, बागवानी और पशुपालन तीनों का सम्यक जोड़ आवश्यक है, तभी संतुलित वर्ष भर आय संभव है। एक समय था जब, शुष्क क्षेत्रों में फसलें उगाना प्रचलन में नहीं था। समय की मांग और परम्परागत क्षेत्रों में घटती कृषि योग्य भूमि के कारण अपरम्परागत क्षेत्रों में खेती का प्रचलन बढ़ा है। अपरम्परागत क्षेत्र, विशेषकर शुष्क क्षेत्रों में उगाए जाने वाले फलों की गुणवत्ता अधिक होती है साथ ही उनमें औषधीय गुण भी प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं।

वर्तमान में भारत में लगभग 234.2 लाख हेक्टेयर बागवानी क्षेत्र से कुल 2835 लाख टन पैदावार हो रही है जो भारत के खाद्यान्न फसलों की पैदावार से भी ज्यादा है। प्रमुख बागवानी फसलें जैसे फल, सब्जियां, पुष्प एवं अलंकृत पौधे, कन्दवर्गीय फसलें, रोपण फसलें, औषधीय एवं संगधीय पौधे, मशरूम आदि में से केवल फलों द्वारा ही 889.7 लाख टन एवं सब्जियों से 1683 लाख टन की पैदावार हो रही है। भारत में बागवानी फसलों की औसत उत्पादकता 12.1 टन प्रति हे. है, जिसमें फलों की उत्पादकता 13.9 टन प्रति हे. तथा सब्जियों की 17.7 टन प्रति हे. है। उत्पादकता की दृष्टि से भारत में आम, अंगूर, अनार, चीकू, केला, पपीता, आलू, प्याज, आँवला आदि की उत्पादकता विश्व में सबसे ज्यादा है। देश में बागवानी फसलों का उत्पादन बढ़ने से जहाँ गुणवत्तायुक्त पोषण में सुधार होगा, वहीं उत्पादक की आय में वृद्धि होगी, रोजगार के अवसर बढ़ेगें, निर्यात बढ़ेगा एवं आयात पर खर्च होने वाली विदेशी मुद्रा की बचत होगी। इसके अतिरिक्त बागवानी फसलें ज्यादातर बहुवर्षीय होती हैं जिसका पर्यावरण संतुलन एवं संरक्षण में विशेष योगदान है।

भारत में शुष्क क्षेत्रीय फसलों का विस्तार राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, गुजरात, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु और कर्नाटक तक है। इन राज्यों के कुछ भाग में वर्षा कम होती है और भू—जल भी नहीं है। ऐसे में वहां वर्षा आधारित फसलें ही होती हैं। राजस्थान का तो लगभग दो तिहाई क्षेत्र ऐसा है जो बागवानी विकास के लिए आज के परिप्रेक्ष्य में और अधिक महत्व रखता है। अब अन्य परम्परागत फसलों के क्षेत्रों में उत्पादन को और अधिक बढ़ाने की स्थिति नहीं है। इसका कारण यह है कि घटते जल संसाधन और लगातार पड़ने वाले अकाल की स्थिति को देखते हुए सबका ध्यान शुष्क बागवानी पर टिका है। इसके अतिरिक्त, इस प्रदेश में रहने वाली जनसंख्या के सर्वागींण विकास के लिए तथा मरु भूमि को और अधिक अनुपजाऊ व खराब होने से बचाने के लिए भी इस ओर ध्यान देना आवश्यक है। कम वर्षा, घटते जल स्रोत, महंगे होते संसाधन, जलवायु परिवर्तन एवं सूखा पड़ने से फसल उत्पादन किसानों के लिए दिनों—दिन चुनौती बनता जा रहा है।

इन परिस्थितियों में बागवानी फसलों की खेती करना लाभप्रद है, क्योंकि इसके द्वारा खाद्य, पोषण, रोजगार व जीवन यापन के हर पहलुओं का संचालन संभव है। आज बढ़ती हुई आबादी के लिए उनकी मांग के अनुसार फल, सब्जियां एवं मसाला का उत्पादन बढ़ाना आवश्यक है जो कि अभी भी लक्ष्य से बहुत कम है। शुष्क क्षेत्र में उपलब्ध जननद्रव्यों का उपयोग, उन्नत किस्मों का विकास एवं उत्पादन खर्च में कमी कर फलोत्पादन बढ़ाने के साथ—साथ गुणवत्ता तथा आय बढ़ाने की ओर ध्यान देना भी आवश्यक है।

बेर, आँवला, अनार, खजूर, बेल, शहतूत, फालसा, करौंदा, लसोड़ा इत्यादि के अतिरिक्त किन्नू, मौसमी, नींबू, अमरूद के उत्तम गुणवत्ता के फल इस क्षेत्र में

उन्नत विधियों द्वारा पैदा किए जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त, इनके जननद्रव्य संग्रह, प्रक्षेत्र में संरक्षण कर मूल्यांकन किया जा रहा है (तालिका 1)। स्थानीय वनस्पतियाँ जैसे कैर, सांगरी, लसोड़ा, पीलू, इत्यादि में भी सुधार करके व्यावसायिक उत्पादन लिया जा सकता है जो सूखे व मौसम परिवर्तन की परिस्थितियों में भी अच्छा उत्पादन देने में सक्षम हैं।

वर्तमान में बदलते मौसम में भी मूल रूप से पाई जाने वाली वनस्पतियों में कम तापमान व पाला सहन करने की क्षमता देखी गई है जैसे बेर, खेजड़ी, पीलू इत्यादि। कुछ फलदार पौधे जैसे आँवला, लसोड़ा आदि अत्यधिक सर्दी व पाले के प्रकोप से प्रभावित होते हैं। इन पौधों के लिए कम तापमान व पाला सहिष्णु प्रजाति को चिन्हित कर उनका मूल्यांकन तथा किस्में विकसित करने की आवश्यकता है।

तालिका 1. भाकृअनुप–केशुबास, बीकानेर में जननद्रव्य संग्रह, संरक्षण एवं मूल्यांकन

फसल	जननद्रव्य संख्या	फसल	जननद्रव्य संख्या
बेर	340	अनार	150
आंवला	20	खजूर	64
बेल	35	कैक्टस पीयर	20
फालसा	06	अंजीर	02
शहतूत	15	केर	05
करौंदा	06	लसोड़ा	20
कैंथा	08	जामुन	05

तालिका 2 में निहित शुष्क क्षेत्रीय बागवानी फसलों के क्षेत्रफल एवं उत्पादन के आंकड़ों से स्पष्ट है कि राजस्थान में मसालों की खेती का क्षेत्रफल सबसे अधिक है। फल व सब्जियों के क्षेत्रफल एवं उत्पादन को और बढ़ाने की आवश्यकता है जिसके विस्तार की संभावना शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्र में हैं।

तालिका 2. राजस्थान में शुष्क क्षेत्रीय बागवानी फसलों का क्षेत्रफल एवं उत्पादन

फसल	क्षेत्रफल (लाख हे.)	उत्पादन (लाख मीट्रिक टन)
फल	0.41	6.51
सब्जियाँ	1.95	20.21
मसाले	10.02	10.50
फूल	0.03	0.06
औषधीय एवं सुगन्ध पौधे	3.69	1.86

बागवानी पर प्रदर्शनी के आयोजन से नवीन तकनीकों, किस्मों, रख–रखाव, इत्यादि के बारे में जानकारी प्राप्त होगी और इससे क्षेत्र के उत्पादकों को लाभ मिलेगा।

कद्दूवर्गीय फसलें जैसे तरबूज, खरबूजा, ककड़ी, तुरई, लौकी, काचरी, मतीरा, टिण्डा, टमाटर, मिर्च, ग्वारफली, सहजन एवं पत्तीदार सब्जियां जैसे मैथी, पालक बहुतायत से पैदा किए जा सकते हैं। स्थानीय वनस्पतियां जैसे काचरी, फूट ककड़ी, मतीरा, ग्वारफली, ग्वारपाठा इत्यादि के उत्पादन तकनीक में सुधार करके व्यावसायिक खेती की जा सकती है क्योंकि इन फसलों में सूखा सहने की अपार क्षमता होती है तथा इनकी बारानी खेती शुष्क जलवायु में सफलतापूर्वक की जा सकती है। शुष्क क्षेत्र में स्थापित इस संस्थान ने सर्वप्रथम स्थानीय सूखा सहिष्णु वनस्पतियों की ओर ध्यान दिया है और इसी क्रम में संस्थान ने कई उन्नत किस्में विकसित की हैं (तालिका 3)। इन किस्मों का उपयोग कर बारानी क्षेत्र के किसान लाभान्वित हो रहे हैं। इस क्षेत्र में कई औषधीय गुणवत्ता वाली वनस्पतियां भी पायी जाती हैं जिनका व्यावसायिक उत्पादन संभव है जैसे कि ईसबगोल, अश्वगंधा, गुग्गल, सनाय (सोनामुखी) इत्यादि। जीरा, धनिया, मैथी, सौंफ जैसे मसाले वाली फसलों का भी इस प्रदेश में मुख्य स्थान है। राजस्थान में अच्छी गुणवत्ता के धनिया, मेथी, जीरा, सौंफ, अजवायन इत्यादि का उत्पादन तथा बीजीय मसालों

का निर्यात भी किया जाता है।

एक अनुमान के अनुसार, यदि कुपोषण से छुटकारा पाना है तो इन फसलों का उत्पादन आने वाले बीस वर्षों में लगभग पांच गुना बढ़ाना पड़ेगा। अतः इस क्षेत्र की जनसंख्या को संतुलित आहार प्रदान करने के लिए इस ओर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। फल वृक्षों की खेती से पौष्टिक फल, ईंधन, चारा तथा अन्य उपयोगी वस्तुऐं प्राप्त होती हैं। फलों का सेवन स्वस्थ शरीर व विकास के लिए जरूरी है। कई रोगों के निदान में फलों के सेवन की अहम भूमिका होती है। फलों में अनेक औषधीय गुण पाये जाते हैं जैसे– बेल का शरबत गर्मी में शीतलता देने के अलावा दस्त, पेचिश एवं पेट के विकारों के लिए अचूक औषधि है तथा दशमूल का मुख्य घटक है। बेल के फल के अलावा इसकी पत्तियां, तना, छाल व जड़ें भी आयुर्वेदिक औषधि में काम आती हैं। इसी प्रकार आँवला अत्यधिक विटामिन 'सी' युक्त पौष्टिक, शक्तिवर्धक च्यवनप्राश का मुख्य घटक है। आँवला के फल एवं उत्पाद के सेवन से विटामिन सी की पूर्ति होती है।

शुष्क क्षेत्र में बाग विकास के लिए फल एवं उपयुक्त उन्नत किस्मों के चयन पर विशेष ध्यान देना चाहिए जैसे कि बेर का गोला, सेव, मुंडिया, उमरान, कैथली, बनारसी कड़ाका, गोमाकीर्ति; आँवला के एन.ए. 7 (नीलम), कृष्णा, कंचन, चकैया, एन.ए. 6 (अमृत); बेल की एन.बी. 5, एन.बी. 9; गोमा यशी, अनार की जालौर सीडलैस, मृदुला, गणेश, जी 137, फूले अरक्ता, भगवा एवं खजूर की हलावी, बरही, मेडजूल, जाहिदी, खलास, शामरान, खुनेजी किस्में उत्पादन एवं गुणवत्ता में अच्छी पाई गई हैं (तालिका 3)। खजूर के पौधों पर पाला/कम तापमान का प्रभाव नहीं पड़ता है। नर व मादा पौधे अलग अलग होते हैं तथा परागण के लिए बाग में नर पौधे (5–10 प्रतिशत) अवश्य लगाने चाहिए। उन्नत किस्म के बीज, पौधे, सघन रोपण बागवानी, संरक्षित खेती, जल संरक्षण, समेकित कीट–रोग प्रबन्धन, मूल्य संवर्धन, इत्यादि नवीन तकनीकों का प्रयोग कर उपज एवं आय में वृद्धि की जा सकती है।

शुष्क क्षेत्रों में पोषण एवं आय में वृद्धि कर सामाजिक स्तर को सुधारने में शुष्क बागवानी की

तालिका 3. भाकृअनुप–केशुबास द्वारा विकसित की गई बागवानी फसलों की किस्में

फसल	उन्नत किस्में	फसल	उन्नत किस्में
बेर	थार भुभराज, थार सेविका, थार मालती	मतीरा	ए.एच.डब्ल्यू 19, ए.एच.डब्ल्यू 65, थार मानक
अनार	गोमा खट्टा (अनार दाना)	काचरी	ए.एच.के. 119, ए.एच.के. 200,
आंवला	गोमा ऐश्वर्य	फूट ककड़ी	ए.एच.एस. 10, ए.एच.एस. 82
इमली	गोमा प्रतीक	सलाद ककड़ी	ए.एच.सी. 2, ए.एच.सी. 13
बेल	गोमा यशि, थार दिव्या, थार नीलकंठ	जामुन	थार प्रियंका, थार क्रांति
खेजड़ी	थार शोभा	लौकी	थार समृद्वि
ग्वार फली	थार भादवी, गोमा मंजरी	स्वार्ड बीन	थार माही
सेम फली	थार कार्तिकी, थार माघी	चिरौंजी	थार प्रिया
शहतूत	थार लोहित एवं थार हरित	लसोड़ा	थार बोल्ड
करौंदा	थार कमल	खिरनी	थार रितुराज
महुआ	थार मधु	फालसा	थार प्रगति
कद्दू	थार कवि	सहजन	थार हर्ष
तोरई	थार करणी		
पालक	थार हरिपर्णा		
कुन्दरू	थार सुन्दरी		
तोरई/नेनुआ	थार तपिश		

फलों से आच्छादित बेल वृक्ष

फलों से युक्त खजूर का पेड़

फ्रूट ककड़ी की फसल एवं फल

कल्पवृक्ष खेजड़ी की 'थार शोभा' किस्म

फलों से लदी बेर की टहनी और *इनसेट* में बेर फल

महत्वपूर्ण भूमिका है। इन फसलों से प्रति एकड़ उपज दूसरी फसलों की तुलना में अधिक होती है। प्रति एकड़ अधिक उपज मिलने पर अधिक आमदनी भी प्राप्त होती है और वर्ष भर कार्य के अवसर सुलभ होते हैं। इन फसलों पर आधारित कई प्रकार के लघु उद्योग स्थापित किए जा सकते हैं जैसे फल–सब्जी–मसाला परिरक्षण एवं संशोधन उद्योग जिसमें मसाले, अचार, चटनी, सूखे पाउडर, मुरब्बा, कैण्डी इत्यादि आते हैं। इन उद्योग स्थापना से अन्य उद्योगों को भी बढ़ावा मिलेगा जैसे कांच, प्लास्टिक, *पैकिंग, वैक्सिंग,* लकड़ी, *कण्टेनर,* डिब्बा बन्दी, मोम उद्योग इत्यादि।

इन क्षेत्रों में बागवानी में उत्पादन की गुणवत्ता श्रेष्ठ होने के कारण भविष्य में उत्पादों के निर्यात की अपार–संभावनाऐं हैं। बागवानी फसलें जैसे कि सूखा सहिष्णु बेर, गूंदा, आंवला, बेल, इत्यादि तथा काचरी, मतीरा आदि तो सूखा के प्रति बीमित (*इन्श्योरड*) फसलें हैं क्योंकि अन्य फसलें सूखे की स्थिति में उत्पादन न दें पर इनसे तो कुछ न कुछ उत्पादन तथा पशुधन के लिए चारा मिल जाता है जिससे अकाल के समय में भी किसान को जीविकोपार्जन हेतु मदद मिल जाती है। फल वृक्षों के साथ–साथ कई प्रकार के उपयोगी एवं पौष्टिक घास व चारा, औषधीय एवं सगंधीय, मसाले वाली फसलें उगाना लाभप्रद हो सकती हैं। जिससे कि भूमि का समुचित उपयोग होकर प्रति इकाई क्षेत्र से अधिक आय प्राप्त की जा सके। इसके लिए अन्तः फसलों के चयन करने में विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है ताकि फल वृक्षों के उत्पादन पर विपरीत प्रभाव न पड़े।

मूल्य संवर्धन उत्पाद

गर्म शुष्क क्षेत्रों में विशेष प्रकार की सब्जियां उगाते हैं जैसे–काचरी, लोइया (मतीरा), काकड़िया, ग्वारफली, कांटेदार बैंगन, ककोड़ा, लौकी, टिंडा, ग्वारपाठा, खेजड़ी सांगरी, केर फल, फोगला, मेथी, पालक, बेर, सहजन, करोंदा आदि। यह सभी प्राकृतिक रूप में

तालिका 4. शुष्क क्षेत्रों में उगाए जाने वाले प्रमुख फल व सब्जियां और उनके जैविक मूल्य संवर्धनार्थ उपयोगी भाग

क्र. सं.	सब्जी का स्थानीय नाम	वैज्ञानिक नाम	उत्पादन ऋतु	मूल्य संवर्धनार्थ उपयोगी भाग
1	काचरी	*कुकुमिस कल्लोसस*	वर्षा व ग्रीष्म	परिपक्व फल, परिपक्व फलों का रस, गूदा, बीज, आदि
2	मतीरा	*सिट्रूलस लनाटस*	वर्षा व ग्रीष्म	अपरिपक्व छोटे फल, बीज, परिपक्व फलों का रस
3	काकड़िया	*कुकुमिस मेलो*	वर्षा व ग्रीष्म	परिपक्व फल, परिपक्व फलों का रस, गूदा, बीज, आदि
4	टिंडसी (टिंडा)	*सिट्रूलस वल्गेरिस*	वर्षा व ग्रीष्म	परिपक्व फल, परिपक्व फलों का रस, गूदा, बीज, आदि
5	मेथी	*ट्राइगोनेला फोइनम–ग्रेइकम*	सर्दी	हरी व मुलायम पत्ती, बीज
6	खेजड़ी	*प्रोसोपिस सिनेरेरिया*	ग्रीष्म	अपरिपक्व फली (सांगरी), परिपक्व फली (खोखा), बीज
7	तुंबा	*सिदुलूस कोलोसिन्थेसीस*	वर्षा व खरीफ	परिपक्व फल, परिपक्व फलों का रस, गुदा, बीज, आदि
8	फोग	*केलिगोनम पोलिगोनोइड*	ग्रीष्म	अपरिपक्व फूल, कली
9	ग्वार	*साइमोप्सिस टेट्रानोगोलोबस*	वर्षा/खरीफ	अपरिपक्व फली, बीज, आदि
10	ग्वारपाठा	*एलोए बार्बेडेन्सिस*	सदाबहार	कच्ची पत्ती
11	केर	*केपेरिस डेसीडुअस*	वर्षा व ग्रीष्म	अपरिपक्व फल
12	बेर	*जिजिफस स्पेसीज*	सर्दी	परिपक्व फल

उगाए जाते हैं जो जैव प्रकृति के होते हैं। शुष्क क्षेत्रों में उगाई जाने वाली सब्जियां व फल के जैविक मूल्यसंवर्धित पदार्थ बनाकर अधिक लाभ अर्जित किया जा सकता है। इन सब्जियों का उपभोक्ता सूचकांक भी बहुत अधिक पाया जाता है। शुष्क क्षेत्रों में उगाई जाने वाली सब्जियाँ व फल के मूल्य संवर्धनार्थ उपभोगीय भाग व उनके जैविक मूल्य संवर्धन के रूप–स्वरूपों को तालिका 4 में दर्शाया गया है।

शुष्क क्षेत्रीय फल व सब्जियों में पाए जाने वाले पोषक तत्व

शुष्क बागवानी में उगाए जाने वाली अधिकतर फल–सब्जियां जैविक प्रकृति की होती हैं जिनमें पोषक तत्व भरपूर मात्रा मे पाये जाते हैं। इनमें पाए जाने वाले महत्वपूर्ण तत्वों का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार से है–

खेजड़ी : इसकी सांगरी बहुत ही पौष्टिक एवं गुणकारी होती है जिनमें 13–30 प्रतिशत प्रोटीन, 6–16 प्रतिशत ग्लूकोज, 0.21–0.27 प्रतिशत फास्फोरस, 0.35–0.90 प्रतिशत पोटेशियम, 3.20–4.10 प्रतिशत कैल्शियम, 0.6–0.9 प्रतिशत मैग्नीशियम तथा 45–55 प्रतिशत कार्बोहाईड्रेट की मात्रा पाई जाती है।

केर : केर के फलों में प्रचुर मात्रा में विटामिन ए, बी$_2$ व सी होते हैं। फलों में 56 प्रतिशत जल, 8.6 प्रतिशत *क्रूड प्रोटीन*, 5.02 प्रतिशत वास्तविक प्रोटीन, 1.8 प्रतिशत कुल शर्करा, 0.057 प्रतिशत फास्फोरस, 1.026 प्रतिशत

तालिका 5. गर्म–शुष्क क्षेत्रों में उगाई जाने वाली फल–सब्जियां, उनके जैव प्रकृति के मूल्यसवंर्धित पदार्थ एवं उपभोग स्वरूप

क्र. सं.	फल–सब्जी का नाम	जैविक प्रकृति के मूल्यसवंर्धित पदार्थ एवं उपभोग स्वरूप	उपभोक्ता (प्रतिशत)
1	काचरी	निर्जलीकृत फल, आचार, चटनी, कचचूर्ण, जूस, लेदरी पपड़ी, सब्जी आदि	47–75
2	मतीरा	जूस, मगज, तेल, मगज मिठाई, रोस्टेड दाना आदि	40–94
3	काकड़िया	निर्जलीकृत फाँक, अचार, चटनी, शेक, जूस, लैदरी पपड़ी आदि	44–95
4	टिंडसी (टिंडा)	निर्जलीकृत फाँक, अचार, चटनी आदि	42–92
5	मेथी	निर्जलीकृत पत्तियां, मसाला चूर्ण	38–87
6	खेजड़ी	निर्जलीकृत सांगरी (फली), नगेट्स, अचार, फ्राइड चटनी, खोखा लड्डू, खोखा सतू, मीठी खोखा पापड़ी	51–95
7	तुंबा	अचार, चूर्ण, जूस (दवाई के रूप में)	19–28
8	फोग	फोगले (निजलीकृत फूल कली) चूर्ण	34–75
9	ग्वार	निर्जलीकृत फली, अचार, भूरिता चटनी	44–90
10	ग्वारपाठा	अचार, जूस, लड्डू, जैम, हलवा पाउडर	18–23
11	केर	निर्जलीकृत फल, अचार, चूर्ण (दवाई के रूप में) भूरिता चटनी	46–88
12	बेर	अचार, निर्जलीकृत बेर, चटनी, शर्बत	67–71
13	खजूर	अचार, छुआरा	80–85
14	बेल	अचार, शर्बत, मिठाई, जैम	60–75
15.	आंवला	च्यवनप्राश, आंवला कैंडी, अचार, जूस, श्रेड्स आदि	85–90

पोटेशियम, 0.557 कैल्शियम, 0.055 प्रतिशत मैग्नीशियम तत्व तथा 7.81 मि.ग्रा./100 ग्राम एस्कोर्बिक अम्ल होता है। फलों का स्वाद कसैला व कड़वा होता है लेकिन यह मधुमेह के रोगियों के लिए लाभकारी होता है। इसके विभिन्न आयुर्वेदिक उपयोग हैं।

काचरी : काचरी फलों में पोषक तत्व अधिक मात्रा में पाये जाते हैं तथा इसके 100 ग्राम ताजा खाद्य भाग में 88.25 प्रतिशत जल, 7.45 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, 0.28 प्रतिशत प्रोटीन, 1.28 प्रतिशत वसा एवं 1.21 प्रतिशत रेशा होता है। इसके खनिज लवण युक्त 1.46 ग्राम कुल भस्म (राख) में 0.09 मिलीग्राम कैल्शियम, 0.0029 मिलीग्राम फास्फोरस, 0.182 मिलीग्राम लौह, 0.0046 मिलीग्राम ताँबा, 0.052 मिलीग्राम जस्ता एवं 0.058 मिलीग्राम मैंगनीज तत्व पाये जाते हैं।

काकड़िया : काकडिया के ताजा खाद्य भाग के 100 ग्राम में 79.93 ग्राम पानी, 15.56 ग्राम कार्बोहाइड्रेट, 79.29 किलो कैलोरी ऊर्जा, 0.36 ग्राम प्रोटीन, 1.12 ग्राम वसा, 1.34 ग्राम फाइबर, 1.64 ग्राम कुल राख, 0.76 मिलीग्राम कैल्शियम, 0.0088 मिलीग्राम फास्फोरस, 0.843 मिलीग्राम लौह, 0.104 मिलीग्राम तांबा, 0.202 मिलीग्राम जस्ता और 18.6 मिलीग्राम विटामिन सी पाया जाता है।

मतीरा : मतीरा फल और बीज में बहुत समृद्ध स्रोत पोषक तत्व और खनिज हैं। मतीरा फलों में 1.75% नाइट्रोजन, 10.93% प्रोटीन, 0.011% फास्फोरस और अन्य मूल्यवान पोषक तत्व होते हैं।

टिंडा : टिंडा के 100 ग्राम खाद्य भाग में 93.5% नमी, 1.4% प्रोटीन, 0.2% वसा, 3.4% कार्बोहाइड्रेट, 21

किलो कैलोरी, 1.0% फाइबर, 21–25 मिलीग्राम कैल्शियम, 14 मिलीग्राम मैग्नीशियम, 24 मिलीग्राम फास्फोरस, 0.9 मिलीग्राम लौह, 35 मिलीग्राम सोडियम, 24 मिलीग्राम पोटेशियम, 0.12 मिलीग्राम तांबा, 23 प्रतिशत विटामिन ए, 0.04 मिलीग्राम थियामिन, 44 मिलीग्राम क्लोरीन, 0.08 मिलीग्राम राइबोफलेबिन, 3.3 मिलीग्राम निकोटिनिक एसिड, 18 मिलीग्राम विटामिन सी, 2.0 मिलीग्राम ऑक्जिलिक एसिड, 13 माइक्रोग्राम कैरोटीन और 0.3 मिलीग्राम नियासिन पर्याप्त मात्रा में पाई जाती है।

ग्वार फली : ग्वार फली की 100 ग्राम फली में कैल्शियमः 130 मिलीग्राम, कार्बोहाइड्रेटः 11 ग्राम, ऊर्जाः 16 किलो कैलोरी, रेशाः 3 ग्राम, लौहः 1 मिलीग्राम, खनिजः 1 ग्राम, नमीः 81 ग्राम, फॉस्फोरस 57 मिलीग्राम, प्रोटीनः 3 ग्राम, विटामिन ए, विटामिन सी, विटामिन डी और विटामिन के भी पर्याप्त मात्रा में पाई जाती है।

फोग (फोगला) : फोग जिसका वैज्ञानिक नाम *केलीगोनम पोलीगोनेइड्स* है, मरु क्षेत्र में पाये जाने वाली एक महत्त्वपूर्ण झाड़ी है। फोग के फूल की सूखी हुई पुष्प कलिकाओं को स्थानीय भाषा में फोगला कहते है जिसमें लगभग 18 प्रतिशत प्रोटीन होती है।

नागफनी (सब्जी प्रकार की) : नागफनी के 100 ग्राम खाद्य भाग में 9 5 प्रतिशत नमी, 1.5 प्रतिशत प्रोटीन, 0.4 प्रतिशत वसा, 1.54 प्रतिशत, रेशा, कुल कार्बोहाइड्रेट 5.0 प्रतिशत, 15.5 माइक्रोग्राम, कुल क्लोरोफिल, 22.0 मिलीग्राम, विटामिन सी, 31.0 माइक्रोग्राम बीटा कैरोटिन, 110 मिलीग्राम कैल्शियम, 20 मिलीग्राम फास्फोरस, 1.95 मिलीग्राम लौह और अन्य पोषक तत्वों से भरपूर होता है। यह विभिन्न *हर्बल* औषधीय गुण भी रखता है। इसलिए, शरीर में कुछ बीमारियों और विकारों के इलाज के लिए कैक्टस पारंपरिक दवा के स्रोत के रूप में भी प्रयोग किया जाता है।

खजूर : खजूर के फलों के गूदे में लगभग 20 प्रतिशत नमी के अतिरिक्त, 60–65 प्रतिशत शर्करा, लगभग 2.5 प्रतिशत रेशा, 2.5 प्रतिशत प्रोटीन, 2 प्रतिशत से कम वसा व खनिज तत्व तथा विटामिन ए, विटामिन बी, (*थायमीन*), विटामिन सी, नियासिन तथा विटामिन $बी_2$ (*राइबोफ्लेविन*) पाए जाते हैं। एक किलोग्राम खजूर के फलों से लगभग 3100 कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है।

अनार : अनार पोषक तत्वों तथा विटामिन से भरपूर, रसीला तथा स्वादिष्ट फल होता है। अनार के प्रति सौ ग्राम फल में 67.95 किलो कैलोरी ऊर्जा, 1.41 ग्राम प्रोटीन, 1.60 ग्राम कच्चा रेशा, 2.50 मिलीग्राम कैल्शियम, 10.22 मिलीग्राम मैग्नीशियम, 34.73 मिलीग्राम फॉस्फोरस, 0.39 मिलीग्राम लौह, 0.26 मिलीग्राम जस्ता, 0.09 मिलीग्राम *थायमिन*, 0.22 मिलीग्राम *नायसिन*, 23.38 मि.ग्रा. *एस्कॉर्बिक* अम्ल, 26.00 माइक्रोग्राम कुल कैरोटेनॉयड्स तथा *एन्टीऑक्सोडेन्ट्स* भरपूर होता है।

शहतूत : शहतूत में मौजूद गुण शरीर में पानी की कमी को दूर करके प्यास को बुझाते हैं। शहतूत में मौजूद पोटेशियम, विटामिन ए और फास्फोरस शरीर के कई रोगों जैसे जोड़ों के दर्द, गले की बीमारी और आमवात को ठीक करते हैं।

लसोड़ा : लसोड़ा के प्रति 100 ग्राम फल में 82.5 ग्राम नमी, 1.8 ग्राम प्रोटीन, 1.0 वसा, 2.2 ग्राम पोषक तत्व, 12.2 ग्राम कार्बोहाईड्रेट, 40 मिलीग्राम ग्राम कैल्शियम, 60 मिलीग्राम ग्राम फास्फोरस और तत्व उपलब्ध होते हैं।

भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर द्वारा प्रदत्त सेवाएं

- शुष्क क्षेत्रीय सब्जियों एवं फलों के गुणवत्तायुक्त बीज एवं पौध सामग्री उपलब्ध करवाना
- शुष्क बागवानी के विभिन्न आयामों पर कौशल विकास प्रशिक्षण देना
- शुष्क बागवानी तकनीकियों पर क्षेत्रीय भाषाओं में तकनीकी साहित्य उपलब्ध करवाना
- कृषकों के लिए मृदा स्वास्थ्य कार्ड बनाना एवं उसके अनुसार खेती में पोषण हेतु सुझाव देना
- उन्नत नई तकनीकियों पर कृषकों के प्रक्षेत्रों पर अग्रिम पंक्ति प्रदर्शन लगाना।

अतः भारत की आत्मनिर्भरता में शुष्क क्षेत्रों के फलों एवं सब्जियों की बागवानी की महत्वपूर्ण भूमिका है। अतः आज के परिपेक्ष्य में जननद्रव्य संकलन संरक्षण, उन्नत किस्मों का विकास कर शुष्क बागवानी फसलों का उत्पादन बढ़ाने की आवश्यकता है। जिससे क्षेत्र में बागवानी, स्व–रोजगार, कृषि उद्योग, भण्डारण, विपणन, इत्यादि के क्षेत्र में विकास के साथ ही किसानों की आर्थिक स्थिति मजबूत होकर उनकी सामाजिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त हो सके और आत्मनिर्भरता की ओर भारत के कदम सुदृढ़ हों।

प्रतिस्पर्धा के वैश्विक परिदृश्य में हिन्दी भाषा और बोलियां – यथार्थ और चुनौतियां

सीमा चोपड़ा
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, कृषि भवन, नई दिल्ली

भाषा भावों और विचारों की संवाहक होती है। भाषा का स्वरूप निरंतर बदलता रहता है और यह सभी भाषाओं के बारे में कहा जा सकता है। हम सभी इस तथ्य से अवगत हैं कि वर्तमान हिन्दी का उद्भव संस्कृत भाषा से हुआ है और काल के अनुसार यह पाली, प्राकृत और अपभ्रंश का चोला बदलती हुई वर्तमान स्वरूप को प्राप्त हुई है।

आधुनिक अर्थों में आज हम जिसे हिंदी कहते हैं, वह लगभग दो–ढाई सौ वर्ष पहले विकसित हुई थी और सौ से कुछ ही वर्ष पहले तक उसे खड़ी बोली कहते थे। बोली से भाषा तक की यह यात्रा बड़े रोचक मोड़ों से गुजरी है। आधुनिक हिंदी के पहले बड़े रचनाकार भारतेंदु हरिश्चन्द्र मानते थे कि खड़ी बोली में कविता नहीं लिखी जा सकती। वह गद्य खड़ी बोली और पद्य बृजभाषा में लिखते थे और हिंदी की उन्नति के लिए 19वीं शताब्दी में बनी और इस क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण योगदान करने वाली संस्था काशी नगरी प्रचारिणी सभा ने खड़ी बोली समर्थकों के बड़े जद्दोजहद के बाद लगभग अनिच्छा से खड़ी बोली में भी कविता करने की अनुमति दी गई। एक बार शुरूआत हो जाने के बाद खड़ी बोली ही आधुनिक कविता का माध्यम बनी। ऐसा इसलिए संभव हो सका कि बृज, अवधी, भोजपुरी, मैथिली, मगही या अंगिका, विपुल शब्द–संपदा से भरपूर और बेहतर अभिव्यक्ति का माध्यम थीं।

कविता का माध्यम बनने के दो–तीन दशकों के भीतर ही इसके मानकीकृत स्वरूप को हिंदी कहा जाने लगा। हिंदी का प्रारंभिक दौर ही उदारता और अनुदारता के बीच संघर्ष का दौर था। पहला इम्तिहान तो यह था कि नई बनी भाषा के साहित्य में क्या सिर्फ खड़ी बोली का साहित्य शुमार होगा। अवधी, बृज या मैथिली जैसी बोलियों की परंपरा को काटने के बाद हमारे पास बचता क्या? सारी बोलियां हिंदी थी और उनका सबका साहित्य हिंदी का था। आज भी ये बोलियां हिंदी के लिए खाद का काम कर रही हैं। हिंदी एकमात्र ऐसी भाषा है जिसमें 46 बोलियां अपनी अस्मिता बनाए हुए हैं।

दुनिया का कोई भी देश भारत की भाषायी विविधता की बराबरी नहीं कर सकता। भारत में 'मातृभाषा' की संख्या 1,652 है (जैसा कि 1961 की जनगणना में सूचीबद्ध है)। भारत का संविधान किसी भी भाषा को राष्ट्रीय भाषा का दर्जा नहीं देता है, हालांकि भारत गणराज्य की केंद्र सरकार की आधिकारिक भाषा हिन्दी है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343, राजभाषा अधिनियम 1963 (यथा संशोधित 1967) के अनुसार 8वीं अनुसूची में 22 भाषाओं की सूची है ।

बदलती दुनिया–बदलते भाषिक परिदृश्य

इक्कीसवीं सदी बीसवीं शताब्दी से भी ज्यादा तीव्र परिवर्तनों वाली तथा चमत्कारिक उपलब्धियों वाली शताब्दी सिद्ध हो रही है। विज्ञान एवं तकनीक के सहारे पूरी दुनिया एक वैश्विक गाँव में तब्दील हो रही है और स्थलीय व भौगोलिक दूरियां अपनी अर्थवत्ता खो रही हैं। आज भारत और चीन विश्व की सबसे तीव्र गति से उभरने वाली अर्थव्यवस्थाओं में से हैं तथा विश्व स्तर पर इनकी स्वीकार्यता और महत्ता स्वतः बढ रही है। इन देशों के पास अकूत प्राकृतिक संपदा तथा युवतर मानव संसाधन हैं जिसके कारण ये भावी वैश्विक संरचना में उत्पादन के बडे स्रोत बन सकते हैं। अपनी कार्य निपुणता तथा निवेश एवं उत्पादन के समीकरण की प्रबल संभावना को देखते हुए ही भारत और चीन को निकट भविष्य की विश्व शक्ति के रूप में देखा जाने लगा है।

जाहिर है कि जब किसी राष्ट्र को विश्व बिरादरी अपेक्षाकृत ज्यादा महत्त्व और स्वीकृति देती है तथा उसके प्रति अपनी निर्भरता में इजाफा पाती है तो उस राष्ट्र की तमाम चीजें स्वतः महत्त्वपूर्ण बन जाती हैं। ऐसी स्थिति में भारत की विकासमान अंतर्राष्ट्रीय हैसियत हिंदी के लिए वरदान–सदृश है। यह सच है कि वर्तमान वैश्विक परिवेश में भारत की बढती उपस्थिति हिंदी की

हैसियत का भी उन्नयन कर रही है। आज हिंदी राष्ट्रभाषा की गंगा से विश्वभाषा का गंगासागर बनने की प्रक्रिया में है।

भाषा के वैश्विक संदर्भ की विशेषताएँ

आखिर, वे कौन सी विशेषताएँ हैं जो किसी भाषा को वैश्विक संदर्भ प्रदान करती हैं। जब हम हिंदी को विश्व भाषा में रूपांतरित होते हुए देख रहे हैं और यथावसर उसे विश्वभाषा की संज्ञा प्रदान कर रहे हैं, तब यह जरूरी हो जाता है कि हम सर्वप्रथम विश्वभाषा का स्वरूप विश्लेषण कर लें। संक्षेप में विश्वभाषा के निम्नलिखित लक्षण निर्मित किए जा सकते हैं:

- उसके बोलने–जानने तथा चाहने वाले भारी तादाद में हों और वे विश्व के अनेक देशों में फैले हों।
- उस भाषा में साहित्य–सृजन की प्रदीर्घ परंपरा हो और प्रायः सभी विधाएँ वैविध्यपूर्ण एवं समृद्ध हों। उस भाषा में सृजित कम–से–कम एक विधा का साहित्य विश्वस्तरीय हो।
- उसकी शब्द–संपदा विपुल एवं विराट हो तथा वह विश्व की अन्यान्य बडी भाषाओं से विचार–विनिमय करते हुए एक–दूसरे को प्रेरित–प्रभावित करने में सक्षम हो।
- उसकी शाब्दी एवं आर्थी संरचना तथा लिपि सरल, सुबोध एवं वैज्ञानिक हो। उसका पठन–पाठन और लेखन सहज–संभाव्य हो। उसमें निरंतर परिष्कार और परिवर्तन की गुंजाइश हो।
- उसमें ज्ञान–विज्ञान के तमाम अनुशासनों में वाङ्मय सृजित एवं प्रकाशित हो तथा नए विषयों पर सामग्री तैयार करने की क्षमता हो।
- वह नवीनतम वैज्ञानिक एवं तकनीकी उपलब्धियों के साथ अपने–आपको पुरस्कृत एवं समायोजित करने की क्षमता से युक्त हो।
- वह अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक संदर्भों, सामाजिक संरचनाओं, सांस्कृतिक चिंताओं तथा आर्थिक विनिमय की संवाहक हो।
- वह जनसंचार माध्यमों में बडे पैमाने पर देश–विदेश में प्रयुक्त हो रही हो।
- उसका साहित्य अनुवाद के माध्यम से विश्व की दूसरी महत्त्वपूर्ण भाषाओं में पहुँच रहा हो।

उसमें मानवीय और यांत्रिक अनुवाद की आधारभूत तथा विकसित सुविधा हो जिससे वह बहुभाषिक कम्प्यूटर की दुनिया में अपने समग्र सूचना स्रोत तथा प्रक्रिया सामग्री (*सॉफ्टवेयर*) के साथ उपलब्ध हो। साथ ही, वह इतनी समर्थ हो कि वर्तमान प्रौद्योगिकीय उपलब्धियों मसलन *ई–मेल, ई–कॉमर्स, ई–बुक, इंटरनेट* तथा *एस.एम.एस.* एवं *वेब* जगत में प्रभावपूर्ण ढंग से अपनी सक्रिय उपस्थिति का अहसास करा सके। उसमें उच्चकोटि की पारिभाषिक शब्दावली हो तथा वह विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की नवीनतम आविष्कृतियों को अभिव्यक्त करते हुए मनुष्य की बदलती जरूरतों एवं आकांक्षाओं को वाणी देने में समर्थ हो। वह विश्व चेतना की संवाहिका हो। वह स्थानीय आग्रहों से मुक्त विश्व दृष्टि सम्पन्न कृतिकारों की भाषा हो, जो विश्वस्तरीय समस्याओं की समझ और उसके निराकरण का मार्ग जानते हों।

वैश्विक संदर्भ में हिंदी की सामर्थ्य

जब हम उपर्युक्त प्रतिमानों पर हिंदी का परीक्षण करते हैं तो पाते हैं कि वह न्यूनाधिक मात्रा में प्रायः सभी निष्कर्षों पर खरी उतरती है। आज वह विश्व के सभी महाद्वीपों तथा महत्त्वपूर्ण राष्ट्रों–जिनकी संख्या लगभग एक सौ चालीस है–में किसी न किसी रूप में प्रयुक्त होती है। वह विश्व के विराट फलक पर नवल चित्र के समान प्रकट हो रही है। आज वह बोलने वालों की संख्या के आधार पर चीनी के बाद विश्व की दूसरी सबसे बडी भाषा बन गई है। डॉ. जयन्ती प्रसाद नौटियाल ने भाषा शोध अध्ययन, 2005 के हवाले से लिखा है कि विश्व में हिंदी जानने वालों की संख्या एक अरब दो करोड़ पच्चीस लाख दस हजार तीन सौ बावन (1, 02, 25, 10,352) है जबकि चीनी बोलने वालों की संख्या केवल नब्बे करोड़ चार लाख छह हजार छह सौ चौदह (90,04,06,614) है। यदि यह मान भी लिया जाए कि आँकडे झूठ बोलते हैं और उन पर आँख मूँदकर विश्वास नहीं किया जा सकता तो भी इतनी सच्चाई निर्विवाद है कि हिंदी बोलने वालों की संख्या के आधार पर विश्व की दो सबसे बडी भाषाओं में से एक है।

समर्थ भाषा और वैज्ञानिक लिपि

यदि हम इन आँकडों पर विश्वास करें तो संख्याबल के आधार पर हिंदी विश्वभाषा है। हाँ, यह जरूर संभव है कि यह मातृभाषा न होकर दूसरी, तीसरी अथवा चौथी भाषा भी हो सकती है। हिंदी में साहित्य–सृजन की परंपरा भी बारह सौ साल पुरानी है। वह 8वीं शताब्दी से लेकर वर्तमान 21वीं शताब्दी तक गंगा की अनाहत–अविरल धारा की भाँति प्रवाहमान है। उसके पास विश्व की सबसे बडी कृषि विषयक शब्दावली है। उसने अन्यान्य भाषाओं के बहुप्रयुक्त शब्दों को उदारतापूर्वक ग्रहण किया है और जो शब्द अप्रचलित अथवा बदलते जीवन संदर्भों से दूर हो गए हैं उनका त्याग भी कर दिया है।

आज हिंदी में विश्व का महत्त्वपूर्ण साहित्य अनुसृजनात्मक लेखन के रूप में उपलब्ध है और उसके साहित्य का उत्तमांश भी विश्व की दूसरी भाषाओं में अनुवाद के माध्यम से जा रहा है। जहाँ तक देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता का सवाल है तो वह सर्वमान्य है। देवनागरी में लिखी जाने वाली भाषाएँ उच्चारण पर आधारित हैं। हिंदी भाषा का अन्यतम वैशिष्ट्य यह है कि उसमें संस्कृत के उपसर्ग तथा प्रत्ययों के आधार पर शब्द बनाने की अभूतपूर्व क्षमता है। हिंदी और देवनागरी दोनों ही पिछले कुछ दशकों में परिमार्जन व मानकीकरण की प्रक्रिया से गुजरी हैं जिससे उनकी संरचनात्मक जटिलता कम हुई है।

मीडिया और *वेब* पर हिंदी

हिंदी को वैश्विक संदर्भ देने में उपग्रह–चैनलों, विज्ञापन एजेंसियों, बहुराष्ट्रीय निगमों तथा यांत्रिक सुविधाओं का विशेष योगदान है। वह जनसंचार–माध्यमों की सबसे प्रिय एवं अनुकूल भाषा बनकर निखरी है। आज विश्व में सबसे ज्यादा पढे जानेवाले समाचार पत्रों में आधे से अधिक हिन्दी के हैं। इसका आशय यही है कि पढ़ा–लिखा वर्ग भी हिन्दी के महत्त्व को समझ रहा है। वस्तुस्थिति यह है कि आज भारतीय उपमहाद्वीप ही नहीं बल्कि दक्षिण पूर्व एशिया, मॉरीशस, चीन, जापान, कोरिया, मध्य एशिया, खाडी देशों, अफ्रीका, यूरोप, कनाडा तथा अमेरिका तक हिंदी कार्यक्रम उपग्रह चैनलों के जरिए प्रसारित हो रहे हैं और भारी तादाद में उन्हें दर्शक भी मिल रहे हैं।

माइक्रोसाफ्ट, गूगल, सन, याहू, आईबीएम तथा *ओरेकल* जैसी विश्वस्तरीय कंपनियाँ अत्यंत व्यापक बाजार और भारी मुनाफे को देखते हुए हिंदी प्रयोग को बढावा दे रही हैं। संक्षेप में, यह स्थापित सत्य है कि अंग्रेजी के दबाव के बावजूद हिंदी बहुत ही तीव्र गति से विश्वमन के सुख–दु:ख, आशा–आकांक्षा की संवाहक बनने की दिशा में अग्रसर है। आज विश्व के दर्जनों देशों में हिंदी की पत्रिकाएँ निकल रही हैं तथा अमेरिका, इंग्लैंड, जर्मनी, जापान, आस्ट्रिया जैसे विकसित देशों में हिंदी के कृति रचनाकार अपनी सृजनात्मकता द्वारा उदारतापूर्वक विश्व मन का संस्पर्श कर रहे हैं। हिंदी के शब्दकोश तथा विश्वकोश निर्मित करने में भी विदेशी विद्वान सहायता कर रहे हैं।

विदेशों में हिंदी

हिंदी विश्व के प्राय: सभी महत्त्वपूर्ण देशों के विश्व विद्यालयों में अध्ययन–अध्यापन में भागीदार है। अकेले अमेरिका में ही लगभग एक सौ पचास से ज्यादा शैक्षणिक संस्थानों में हिंदी का पठन–पाठन हो रहा है। आज जब 21वीं सदी में वैश्वीकरण के दबावों के चलते विश्व की तमाम संस्कृतियाँ एवं भाषाएँ आदान–प्रदान व संवाद की प्रक्रिया से गुजर रही हैं तो हिंदी इस दिशा में विश्व मनुष्यता को निकट लाने के लिए सेतु का कार्य कर सकती है। हिंदी की मूल प्रकृति लोकतांत्रिक तथा रागात्मक संबंध निर्मित करने की रही है। वह विश्व के सबसे बडे लोकतंत्र की ही राष्ट्र भाषा नहीं है बल्कि पाकिस्तान, नेपाल, भूटान, बांग्लादेश, फिजी, मॉरीशस, गुयाना, त्रिनिदाद तथा सुरीनाम जैसे देशों की सम्पर्क भाषा भी है। वह भारतीय उपमहाद्वीप के लोगों के बीच खाडी देशों, मध्य एशियाई देशों, रूस, समूचे यूरोप, कनाडा, अमेरिका तथा मैक्सिको जैसे प्रभावशाली देशों में रागात्मक जुड़ाव तथा विचार–विनिमय का सबल माध्यम है।

आज विश्व भर में लगभग 156 विश्वविद्यालयों में हिंदी की पढ़ाई होती है। विदेशी छात्र भारत आकर हिंदी सीखते–पढ़ते हैं ताकि इस देश की मौलिक गुणवत्ता को जान समझ सकें। यह किसी भी भाषा और भाषाभाषियों के लिए गरिमा का विषय है। हिंदी का अर्थ केवल खड़ी बोली कतई नहीं है, बल्कि वे सारी बोलियाँ और भाषाएँ हैं जिन्हें हिंदी ने अंगीकार किया। हिंदी का अर्थ केवल खड़ी बोली या तत्सम, तद्‌भव ही नहीं देशज और विदेशज भी हैं अब तो संकर शब्दों का प्रचलन भी ज़ोर

पर है। आज मेज़ लिखें या *टेबुल*—दोनों हिंदी की धारा में समाहित है, अब गाँव पहुँचकर यही *'टेबुल'* शब्द 'टेबुलवा' हो जाएगा जैसे कि 'बच्चा' से 'बचवा'। किसी भी ग्राह्य शब्द को हिंदी इस प्रकार अपने में रचा बसा लेती है कि उससे पराएपन का बोध हमेशा—हमेशा के लिए समाप्त हो जाता है।

प्रवासी भारतीय हिंदी को महज एक भाषा नहीं, बल्कि अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक अस्मिता की वाहक समझकर उसे अंगीकार करते हैं और नई पीढ़ी में अपनी सभ्यता – संस्कृति का अलख जगाए रखना चाहते हैं, भले ही वे हिंदी से प्रत्यक्षतः जुड़े न हों। ये लोग अपने बच्चों को हिंदी सिखाने के लिए प्रयासरत हैं। डॉ. कामता कमलेश के शब्दों में,

"हिंदी मात्र साहित्य की चीज़ नहीं वरन हृदयों को जोड़ने वाली ऊर्जा भी है और प्रेम की गंगा भी।" (विश्व हिंदी सम्मेलन ग्रंथ)। हिंदी के प्रति जनजागृति निरंतर बढ़ती जा रही है, लोग अंग्रेज़ी के प्रति मानसिक दासता से मुक्त होने लगे हैं। जो आज हिंदी ने विज्ञान, तकनीक और अनुसंधान व अन्यान्य क्षेत्रों में पग बढ़ा दिए हैं, हालाँकि अंग्रेज़ी के चंगुल से पूरी तरह मुक्ति नहीं मिली किंतु विश्व भर में फैले भारतीय प्रवासी और भारतवंशियों का हिंदी के प्रति समर्पण और इसके विकास के प्रति कर्मनिष्ठता हमें आशान्वित करती है।

चुनौतियां

इस भाषा के समक्ष आज सबसे बड़ी चुनौती यही है कि कैसे इसे ज्ञान—विज्ञान की भाषा बनाएँ? हिंदी के विकास के लिए सरकारी प्रयास किए जा रहे हैं। हिंदी को तकनीक व कंप्यूटर से जोड़ने के लिए *सी—डैक*, पुणे ने *मंत्रा सॉफ्टवेयर* विकसित किया है जिससे कि विश्व की भाषाओं का मशीनी अनुवाद हिंदी में प्राप्त हो सके। इसी प्रकार से *स्पीच टू टेक्स, टेक्स टू स्पीच सॉफ्टवेयर* तथा विश्व के लोगों को आसानी से हिंदी सिखाने के लिए प्रबोध, प्रवीण, प्राज्ञ जैसे *सॉफ्टवेयर* विकसित किए हैं। अंतर्राष्ट्रीय जगत के *बीबीसी* को लगा कि अब हिंदी के बगैर बाजार में टिकना संभव नहीं है, उसने 24 घंटे अपने समाचार पत्र को हिंदी में *ऑनलॉइन* कर दिया। *माइक्रोसॉफ्ट* हिंदी में बाजार का विस्तार कर रही है वहीं *गूगल* जैसी *सर्च इंजन* भी हिंदी की ओर अभिमुख है।

यह बहस का मुद्दा बना हुआ है कि क्या 21वीं सदी में हिंदी का भविष्य उज्ज्वल है? इससे रोजगार मिलेगा या नहीं। बहुराष्ट्रीय कंपनियों में मोटी तनख्वाह मिलेगी या नहीं। लोग संशय की स्थिति में हैं कि हिंदी में रोजगार मिलेगा नहीं तो फिर हम हिंदी पढ़ें क्यों? आज नई पीढ़ी हिंदी की ओर आकर्षित नहीं हो रही हैं क्योंकि चिकित्सा, अभियांत्रिकी, सूचना प्रौद्योगिकी सहित कई विषयों की पाठ्य सामग्री की उपलब्धता हिंदी में नहीं के बराबर है। *इंटरनेट* पर जिन दस भाषाओं में सर्वाधिक सूचनाएं उपलब्ध हैं? उनमें हिंदी का स्थान न के बराबर है।

वस्तुतः हिंदी के भविष्य का प्रश्न भविष्य की हिंदी के स्वरूप से जुड़ा है। वैश्विक स्तर पर भाषा को जमने के लिए जो सबसे महत्वपूर्ण एवं किसी भी भाषा की सम्प्रेषणीय क्षमता के लिए आवश्यक शर्त है कि उस भाषा की निज अभिव्यक्ति क्षमता कितनी है। यदि भाषा विश्व के सभी लोगों को अपनी बात समझाने में असमर्थ है या यूं कहें कि उसमें सम्प्रेषणीयता का स्तर उच्च नहीं है, तो वैश्विक धरातल पर भाषा के टिके रहने का कोई आधार और औचित्य नहीं है। यदि भविष्य में भी हिंदी का स्वरूप समावेशी बना रहा और उसने दूसरी भाषाओं या बोलियों को आत्मसात करने की अपनी क्षमता बरकरार रखी, तो उसके लिए कोई खतरा नहीं है।

लेकिन इसके साथ—साथ यह समझना भी अनिवार्य है कि हिंदी को हृदय की भाषा कहने की बजाय ज्ञान—विज्ञान की भाषा के रूप में विकसित किया जाए ताकि पर्यावरण, चिकित्सा, ऊर्जा, पर्यटन, स्त्री—विमर्श, दलित—विमर्श जैसे विषयों को हिंदी माध्यम से समझते हुए समाज को नई दिशा मिल सके। अगर हिंदी को प्रौद्योगिकी व तकनीक की भाषा के रूप में विकसित नहीं करेंगे तो इससे युवा पीढ़ी या नई पीढ़ी नहीं जुड़ पाएँगी। इसलिए इनकी आकांक्षाओं के अनुरूप रोजगारपरक पाठ्यक्रम तैयार किया जाय ताकि बच्चे गर्व से हिंदी पढने के लिए आतुर हों, उसे यह हीनताबोध नहीं होगा कि हम हिंदी पढ़कर डॉक्टर, इंजीनियर या वैज्ञानिक नहीं बन सकते हैं। स्पष्टतः यह कहा जा सकता है कि हिंदी हर युग में इस देश की आवाज रही है। आज उसके सामने एक नई पीढ़ी है, उसे अपनी भाषा में नवीनतम ज्ञान प्रौद्योगिकी, सम्मान, आत्मनिर्भरता, समृद्धि, जीवनयापन और उत्कर्ष से भरपूर अवसर मिलना चाहिए ताकि भारत का मस्तक और भी ऊँचा हो।

आत्मनिर्भरता में बागवानी फसलों का योगदान

बीपी शाही[1], विनीता सिंह[2] एवं आलोक सिंह[3]
[1]कृषि विज्ञान केन्द्र, नानपारा, बहराइच
[2]डी.ए.वी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, लखनऊ
[3]आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या

देश के कृषि क्षेत्र में हो रहे विकास में बागवानी की प्रशंसनीय भूमिका रही है। जिस प्रकार देश के सकल घरेलू उत्पादन में कृषि का लगभग 17% योगदान है, उसी प्रकार बागवानी का कृषि में 30% योगदान है। बागवानी में फल, आलू, टमाटर, बैगन सहित कंदीय फसलें (अरबी, शकरकंद, जिमीकंद आदि), मशरूम, *कट फ्लावर* समेत शोभाकारी पौधे, मसाले, रोपण फसलें और औषधीय एवं सगंधीय पौधों का, भारत में कई राज्यों के आर्थिक विकास में प्रमुख योगदान है। भारत ने बागवानी के क्षेत्र और बागवानी उत्पादों के निर्यात में काफी प्रगति की है। भारत में उत्पादित बागवानी फसलों की विदेशों में मांग बढ़ रही है, जैसे कि भारत का आम उत्पादन के क्षेत्र में प्रथम स्थान है। यहां पूरे विश्व के उत्पादन का 52% आम होता है। भारतीय आम, अनार, अंगूर, केला, संतरा, लीची, अमरूद, पपीता, अनानास, चीकू, शरीफा आदि फलों तथा सब्जियों में प्याज, टमाटर, आलू, हरी मिर्च, भिंडी, बैगन आदि का निर्यात यूरोप, अमेरिका, यूनाइटेड किंगडम, संयुक्त अरब अमीरात, ओमान, नीदरलैंड तथा पाकिस्तान, श्रीलंका, नेपाल, भूटान, मालदीव, बंगलादेश जैसे दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन के देशों में किया जा रहा है। इस दिशा में संयुक्त राष्ट्र ने वर्ष 2021 को फलों–सब्जियों का अंतर्राष्ट्रीय वर्ष घोषित करके स्वास्थ्य एवं आजीविका के लिए फल–सब्जियों के उत्पादन, उपयोग एवं महत्व को प्रोत्साहन दिया है। भारत ने बागवानी फसलों के उत्पादन में विश्व के पटल पर एक बड़ा मुकाम हासिल कर लिया है। बागवानी फसलों का कुल उत्पादन 3200 लाख टन है। इस उपलब्धि में राष्ट्रीय बागवानी मिशन का योगदान रहा है।

हमारा देश विभिन्न कृषि जलवायु वाला राष्ट्र है। जहां पौधों के अनुवांशिकीय संसाधनों की बड़ी संख्या, जैव विविधता, एक राष्ट्रीय धरोहर के रूप में मौजूद है। आम, केला, नारियल, काजू, कसावा, अंगूर, पपीता, अनार, अमरूद आदि में विश्व में, भारत शीर्ष उत्पादक देश है।

आलू, बैगन, फूलगोभी, प्याज, पत्ता गोभी, मटर, भिंडी इत्यादि सब्जियों में विश्व का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक देश भारत है। मसालों का सबसे बड़ा उत्पादक एवं निर्यातक देश भारत ही है।

मुख्य रूप से गुणवत्तापूर्ण, कीटरोधी उन्नत किस्मों के बीजों एवं पौध सामग्री का प्रयोग, सघन बागवानी प्रणाली, समेकित पोषण प्रबंधन, कीट एवं रोग प्रबंधन, संरक्षित खेती आदि के कारण बागवानी उत्पादों में लगभग 7 गुना बढ़ोत्तरी हुई और जिससे पोषण सुरक्षा एवं रोजगार के अवसरों में भी वृद्धि हुई है। ताजा फलों और सब्जियों के निर्यात में मूल्य के आधार पर 14% और प्रसंस्कृत फलों और सब्जियों में 16% वृद्धि दर्ज की गई। कोविड–19 महामारी प्रकोप के दौरान कृषि क्षेत्र में आपदा को अवसर में बदलते हुए खाद्य आपूर्ति श्रृंखला को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। हमारी कार्यशैली में बदलाव आया, लोगों को प्रकृति के ज्यादा करीब आने का अवसर मिला, व खान–पान में *हर्बल* एवं औषधीय फसलों का उपयोग बढ़ा है। रोग प्रतिरोधक क्षमता को बनाए रखने के लिए प्राकृतिक चिकित्सकीय औषधि फसलें जैसे हल्दी, तुलसी, तेजपत्ता, अदरक, *ऐलो वेरा,* गिलोय, लौंग, आंवला, काली मिर्च, दालचीनी आदि का उपयोग एवं मांग बढ़ी है। हम अपनी खाद्य श्रृंखला में जैवसंवर्धित फसलों को शामिल करने व आहार में विविधता लाने का भी प्रयास कर रहे हैं जिससे पोषण के लिए अनाजों पर निर्भरता कम हो। सरकार ने भी किसानों की आय दोगुना करने के लिए विभिन्न प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि योजना, प्रधानमंत्री सिंचाई योजना, प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना, मृदा स्वास्थ्य कार्ड, *एफपीओ* जैविक कृषि विकास योजना, एक जिला एक उत्पाद आदि प्रमुख हैं।

किसानों के कौशल विकास के लिए भारतीय कृषि कौशल विकास परिषद की स्थापना, किसानों को कृषि एवं बागवानी की नई तकनीकियों का प्रशिक्षण दिया जा रहा है।

देश में 722 कृषि विज्ञान केन्द्रों, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के 103 संस्थाओं तथा 63 कृषि–विश्वविद्यालयों द्वारा कृषि, बागवानी, पशुपालन, मत्स्यपालन आदि की नई तकनीकों के बारे में किसानों को जागरूक किया जा रहा है। फल–सब्जियों की खेती को बढ़ावा देने एवं फसल पश्चात नुकसान कम करने के लिए *'ऑपरेशन ग्रीन'* नामक योजना को टमाटर, प्याज, व आलू के मूल्य स्थिर करने और किसानों को उनके उत्पादों का सही मूल्य दिलवाने हेतु की गयी और वर्तमान में इसका विस्तार करके 22 अन्य उपजों को भी इस योजना में शामिल कर लिया गया है।

कृषि में वांछित विकास के लिए बागवानी क्षेत्र प्रमुख रूप से ऐसी उत्पादन तकनीकी विकास कर रहा है जिसमें फसलों से अपशिष्ट कम निकले और बागवानी फसलों की ताजगी लंबे समय तक बनी रहे, जिससे फसलों के मूल्य संवर्धित हो सके। नैदानिक तकनीकी सहायता से बागवानी फसलों की जैव विविधता, संसाधनों की गुणवत्ता, उत्पादन दक्षता आदि का संवर्धन व संरक्षण किया जा सके और बागवानी फसलें देश के आर्थिक विकास एवं कृषि सकल घरेलू उत्पाद में अधिक से अधिक महत्वपूर्ण योगदान दे सकें।

आत्मनिर्भर भारत एवं कृषि : दुग्ध पशुपालन, तथा मांस–मछली उत्पादन में आत्मनिर्भरता

सुमित भाऊसाहेब उ.हे.
भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

भारत एक कृषि प्रधान देश है। भारत के विभिन्न भागों में कृषि की भिन्नता है। खेती के उत्पादन खराब मौसम, अनिश्चित बारिश के कारण काम ज्यादा होते रहते हैं। किसान को खेती के उत्पादन के साथ–साथ किसी जोड़ विकल्पों की जरूरत पड़ती है जिससे कि किसान न्यूनतम आय अर्जित कर सके। पशु, पक्षी तथा मछली पालन किसान के लिए भरोसे के आय का साधन बन रहे हैं। ग्रामीण भागों में महिलायें, युवा किसानों का पशुपालन में बड़ा योगदान है। किसान समूह बनाकर *कॉर्पोरेट फार्मिंग,* किसान उत्पादक संगठन, छोटी कम्पनियां बनाकर अपने माल की प्रक्रिया प्रसंस्करण कर सकते हैं, या उस माल को विदेशी बाजारों में बेच सकते हैं।

देश में गाय, भैंस, बकरी आदि दूध देने वाले पशु आराम से पाले जा सकते हैं। वर्ष 2019 में भारत के पास (संख्या दसलक्ष में) (192.5) गाय, (148) बकरियां, (109. 9) भैंसे, (74.3) भेड़, (9.1) सूअर है। अपने खेत में उगने वाली घास, तथा खाद्य पदार्थ आसानी से उन पशुओं को खिलाकर उनका संगोपन किया जा सकता है। ज्यादा दूध देने वाली प्रजातियों का चयन, उनका संगोपन, रख–रखाव, खाद्य नियोजन, तैयार उत्पाद को बेचना आज के युवा अच्छे से कर सकते हैं। दूध का संकलन, ग्रामीण स्तर पर दुग्धालय, दूध संयत्र की स्थापना किसान सहकारी संगठन के माध्यम से बनायी जा सकती है। दूध के साथ–साथ, मांस, खाद, या जैव रसायन बनाने को भी बढ़ावा मिलता है। पशु आहार एवं चारा बनाने की नई तकनीक आज कल प्रगति पर है। इससे ग्रामीण युवाओं को रोजगार प्राप्त होता है।

भारत 1998 से विश्व का अग्रणी दूध उत्पादक देश है। भारत का कुल दूध उत्पादन गत छह सालों के मुकाबले 35.61% से बढ़कर सन् 2019–20 में 198.4 दसलक्ष टन हुआ है (आर्थिक सर्वेक्षण, 2020)। भारत दूध उत्पादन में सभी राष्ट्रों से आगे है। वर्ष 2019–20 में कुल 51.422 दसलक्ष टन दुग्ध उत्पाद विदेशी राष्ट्रों में निर्यात किये गए थे। भारत सरकार की जन धन योजना ग्रामीण महिलाओं को पशु संवर्धन क्षेत्र में वित्तीय सुरक्षा प्रदान करने में सक्षम रही है। बीते कुछ सालों से दूध के क्षेत्र में महाराष्ट्र, कर्नाटक, बिहार व राजस्थान की महिला किसानों को मुख्यता डेयरी विभाग से मदद मिल रही है। दूध का प्रसंस्करण करके विविध उत्पाद बनाये जा सकते हैं। ये उत्पाद देश या विदेश में बेचे जा सकते हैं। भेड़ व बकरियों ग्रामीण भागों में दूध या मांस के लिए पाली जाती हैं। आज के वक्त में संकरित जातियों की बकरियों का पालन बड़े पैमाने पर हो रहा है। ये जानवर कम आहार, थोड़ी जगह में, और कम से कम निरीक्षण में पाले जा सकते हैं। बंदिस्त या मुक्त स्वरूप से इनको पाला जा सकता है। लगभग सात मास में ये अपने बच्चे पैदा करती है, इससे इनकी संख्या जल्दी बढ़ सकती है। भेड़–बकरी पालन आज के ग्रामीण तथा शहरी युवाओं का आकर्षक केन्द्र बना है।

भारत में मस्त्य उत्पादन एक महत्वपूर्ण खाद्य, पोषण व रोजगार स्रोत है। यह क्षेत्र भारत में कुल 160 लाख मछुआरे किसानों का जीवनयापन करता है। मस्त्य कृषि विभाग से देश को कुल योगदान 6.58% अंश कृषि सकल घरेलू उत्पाद में होता है। विदेशी व्यापार में मस्त्य क्षेत्र 5% कुल निर्यात और 19.23% कुल कृषि निर्यात (2017–18) का हिस्सा रहा है। देश को भरी तादाद में समुद्री या नदी तटों से मछली का उत्पादन होता है। हालाँकि खेती में पानी के लिए बनाये गए तालाब, कुएं, या जलतरंग का उपयोग मछली पालन के लिए होता आ रहा है। आज के दौर में संरक्षित भागों में मछली की कृत्रिम संरचना बनाकर पालन किया जा रहा है।, इसमें उनके खाद्य, जलवायु तथा विकास की जानकारी आसानी से रखी जाती है। जल्दी बड़े होने वाली किस्मों का संगोपन कम लागत में किया जा सकता है। मछली को आसपास के शहरी क्षेत्रों में बेचा जा सकता है, वहां उनकी मांग ज्यादा होती है। इस तरह मत्स्य पालन एक लाभकारी व्यवसाय आज के युवा किसानों के सामने है।

दुग्ध, पशुपालन तथा मत्स्य उत्पादन को किसान संघ के माध्यम से भी बढ़ावा दे सकते हैं। सरकार के किसान उत्पादक संगठन नीति का उपभोग करते हुए किसान समूह अपने आय बढ़ा सकते हैं। उपर्युक्त विषयों में कृषि की आधुनिक तकनीक के माध्यम से अच्छी तरह से बढ़त प्राप्त की जा सकती है। इसमें एकात्मिक खेती का विकास किया जा सकता है।

कृषि क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनने के लिए एकजुट होकर काम करना अति आवश्यक है। राज्य व केन्द्र सरकारों की विविध योजनाओं से आर्थिक दृष्टि का लाभ लेकर अपने कार्य का शुभारंभ कर सकते हैं। किसान को आत्मनिर्भर बनाने के लिए आने वाले समय में फसल के साथ–साथ पशुपालन से सहायता लेना अनिवार्य हो सकता है। इसलिए दुग्ध, पशुपालन, तथा मांस–मछली उत्पादन भारत को आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में सक्षम है।

आत्मनिर्भर भारत : *लोकल* के लिए *वोकल* स्वदेशी तकनीक द्वारा आर्थिक वृद्धि

प्रताप कुमार दास एवं गोपाल कृष्णा
भाकृअनुप–केन्द्रीय मात्स्यिकी शिक्षा संस्थान, वरसोवा, मुंबई

सारांश

आवश्यकता अविष्कार की जननी होती है। भारत के यशस्वी प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी द्वारा दिया गया 'आत्मनिर्भर भारत : *लोकल* के लिए *वोकल*' यह नारा इस बात को चरितार्थ करता है। दरअसल यह नारा अपनी इस परिधि में घूमता नजर आता है कि विश्व में 2020 में कोविड–19 अर्थात कोरोना महामारी चीन के रास्ते पूरे विश्व में द्रुतगति से फैली है और देखते ही देखते यह एक वैश्विक महामारी बन जाती है। विश्व के अनेकों देश इस स्थिति से निपटने के लिए कस्बों, शहरों एवं पूर्ण देश में *लॉकडाउन* लगे रहने के कारण पूरे विश्व की अर्थव्यवस्था चरमरा जाती है। ऐसे में भारत पर आत्मनिर्भर बनने का दबाव बनता है और ऐसे ही चुनौतियों का सामना करते हुए भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी के मन में एक नई संकल्पना जन्म लेती है। यह संकल्पना है कि हम अपनी प्रतिभा, क्षमता ताकत एवं स्थानीय वस्तुओं की पहचान करते हुए इसे विश्वस्तरीय बनाएंगे तभी इस स्थिति से देश को बाहर निकाल पाएंगे। यहीं से भारत की आत्मनिर्भरता एवं *लोकल* के लिए *वोकल* की ओर देश अग्रसर होता दिखाई देता है।

इस कड़ी में, सर्वप्रथम हम अपने देश की चिकित्सा क्षेत्र की बात करें तो इस समय तक हमारे देश में *सर्जिकल किट, वेंटिलेटर, पी.पी.ई. किट* आदि का उत्पादन अन्य देशों की तुलना में बहुत कम था लेकिन ऐसे संकट की घड़ी में भारत अपनी क्षमता का परिचय देते हुए उपरोक्त सामग्रियों का विश्व का सर्वश्रेष्ठ उत्पादक देश बन गया है। प्रधानमंत्री के मार्गदर्शन एवं भारतीय चिकित्सा वैज्ञानिकों के अथक परिश्रम से आज भारत कोविड–19 का सफलतापूर्वक *वैक्सीन* की खोज कर विश्व में अग्रणी देश बन गया है। भारत *बायोटेक* एवं *सीरम इन्स्टीट्यूट* ने कोवैक्सीन एवं कोविशील्ड तैयार कर आज भारत के लोगों सहित पड़ोसी एवं विश्व के अन्य देशों को भी मदद पहुंचाई है।

इस धारा में, *लोकल* के लिए *वोकल* क्षेत्रीय स्तर पर देश में अनेकों उत्पाद बनाए जाते हैं परंतु वैश्विक स्तर पर अभी तक उनकी पहचान नहीं बन पाई है। इसके अंतर्गत ऐसे वस्तुओं के उत्पादन पर बल दिया गया है। स्थानीय स्तर पर वित्तीय सहायता एवं भौतिक संरचनाओं को सरकार ने सुदृढ़ किया जिससे दुनिया में इसकी पहचान बनी है तथा *मेक इन इंडिया* एवं *मेड इन इंडिया* की आधारभूत संरचना मजबूत हुई है। सरकारी एवं गैर–सरकारी संगठनों के प्रयास से वस्त्र उद्योग के अंतर्गत खादी ग्रामोद्योग के उत्पाद को नवीनीकरण, बनारसी वस्त्र उद्योग, भागलपुरी रेशम उद्योग, मधुबनी कला, राजस्थान लघु एवं हस्तकरघा उद्योग, कुटीर उद्योग दक्षिण भारतीय कला, आभूषण उद्योग, मशीनरी उद्योग, कुटीर उद्योग सभी क्षेत्रों का विकास हो सके। इसके लिए सरकार ने राहत *पैकेज* देकर इस क्षेत्र को मजबूत करने का प्रयास किया है। प्रधानमंत्री ने राष्ट्र को संबोधित करते हुए कहा कि 21वीं सदी भारत की बने, इसके लिए देश को आत्मनिर्भर बनाना ही एकमात्र रास्ता है। अपने संबोधन के दौरान प्रधानमंत्री ने कोरोना आपदा से निपटने के लिए ₹ 20 लाख करोड़ के आर्थिक *पैकेज* का ऐलान किया है। ये आर्थिक *पैकेज* हमारे कुटीर उद्योग, गृह उद्योग, लघु एवं मझले उद्योग *एमएसएमई* के लिए है जो करोड़ों लोगों की आजीविका का साधन है जो आत्मनिर्भर भारत के हमारे संकल्प का मजबूत आधार है।

आत्मनिर्भरता के लिए पांच स्तम्भ बताए गए हैं जो इस प्रकार हैं:

1. पहला स्तम्भ अर्थव्यवस्था है। एक ऐसी अर्थव्यवस्था है जो *इंक्रीमेंटल चेंज* नहीं बल्कि *क्वांटम जम्प* लाए।
2. दूसरा स्तम्भ है अवसंरचना। एक ऐसी अवसंरचना जो आधुनिक भारत की पहचान बने।

3. तीसरा स्तम्भ– हमारी प्रणाली। एक ऐसी प्रणाली जो बीती शताब्दी को रीति–नीति नहीं, बल्कि 21वीं सदी के सपनों को साकार करने वाली प्रौद्योगिकी वाली व्यवस्थाओं पर आधारित हो।
4. चौथा स्तम्भ है हमारी आबादी। दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र में हमारी *वाइब्रेंट डेमोग्राफी* हमारी ताकत है। आत्मनिर्भर भारत के लिए हमारी ऊर्जा का स्रोत है।
5. पांचवां स्तम्भ है मांग। हमारी अर्थव्यवस्था में मांग और आपूर्ति श्रृंखला का जो चक्र है, जो ताकत है उसे पूरी क्षमता से इस्तेमाल किए जाने की जरूरत है।

आत्मनिर्भर भारत

- वर्तमान वैश्वीकरण के युग में आत्मनिर्भर की परिभाषा में बदलाव आया है। आत्मनिर्भरता आत्म केन्द्रित से अलग है।
- भारत 'वसुधैव कुटुम्बकम' की संकल्पना में विश्वास करता है। चूंकि भारत दुनिया का ही एक हिस्सा है। अतः यदि भारत प्रगति करता है तो वह दुनिया की प्रगति में भी योगदान देता है।
- आत्मनिर्भर भारत के निर्माण में वैश्वीकरण का वहिष्कार नहीं जाएगा अपितु दुनिया के विकास में मदद की जाएगी।

प्रथम चरण

- इसमें चिकित्सा, वस्त्र, *इलेक्ट्रानिक्स,* प्लास्टिक खिलौने जैसे क्षेत्रों को प्रोत्साहित किया जाएगा ताकि स्थानीय विनिर्माण और निर्यात को बढ़ावा दिया जा सके।

द्वितीय चरण

- इसमें रत्न एवं आभूषण, दवाई, *स्टील* जैसे क्षेत्रों को प्रोत्साहित किया जाएगा।

जलीय कृषि के क्षेत्र *लोकल* के लिए *वोकल* का जहां तक संदर्भ में वह अन्य कृषि कार्यों से अलग है। कृषि कार्य में प्रयोग होने वाले बीज में सजीवता प्राणी या जन्तुओं जैसा नहीं होता परंतु जन्तुओं बीज जैसे मछली का जीरा सजीव होता है। अतः जब हम जीरा को विक्रय केन्द्र से खरीदकर पालन स्थल तक ले जाते हैं ऐसे में यातायात के दौरान तनाव एवं आक्सीजन की कमी के कारण मृत्यु दर बढ़ जाती है। ऐसे में उपयुक्त होगा कि मछली बीज अर्थात जीरा विक्रय केन्द्र की सुविधा बढ़ाई जाए ताकि यातायात के दौरान की मर्त्यता पर रोक लग सके। इसके दूसरे दुष्परिणाम द्वारा यातायात मूल्य बढ़ जाता है जिसके कारण मछली का जीरा महंगा पड़ता है और किसानों को इसका खामियाजा भुगतना पड़ता है। जीरा के उत्पादन में बढ़ोत्तरी होने से किसानों को आसानी से अपने नजदीकी केन्द्र पर जीरा उपलब्ध हो पाएगा। कोरोना काल में मत्स्य पालन एवं प्रग्रहणोपरांत स्थानीय बाजार का होना नितांत आवश्यक है जहां किसान अपने उत्पाद को बेच सकें। अगर स्थानीय बाजार की सुविधा हो तो उपभोक्ता को जिंदा एवं ताजा मछली पालन भोजन के लिए उपलब्ध होगी।

इस उद्योग में लगे किसानों की आय में अनिश्चितता बनी है। अतः इस क्षेत्र में स्थायित्व का भरोसा किसानों को होना चाहिए। कभी–कभी बीमारियों के कारण पालित मछलियां मर जाती हैं जिसका खामियाजा किसानों को भुगतना पड़ता है। अतः स्थानीय स्तर पर सरकार किसानों में भरोसा पैदा करें कि उनके उत्पाद, बीमा एवं अन्य माध्यमों द्वारा सुरक्षित हों तथा नुकसान का फायदा उसे प्राप्त होगा तो इस उद्योग के प्रति किसानों में उत्साह पैदा होगा।

इस प्रकार सरकार द्वारा मानवशक्ति, कौशल विकास को सुदृढ़ करते हुए स्थानीय एवं आत्मनिर्भर भारत सफलतापूर्वक अपने पथ पर अग्रसर है। हम अपने देश की तकनीकों का विकास कर आर्थिक समृद्धि ला सकते हैं। भारत आज इसी दिशा में कार्य कर आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ रहा है।

एक जिला एक उत्पाद योजना: कौशल विकास, रोजगारपरक और आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ते कदम

ओम प्रकाश[1], पल्लवी यादव[2], ब्रह्म प्रकाश[1], अभिषेक कुमार सिंह[1] एवं अजय कुमार साह[1]
[1]भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ
[2]चंद्र भानु गुप्त कृषि स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बक्शी का तालाब, लखनऊ

उत्तर प्रदेश में लघु और मध्यम उद्योगों को बढ़ावा देने और स्वरोजगार को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से एक जिला एक उत्पाद योजना का शुभारंभ किया गया है। उत्तर प्रदेश सरकार की योजनाओं की सूची में बहुत सी ऐसी योजनाएं हैं जो बेरोजगारों को रोजगार देने में मदद करती हैं। उत्तर प्रदेश सरकार के अनुसार इस योजना के द्वारा स्थानीय कौशल का विकास तो होगा ही, इसी के साथ वस्तुओं का निर्यात भी अधिक मात्रा में संभव होगा, और यह भी अनुमान लगाया गया है कि इससे देश के सकल घरेलू उत्पाद में भी बढ़त होगी। एक जिला एक उत्पाद योजना के अंतर्गत अभी तक 5 लाख लोगों को रोजगार मिल चुका है। इन छोटे लघु एवं मध्य उद्योग से ₹ 89 हजार करोड़ से अधिक का निर्यात उत्तर प्रदेश से किया जा चुका है।

एक जिला एक उत्पाद योजना क्या है?

भारत देश अनेकता में एकता रखता है। यहाँ कला की कमी नहीं है हर प्रदेश, अपनी कुछ विशेष चीजों के लिए प्रसिद्ध है। उत्तर प्रदेश में भी कई छोटे लघु उद्योग हैं, जहाँ से विशेष पदार्थ बनकर देश विदेशों में जाता है। उत्तर प्रदेश में कांच का सामान, लखनवी कढ़ाई के कपड़े, विशेष चावल आदि बहुत प्रसिद्ध हैं। ऐसे सभी उत्पाद गाँव के छोटे–छोटे कलाकार बनाते हैं, जो साधनों की कमी के बावजूद अपनी कला को दुनिया में बिखेरते हैं। लेकिन समय के साथ इन छोटे कलाकारों का अस्तित्व भी गुम होते जा रहा है, इन छोटे लघु उद्योग की जगह बड़े–बड़े कारखानों ने ले ली है, जहाँ मशीन से काम होता है। हाथ के कारीगर को उनका वो दाम नहीं मिलता, जितना उनको मिलना चाहिए। उत्तर प्रदेश सरकार एक जिला एक उत्पाद से ऐसे ही खोये हुए कलाकार को रोजगार देगी एवं वहां पर काम करने वालों को आगे बढ़ाएगी। इस तरह की योजना पहली बार जापान में *लॉन्च* हुई थी, फिर आगे इसकी सफलता को देखते हुए इसे चीन जैसे बड़े देश ने भी लागू किया था। एक जिला एक उत्पाद योजना से राज्य के छोटे से छोटे गाँव का नाम देश–विदेश में प्रसिद्ध होगा। उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा हर महीने रोजगार मेले आयोजित होते हैं। उत्तर प्रदेश के रोजगार मेलों में ऑनलाइन पंजीकरण आसानी से घर बैठे हो जाता है।

एक जिला एक उत्पाद (*ओ.डी.ओ.पी.*) योजना का उद्देश्य

स्थानीय शिल्प का विकास योजना का मुख्य उद्देश्य है, जिससे छोटे–छोटे कारीगरों की आय में वृद्धि होगी। इन कारीगरों को रोजगार और अधिक पैसों के लिए अपने घर को छोड़कर शहर जाना पड़ता था, *ओडीओपी* योजना से श्रमिकों के पलायन में कमी आएगी। यह एक *पायलट प्रोजेक्ट* है। उत्तर प्रदेश राज्य में सफल होने के बाद इसे राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर लॉन्च किया जायेगा, जिससे भारत के सभी राज्यों में इस योजना के द्वारा लोगों को लाभ मिल सके। इसके साथ ही यह योजना युवाओं को भी आकर्षित करेगी, जिससे बेरोजगारों को नए अवसर मिलेंगे।

एक जिला एक उत्पाद योजना कैसे काम करेगी?

इस योजना का मुख्य उद्देश्य उत्तर प्रदेश और देश का विकास करना है। इस योजना के द्वारा जिले के छोटे, मध्यम और परंपरागत उद्योगों का विकास संभव हो पायेगा। इस योजना के द्वारा उद्योगों को बढ़ावा देने के उद्देश्य से नयी तकनीकों का प्रयोग और प्रशिक्षण दिया जायेगा, ताकि यह उत्पाद बाजार में उपलब्ध अन्य उत्पादों की बराबरी कर सके। इस योजना के द्वारा स्वरोजगार को बढ़ावा मिलेगा। अब तक के अनुमान के अनुसार, अगले आने वाले 5 वर्षों में लगभग 25 लाख लोगो को रोजगार मिलेगा। सरकार के द्वारा ₹ 25,000 करोड़ स्थानीय व्यापारियों और अन्य छोटे उद्योगों को बढ़ाने के लिए बेरोजगार लोगों को दिये जायेंगे।

इस योजना के अंतर्गत इन जिलों में बन रहे उत्पादों की गुणवत्ता, उत्पादकता, प्रतिस्पर्धा आदि का ध्यान रखने के लिए एक समिति बनाई जाएगी जो इन

सबका विश्लेषण करे और फिर उसके अनुसार अपने कार्य के लिए रणनीति तैयार करेगी। लघु, मध्यम, परंपरागत उद्योग को आर्थिक रूप से सरकार मदद करेगी, साथ ही उसकी गुणवत्ता, कुशलता में विशेष सुधार किया जायेगा। इस योजना के अंतर्गत कम ब्याज दर में ऋण दिया जायेगा, जिससे ज्यादा से ज्यादा लोग इस योजना का लाभ ले सकें। इसके साथ ही इसकी *पैकिंग, ब्रांडिंग* पर भी काम किया जायेगा। हर एक उत्पाद को *ब्रांड* नाम दिया जायेगा, जिससे उत्तर प्रदेश राज्य की भी विश्व पटल पर पहचान बढ़ेगी। अच्छी पैकिंग, *ब्रांड* नाम होने से लोग इसे जानेंगें और उत्पाद की तरफ आकर्षित होंगें। इन उत्पादों को आम लोगों तक पहुंचाने के लिए इसे दूर–दूर निर्यात किया जायेगा। इसके लिए *ऑनलाइन* माध्यम चुना जायेगा। इसके अलावा, हस्तशिल्प जैसे मेले लगाए जायेंगें। जगह–जगह *काउंटर* पर इसकी बिक्री शुरू की जाएगी। इस योजना के चलते उस क्षेत्र की अपनी अलग पहचान बनेगी, साथ ही वहाँ का पर्यटन भी बढेगा।

एक जिला एक उत्पाद योजना का क्रियान्वयन

इस योजना के क्रियान्वयन के लिए 6 मुख्य श्रेणियाँ बनाई गयी हैं। इन श्रेणियों को कच्चा माल, वित्त, अभिकल्प, संरचना परीक्षण प्रयोगशाला, प्रशिक्षण तथा प्रदर्शन; प्रदर्शनी तथा विपणन आदि भागो में विभाजित किया गया है।

जिला अधिकारी को इस योजना की जिम्मेदारी सौंपी जायेगी। जिला अधिकारी को अपने जिले में एक जिला एक उत्पाद योजना के क्रियान्वयन के लिए अपनी एक समिति का गठन करना होगा।

इस योजना के अनुसार अपने व्यवसाय को चलाने के लिए पुरुषों को एक लाख रुपए और महिलाओं को 1.5 लाख रुपये की *लोन सब्सिडी* दी जाएगी। इस योजना के द्वारा उद्योग शुरू करते वक्त *स्टाम्प* शुल्क में भी छूट दी जाएगी। बुंदेलखंड और पूर्वांचल में यह शत प्रतिशत निशुल्क होगा, वहीं मध्यांचल और पश्चिमांचल वाले क्षेत्रों में 70 और 50 प्रतिशत तक छूट होगी।

एक जिला एक उत्पाद योजना के अंतर्गत चुने गये जिले और उनके उत्पाद

उत्तर प्रदेश के हर एक जिले से एक उत्पाद को चुना गया है। जिस जिले में जिसका उत्पादन अधिक है, उससे जुड़े कारीगर वहां हैं, तो उस जिले को उस विशेष उत्पाद के निर्माण के लिए चुना गया है। इस योजना में हर जिले के लिए उत्पाद का चयन वहाँ की परंपरा और उपलब्धता के आधार पर किया गया है। इस आलेख में एक जिला एक उत्पाद योजना की सूची, आवेदन प्रक्रिया, स्वरोजगार ऋण से जुडी सभी प्रकार की जानकारी का वर्णन किया गया हैं।

उत्तर प्रदेश एक जिला एक उत्पाद योजना को 24 जनवरी 2018 को प्रदेश के जनपदों में पारम्परिक शिल्प एवं लघु उद्यमों के संरक्षण के लिए और उसमें अधिक से अधिक रोजगार सृजन करने के लिए मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ जी के द्वारा *लॉन्च* किया गया है। इस योजना के तहत जिसके द्वारा उत्तर प्रदेश के सभी जिलों का अपना एक उत्पाद होगा, जो उस जिले की पहचान बनेगा। यह व्यापार सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम श्रेणी में रखा गया है। इस एक जिला एक उत्पाद योजना के तहत राज्य के बेरोजगार युवाओं को रोजगार के भी अवसर प्रदान किए जा रहे हैं।

उत्तर प्रदेश की एक जिला एक उत्पाद योजना

इस योजना के अंतर्गत उत्तर प्रदेश के 75 जनपदों के पाँच वर्षों में 25 लाख लोगो को रोजगार मिलेगा। इन छोटे, लघु एवं मध्य उद्योग से ₹ 89 हजार करोड़ से अधिक का निर्यात उत्तर प्रदेश से किया जा चुका है। उत्तर प्रदेश एक जिला एक उत्पाद योजना के तहत इन खोये हुए कलाकारों को सरकार रोजगार देगी और उत्तर प्रदेश में जो भी जिला, जनपद जिस विशेष सामान के लिए प्रसिद्ध हैं, उधर के लघु उद्योग को पैसा देगी, वहां पर काम करने वालों को आगे बढ़ाएगी।

3 दिसंबर 2020 को शामली जिले में ऋण मेले का आयोजन किया गया था। इस ऋण मेले में विभिन्न सरकारी योजनाओं के अंतर्गत जिले के नागरिकों को विधायक तेजेंद्र निर्मल तथा जिलाधिकारी जसजीत कौर के द्वारा ऋण वितरित किए गए थे।

सरकार द्वारा इस योजना के अंतर्गत *ओडीओपी टूल किट* लाभार्थियों को प्रदान की गई थीं। जिसकी राशि ₹ 38 लाख है। कुल मिलाकर एक जिला एक उत्पाद के अंतर्गत ₹ 28.75 लाख का ऋण 9 लाभार्थियों को तथा ₹ 21 लाख का ऋण 4 लाभार्थियों को ऋण मेले में प्रदान किया गया था।

उत्तर प्रदेश कौशल विकास मिशन

एक जिला एक उत्पाद योजना का शुभारंभ

इस योजना की चर्चा माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी, भारत सरकार ने अपने उत्तर प्रदेश के विधान सभा चुनाव प्रचार के समय ही कर दी थी, और जब उनकी पार्टी उत्तर प्रदेश में सत्ता में आई तो इस विषय पर कार्य को दिशा माननीय मुख्यमंत्री योगी आदित्य नाथ जी, उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा दी गई।

योजना की महत्वपूर्ण विशेषताएं

एक जिला एक उत्पाद योजना की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएं निम्न प्रकार से हैं:

1. यह योजना पूरे राज्य के समावेशी विकास के लिए आवश्यक है।
2. इसके बाद, यह योजना जिलों के छोटे, मध्यम और पारंपरिक उद्योगों के विकास में वृद्धि करेगी।
3. तदनुसार, राज्य सरकार बाजार में प्रतिस्पर्धा करने के लिए नई तकनीक को अनुकूलित करने पर ध्यान केंद्रित करेगी।
4. इस योजना के तहत लगभग 25 लाख बेरोजगार युवाओं को नौकरियां मिलेंगी और राज्य का सकल घरेलू उत्पाद 2 प्रतिशत बढ़ेगा।
5. उत्तर प्रदेश सरकार आने वाले 5 वर्षों में स्थानीय कारीगरों और उद्यमियों को ₹25,000 प्रदान करेगी।
6. इस योजना के सफल कार्यान्वयन के बाद, सभी उत्पादों को अंतर्राष्ट्रीय मान्यता मिलेगी। इसके अलावा, ये उत्पाद *ब्रांड* बन जाएंगे और *ब्रांड* उत्तर प्रदेश की पहचान भी बन जाएगी।

योजना के उद्देश्य एवं लाभ

उत्तर प्रदेश सरकार का उद्देश्य है कि प्रत्येक जनपद के हस्तकला, हस्तशिल्प एवं विशिष्ट हुनर को सुरक्षित एवं विकसित किया जाए। ताकि उस जनपद में रोजगार सृजन हो और आर्थिक समृद्धि का लक्ष्य हासिल हो सके। ये तभी हो सकता है जब जनपद के विशिष्ट उत्पाद के लिए कच्चा माल, डिज़ाइन प्रशिक्षण, तकनीकी एवं बाजार उपलब्ध कराया जा सके। एक जिला एक उत्पाद के जरिए छोटे–छोटे कारीगरों को

स्थानीय स्तर पर भी अच्छा मुनाफा मिल सकेगा और उन्हें अपना घर, जिला छोड़कर किसी दूसरी जगह नहीं भटकना पड़ेगा।

एक जनपद एक उत्पाद योजना के मुख्य तथ्य

एक जिला एक उत्पाद योजना से राज्य के छोटे से छोटे गांव का नाम देश प्रदेश में प्रसिद्ध होगा और यह योजना युवाओं को भी आकर्षित करेगी, जिससे बेरोजगार युवाओं को नए रोजगार के अवसर मिलेंगें।

इस योजना के तहत उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए नई प्रौद्योगिकी का प्रयोग और कारीगरों को प्रशिक्षण दिया जायेगा ताकि वह उत्पाद बाजार में दूसरे उत्पाद की बराबरी कर सके।

एक जनपद एक उत्पाद योजना जनपद के लिए उत्पाद का चयन वहाँ की परंपरा और उपलब्धता के आधार पर किया गया है जैसे आगरा चमड़ा उत्पाद के लिए, फिरोजाबाद काँच की चूड़ियों के लिए, इलाहाबाद अमरुद के फल प्रसंस्करण के लिए आदि।

एक जनपद एक उत्पाद योजना का उद्देश्य उत्तर प्रदेश के 75 जनपदों में विशिष्ट पारंपरिक उत्पाद औद्योगिक केंद्रों की स्थापना कर उन पारंपरिक उद्योगों का विस्तार करना है जो राज्य के संबंधित जनपदों के पर्याय हों।

एक जिला एक उत्पाद योजना के तहत जिला और उत्पादों की सूची

उत्तर प्रदेश राज्य में हर जिले का अपना एक विशेष उत्पाद है, जिसके लिए वह जिला प्रसिद्ध है। सरकार उसी उत्पाद में अपना ध्यान केंद्रित करके उस उत्पाद की गुणवत्ता को बढ़ाना है। इसके अलावा, प्रत्येक जिले को एक जनपद एक उत्पाद योजना के तहत एक उत्पाद सौंपा जाएगा। इस योजना का प्राथमिक उद्देश्य किसी विशेष उत्पाद पर ध्यान केंद्रित करना और अंतर्राष्ट्रीय बाजार में प्रतिस्पर्धा करने के लिए अपनी गुणवत्ता को बढ़ाना है। यह योजना इन उत्पादों की गुणवत्ता को बढ़ाने पर जोर देगी ताकि ये उत्पाद अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धा कर सकें। हर उत्पादों के साथ राज्य के सभी जिलों की पूरी सूची इस प्रकार है:

जिला	उत्पाद	जिला	उत्पाद
आगरा	चमड़ा उत्पाद	हापुड़	*होम फर्निशिंग*
अमरोहा	वाद्य यंत्र (ढोलक)	हाथरस	*हैंडलूम*
अलीगढ़	ताले एवं *हार्डवेयर*	हमीरपुर	हींग
औरेया	दूध प्रसंस्करण (देसी घी)	जालौन	जूते
आजमगढ़	काली मिट्टी की कलाकृतियाँ	जौनपुर	हस्तनिर्मित कागज कला
आंबेडकर नगर	वस्त्र उत्पाद	झांसी	ऊनी कालीन (दरी)
अयोध्या	गुड़	कौशाम्बी	*सॉफ्ट टॉयज* (मुलायम खिलौने)
अमेठी	मूँज उत्पाद	कन्नौज	खाद्य प्रसंस्करण (केला)
बदायूं	ज़री जरदोज़ी उत्पाद	कुशीनगर	इत्र
बागपत	*होम फर्निशिंग*	कानपुर देहात	केला *फाइबर* उत्पाद
बहराइच	गेहूँ डंठल (हस्तकला) उत्पाद	कानपुर नगर	एल्युमिनियम बर्तन
बरेली	ज़री–ज़रदोज़ी	कासगंज	चमड़ा उत्पाद
बलिया	बिंदी उत्पाद	लखीमपुर खीरी	ज़री–जरदोज़ी
बस्ती	काष्ठ कला	ललितपुर	जनजातीय शिल्प
बलरामपुर	खाद्य प्रसंस्करण (दाल)	लखनऊ	ज़री *सिल्क* साड़ी

जिला	उत्पाद	जिला	उत्पाद
भदोही	कालीन (दरी)	महाराजगंज	चिकनकारी एवं ज़री ज़रदोज़ी
बांदा	शज़र पत्थर शिल्प	मेरठ	*फर्नीचर*
बिजनौर	काष्ठ कला	महोबा	खेल की सामग्री
बाराबंकी	वस्त्र उत्पाद	मिर्ज़ापुर	गौरा पत्थर
बुलंदशहर	*सिरेमिक* उत्पाद	मैनपुरी	कालीन
चंदौली	ज़री–ज़रदोज़ी	मुरादाबाद	तारकशी कला
चित्रकूट	लकड़ी के खिलौने	मथुरा	धातु शिल्प
देवरिया	सजावट के सामान	मुज़फ्फरनगर	*सैनिटरी फिटिंग*
इटावा	वस्त्र उद्योग	मऊ	गुड़
एटा	घुंघरू, घंटी एवं पीतल उत्पाद	पीलीभीत	वस्त्र उत्पाद
फरुखाबाद	वस्त्र छपाई	प्रतापगढ़	बांसुरी
फतेहपुर	चादर एवं *आयरन फैब्रीकेशन वर्क्स*	प्रयागराज	खाद्य प्रसंस्करण (आंवला)
फ़िरोज़ाबाद	कांच के उत्पाद	रायबरेली	काष्ठ कला
गौतमबुद्ध नगर	*रेडीमेड गार्मेंट*	रामपुर	*पैचवर्क* के साथ *एप्लिक वर्क,* जरी *पैचवर्क*
गाज़ीपुर	*जूट वॉल हैंगिंग*	संत कबीर नगर	*ब्रासवेयर*
गाज़ियाबाद	अभियांत्रिकी सामग्री	शाहजहांपुर	ज़री–ज़रदोज़ी
गोंडा	खाद्य प्रसंस्करण (दाल)	शामली	लौहकला
गोरखपुर	*टेराकोटा*	सहारनपुर	लकड़ी पर नक्काशी
श्रावस्ती	जनजातीय शिल्प	सोनभद्र	कालीन
संभल	हस्तशिल्प (*हॉर्न–बोन*)	सुल्तानपुर	मूँज उत्पाद
सिद्धार्थनगर	काला नमक चावल	उन्नाव	ज़री–जरदोज़ी
सीतापुर	दरी	वाराणसी	बनारसी रेशम साड़ी

योजना में लाभ राशि हेतु आवेदन कैसे करें?

यदि आप एक जिला एक उत्पाद योजना के तहत लाभ राशि प्राप्त करना चाहते हैं तो आपको सबसे पहले इस योजना में आवेदन करना होगा। *ऑनलाइन* पंजीकरण हेतु नीचे दिए गए चरणों का पालन करें:

1. *वन डिस्ट्रिक्ट वन प्रोडक्ट* की आधिकारिक *वेबसाइट* पर जाना होगा।
2. यहां आपको *होम पेज* पर आपको *"ऑनलाइन* आवेदन करें" के *टेब* के तहत *"ओडीओपी* लाभ राशि योजना" पर *क्लिक* करना होगा, जैसे नीचे *इमेज* में दिखाया गया है:
3. यहां *क्लिक* करते ही आपके सामने एक *पेज* खुल जायेगा।

4. जहां आपको "एक जनपद एक उत्पाद *मार्जिन मनी* योजना" पर *क्लिक* करना होगा।

5. *क्लिक* करते ही आपके सामने एक और *पेज* खुल जायेगा, जहां आपको *"न्यू यूजर रजिस्ट्रेशन"* के *लिंक* पर *क्लिक* करना होगा।
6. इसके बाद आपके सामने *रजिस्ट्रेशन फॉर्म* खुल जायेगा। यहां आपको सभी जानकारियों को ध्यान से भरना होगा और *"सबमिट"* पर *क्लिक* करना होगा।
7. पंजीकरण हो जाने के बाद आपको ओडीओपी लाभ राशि योजना के *लिंक* पर *क्लिक* करना होगा।
8. अब आपके सामने एक *फॉर्म* और खुल जायेगा। इसमें पूछी गयी सभी जानकारी भरें और अंत में *सबमिट* पर *क्लिक* करें।

प्रशिक्षण तथा टूलकिट योजना के अंतर्गत आवेदन करने की प्रक्रिया

उद्योगों में कुशल कार्यबल को पूरा करने के लिए कारीगरों और श्रमिकों को उन्नत *टूल किट* और प्रशिक्षण मुहैय्या कराकर रोजगार उपलब्ध कराया जाता है। इस योजना में आवेदन करने वाले श्रमिकों को प्रशिक्षण के दौरान ₹ 200/– प्रतिदिन की दर से मानदेय भी दिया जाता है। यह राशि एक जनपद एक उत्पाद सामान्य सुविधा प्रोत्साहन योजना के तहत दी जाती है। आवेदन प्रक्रिया, स्वरोजगार ऋण से जुडी सभी प्रकार की जानकारी का वर्णन किया गया हैं।

- सर्वप्रथम आपको *वन नेशन वन प्रोडक्ट* की आधिकारिक वेबसाइट पर जाना होगा।
- अब आपके सामने *होम पेज* खुलकर आएगा।
- *होम पेज* पर आपको *ऑनलाइन* आवेदन करें के *टैब* पर *क्लिक* करना होगा।
- अब आपको *ओडीओपी ट्रेनिंग एंड टूलकिट स्कीम* के *लिंक* पर *क्लिक* करना होगा।
- इसके पश्चात आपके सामने एक नया पेज खुल जो आएगा जिसमें आपको एक जनपद एक उत्पाद परीक्षण एवं *टूलकिट* योजना के *लिंक* पर *क्लिक* करना होगा।
- अब यदि आप पहले से *रजिस्टर्ड* हैं तो आपको अपना *यूजरनेम* तथा *पासवर्ड* दर्ज करके लॉग इन करना होगा और यदि आप पहले से *रजिस्टर्ड* नहीं है तो आपको *न्यू यूजर रजिस्ट्रेशन* के *लिंक* पर *क्लिक* करके आवेदन फॉर्म भरना होगा।
- अब *ओडीओपी ट्रेनिंग* तथा *टूलकिट* योजना का आवेदन *फॉर्म* खुलकर आ जाएगा।
- *फॉर्म* में पूछी गई जानकारी ध्यानपूर्वक दर्ज करनी होगी।
- इसके पश्चात *सबमिट* के बटन पर *क्लिक* करना होगा। इस प्रकार से आवेदन कर पाएंगे।

ऐमेज़ॉन कला हाट एप्लीकेशन फॉर्म भरने की प्रक्रिया

- सर्वप्रथम आपको *वन नेशन वन प्रोडक्ट* की आधिकारिक *वेबसाइट* पर जाना होगा।
- अब आपके सामने *होम पेज* खुलकर आएगा।
- *होम पेज* पर आपको *बायर एंड सेलर प्लेटफार्म* के *टैब* पर *क्लिक* करना होगा।
- अब आपको *ऐमेज़ॉन* के *टैब* पर *क्लिक* करना होगा।
- इसके पश्चात आपको *बायर* के *लिंक* पर *क्लिक* करना होगा।
- अब आपके सामने आवेदन फॉर्म खुलकर आएगा।
- आपको इस फॉर्म में पूछी गई जानकारी जैसे कि नाम, *कांटेक्ट नंबर, बिजनेस नेम, बिजनेस ऐड्रेस, सिटी, स्टेट, पिन कोड* आदि दर्ज करना होगा।
- इसके पश्चात आपको *सबमिट* के *बटन* पर *क्लिक* करना होगा।
- इस प्रकार आप आवेदन कर पाएंगे।

मार्जिन मनी योजना क्या है?

अपने जिले के उत्पादों को बढ़ावा देने के लिए 'एक जनपद एक उत्पाद योजना में सरकार आवेदन करने वाले को उद्योग स्थापित करने के लिए आर्थिक सहायता देती है। इसमें उद्योग स्थापना के लिए ₹ 25 लाख तक की परियोजना लागत पर सरकार लागत का 25% या अधिकतम ₹ 6.25 लाख (जो भी कम हो) देती

है। इसी तरह ₹ 50 लाख तक की परियोजना लागत का 20% या अधिकतम ₹ 6.25 लाख (जो भी अधिक हो) आर्थिक सहायता देती है। जबकि ₹ 150 लाख तक की परियोजना लागत का 10 प्रतिशत या अधिकतम ₹ 10 लाख (जो अधिक हो) आर्थिक मदद देती है और ₹ 150 लाख से अधिक की परियोजना लागत का 10 प्रतिशत या अधिकतम ₹ 20 लाख (जो अधिक हो) तक की आर्थिक सहायता योजना में आवेदन करने वाले व्यक्ति को दी जाती है। एक जनपद एक उत्पाद योजना *मार्जिन मनी स्कीम* में भी जिला स्तरीय एक समिति योजना में आवेदन करने वाले व्यक्ति को बैंक से कर्ज स्वीकृत कराती है। 'एक जिला एक उत्पाद' योजना के बारे में और भी विस्तृत जानकारी प्राप्त करने के लिए इस योजना की आधिकारिक वेबसाइट (http:/odopup.in@h:) पर *विजिट* किया जा सकता है तथा इसके *टोल फ्री हेल्पलाइन नम्बर* 1800–1800– 888 पर फोन द्वारा सम्पर्क किया जा सकता है।

खाद्य तथा पोषण सुरक्षा हेतु कदन्न का मूल्य—संवर्धन एवं उद्यमिता विकास

संगप्पा, महेश कुमार, जिनु जेकब एवं विलास ए टोणपि
भाकृअनुप—भारतीय कदन्न अनुसंधान संस्थान, राजेन्द्रनगर, हैदराबाद

खाद्य प्रसंस्करण विधियाँ स्थानीय रूप से उपलब्ध कच्ची सामग्री के उपयोग में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। यह अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण है कि वर्तमान पारंपरिक खाद्य प्रसंस्करण तकनीकों में उन्नयन अथवा स्वदेशी प्रसंस्कृत खाद्य में सुधार हेतु कोई विशेष प्रयास नहीं किए गए। कदन्न प्रसंस्करण में तीन प्रमुख घटकों अर्थात — बीजाणु, स्टार्च युक्त भ्रूणपोष तथा रक्षात्मक बीज—कोष को आंशिक रूप से अलग तथा/या संशोधित किया जाता है। प्रसंस्करण की पारंपरिक विधियां अभी भी व्यापक रूप से अपनाई जा रही हैं, विशेषकर अर्द्ध—शुष्क उष्णकटिबंध के ऐसे क्षेत्र जहां कदन्नों की खेती प्रमुख रूप से मानव उपभोग के लिए की जाती है। अधिकांश पारंपरिक प्रसंस्करण विधियां श्रम—साध्य, नीरस व हस्तचालित हैं। लगभग सभी पारंपरिक प्रसंस्करण विधियां महिलाओं पर निर्भर है। उनके द्वारा प्रयुक्त विधियां स्थानीय रुचि के अनुसार कुछ हद तक पारंपरिक खाद्य—पदार्थ तैयार करने हेतु विकसित की गई तथा वे केवल उन्हीं उद्देश्यों के लिए पर्याप्त हैं। सामान्य रूप से प्रयुक्त पारंपरिक तकनीकों में छीलना (अधिकतर कूटना, फटकना तथा अलग करना), *माल्टिंग*, किण्वन, भूनना, *फ्लैकिंग* तथा पीसना शामिल है। ये विधियां अत्यधिक श्रम—साध्य हैं तथा खराब गुणवत्ता के उत्पाद प्रदान करती हैं। अगर प्रसंस्करण तकनीकों में सुधार तथा मांग की पूर्ति हेतु उत्तम गुणवत्तायुक्त आटा उपलब्ध कराया जाए तो लघु कदन्नों का व्यापक रूप से उपयोग किया जा सकता है।

सामान्यतः गेहूँ व चावल हेतु प्रयुक्त प्रसंस्करण विधियों की तरह लघु कदन्नों के प्रसंस्करण हेतु औद्योगिकी विधियों का विकास नहीं हुआ है। लघु कदन्नों के औद्योगिकी प्रसंस्करण की अच्छी संभावनाएं हैं। हमारे देश में भुगतान के आधार पर कदन्नों के प्रसंस्करण का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ सकता है।

कदन्न (छोटे दाने वाले अनाज) : ज्वार, बाजरा तथा अन्य लघु कदन्न) अपनी कठोरता, कम निवेश एवं एशिया व अफ्रीका के शुष्क वातावरण में अनुकूलन के लिए जाने जाते हैं। ये देश के शुष्क क्षेत्रों में गरीबों की स्थायी आजीविका हेतु खाद्य एवं चारा, दोनों की आवश्यकता की पूर्ति का मुख्य साधन हैं। ज्वार तथा कदन्न महाराष्ट्र के केंद्रीय तथा पश्चिमी क्षेत्रों, कर्नाटक, तेलंगाना एवं आंध्र प्रदेश के उत्तरी क्षेत्रों के लोगों का मुख्य खाद्य पदार्थ है। यद्यपि कम मांग के चलते, ज्वार व कदन्न किसानों को कम आय तथा देश की अर्थव्यवस्था में कम राजस्व प्रदान करते हैं। उत्पादकता तथा बाजार भाव कम होने के बावजूद किसान गृह—खपत हेतु इनकी खेती करते हैं। इस प्रतिस्पर्धी युग में बने रहने के लिए किसी भी फसल का कटाई उपरांत प्रबंधन महत्वपूर्ण होता है। किसान विशेष रूप से ज्वार व कदन्नों की दो उद्देश्यों, अर्थात गृह खपत एवं अपने पशुओं के खिलाने हेतु खेती करते हैं। अपनी पौष्टिक श्रेष्ठता एवं बारानी कृषि, विशेषकर कदन्न कृषकों के उत्थान की क्षमता के बावजूद कदन्नों की कम खपत को ध्यान में रखते हुए सभी हितधारकों को एक मंच पर लाकर एकीकृत करने का प्रयास किया गया है ताकि कदन्नों के खेती की मांग को बढ़ाया जा सके, जो मूल्य—शृंखला विधि के नाम से प्रसिद्ध है।

कदन्नों के क्षेत्र में उद्यमिता विकास

कदन्न संवर्धन के लिए हितधारकों का उद्यमिता विकास एक प्रमुख क्षेत्र है। कदन्नों के संबंध में किसान सामान्यतः जीवन—निर्वाह खेती में प्रयुक्त पुराने प्रचालन कार्यों का उपयोग करते हैं। इनके व्यवसायीकरण के संबंध में उद्यमियों में पर्याप्त जानाकारी का अभाव है तथा आम लोग इनके पौष्टिक लाभ से अनजान है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के अंतर्गत कार्यरत भाकृअनुप— भारतीय कदन्न अनुसंधान संस्थान कदन्न फसलों के उन्नयन एवं उपयोग पर ही कार्य कर रहा है। यह संस्थान आवश्यकतानुसार नियमित रूप से किसानों, युवाओं, स्वयं सहायता समूह के सदस्यों, भावी उद्यमियों, गृहिणियों तथा अन्य कदन्न हितधारकों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन करता है।

प्रशिक्षण कार्यक्रमों में प्राथमिक खाद्य प्रसंस्करण, द्वितीयक खाद्य प्रसंस्करण, मशीनों की *रिट्रोफिटिंग*, संचालन पर नियंत्रण, व्यंजन निर्माण, *पैकिंग* तथा पोषण लेबलन, विपणन तथा जागरूकता निर्माण, भंडारित अनाज पीड़कों का प्रबंधन आदि शामिल किए जाते हैं।

कदन्नों का मूल्य–संवर्धन

कदन्न न तो खाने को तैयार खाद्य है और न ही पकाने को तैयार अनाज है। मानव जाति के द्वारा इनके उपभोग के लिए कुछ प्रसंस्करणों की आवश्यकता होती है। परिशोधन तथा आकार श्रेणीकरण शामिल पिसाई, खिल्ली निर्माण, *माल्टिंग* तथा किण्वन पारंपरिक रूप से प्रयुक्त सामान्य प्रसंस्करण विधियां हैं। कदन्नों की मांग एवं उपयोग बढ़ाने के लिए वर्तमान समय में *एक्स्ट्रूशन कूकिंग, कोल्ड एक्स्ट्रूशन* (सेवइयां/ *पास्ता/नूडल्स*), *बेकिंग*, पोहा तथा मुरमुरा निर्माण जैसी समकालीन प्रसंस्करण प्रौद्योगिकियों का कदन्नों के लिए उपयोग किया जा सकता है।

अधिकांश पारंपरिक प्रसंस्करण विधियां श्रम–साध्य, नीरस व हस्तचालित हैं। लगभग सभी पारंपरिक प्रसंस्करण विधियां महिलाओं पर निर्भर हैं। उनके द्वारा प्रयुक्त विधियां स्थानीय रुचि के अनुसार कुछ हद तक पारंपरिक खाद्य–पदार्थ तैयार करने हेतु विकसित की गयीं तथा वे केवल उन्हीं उद्देश्यों के लिए पर्याप्त हैं। सामान्य रूप से प्रयुक्त पारंपरिक तकनीकों में छीलना (अधिकतर कूटना, फटकना तथा अलग करना), *माल्टिंग*, किण्वन, भूनना, *फ्लैकिंग* तथा पीसना शामिल है। ये विधियां अत्यधिक श्रम–साध्य हैं तथा खराब गुणवत्ता के उत्पाद प्रदान करती हैं।

कदन्नों हेतु प्रयुक्त मूल्य–संवर्धन प्रौद्योगिकियां

पिसाई (*मिलिंग*) तकनीक के द्वारा कदन्नों से आटा तैयार किया जाता है। पिसाई प्रक्रिया में भूसे तथा बीजाणु को स्टार्चयुक्त भ्रूणपोष से अलग किया जाता है ताकि विभिन्न आकार की छलनियों एवं *हैमर मिल* का उपयोग करके भ्रूणपोष से आटा तथा रवा तैयार किया जा सके। रोटी तथा अन्य उत्पाद बनाकर उत्पाद की गुणवत्ता का मूल्यांकन किया गया। उदाहरण के रूप में *मिलेट सेमोलिना* जिसे स्थानीय रूप में रवा या सूजी कहा जाता है तथा इसे दो भिन्न आकारों अर्थात मोटा 1.18 मि.मी. तथा महीन 0.71 मि.मी. में तैयार किया जा सकता है। दोनों आकार के रवे बाजार में व्यावसायिक रूप में उपलब्ध हैं। रवा प्राप्ति का प्रतिशत मोटे रवा 50–85%, महीन रवा 40–75% तथा शेष 60–70% आटा प्राप्त होता है। यद्यपि रवा *रिकवरी* कदन्नों की किस्मों एवं प्रयुक्त मशीनों पर निर्भर होती है।

कंगनी रवा

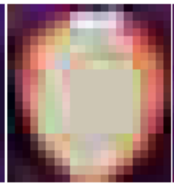
बाजरा रवा

कदन्न आटा

पोहा निर्माण प्रौद्योगिकी : कदन्नों से पोहा बनाने की प्रक्रिया चावल से पोहा बनाने की प्रक्रिया के समान ही है। पोहा निर्माण (*फ्लैकिंग*) मशीनों के द्वारा भूनकर तथा पोहाकरण के माध्यम से आसानी से पोहा तैयार किया जा सकता हैं।

***ठंडे एक्सट्रूशन (कोल्ड एक्सट्रूशन)* प्रौद्योगिकी :** सेवइयां तथा पास्ता जैसे ठंडे *एक्स्ट्रूडेड* उत्पाद सामान्यतः दुरम गेहूँ तथा परिष्कृत गेहूँ के आटे (मैदा) से तैयार किए जाते हैं। इन्हीं मशीनों का उपयोग करके कदन्नों से भी ये उत्पाद तैयार किए जा सकते हैं। विभिन्न सांचों (*डाय*) का उपयोग करके कदन्न सूजी से सेवइयां तथा *पास्ता* तैयार किए जाते हैं। मिश्रित सामग्री को सांचों के माध्यम से बाहर निकाला जाता है तथा उन्हें अपेक्षित नमी रहने तक सुखाया जाता है।

रागी सेंवइयां

बाजरा सेवइयां

कोदो *पास्ता*

कंगनी *पास्ता*

मुरमुरा निर्माण (विस्तारित अनाज) प्रौद्योगिकी : फूला हुआ चावल या मुरमुरा अत्यधिक लोकप्रिय उत्पाद है। परंतु अन्य अनाज के ऐसे उत्पाद बहुत ही कम उपलब्ध हैं। ऐसे उत्पाद उपलब्ध न होने का कारण *एचटीएसटी* उपचार के पूर्व अनाज को पारबाइल तथा समतल (*पर्लिंग*) करने जैसे विस्तृत प्रसंस्करण है। उसी प्रक्रिया को अपनाकर कदन्नों से मुरमुरा निर्माण संभव है।

कोदो मुरमुरा

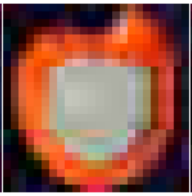
बाजरा मुरमुरा

चेना मुरमुरा

***गर्म एक्सट्रूशन (हॉट एक्सट्रूशन)* प्रौद्योगिकी :** *एक्सट्रूशन कुकिंग* तथा रोलर शुष्कन अत्यधिक लोकप्रिय है तथा मक्का एवं चावल में बहुतायत से प्रयुक्त की जाती है। कदन्नों से भी *एक्सट्रूशन* तकनीकी से पके हुए खाने को तैयार उत्पादों का सफलतापूर्वक निर्माण किया जा सकता हैं। ये उत्पाद संरचना में कुरकुरे होते हैं तथा उन पर पारंपरिक मसाले लगाए जाते हैं। ये उत्पाद खाने को तैयार प्रकृति के हैं तथा विभिन्न बुरी लतों को छुड़ाने एवं पूरक खाद्य के रूप में इनके उपयोग की अत्यधिक संभावनाएं हैं।

एक्सट्रूडेड स्नैक्स

एक्सट्रूडेड पोहा

***बेकिंग* प्रौद्योगिकी :** बिस्कुट खाने को तैयार लोकप्रिय उत्पाद हैं जो परिवार में बच्चों व बूढ़ों, सभी के द्वारा पसंद किए जाते हैं। बैकरी व गृह–उद्योग बिस्कुट तैयार करने के लिए पूर्ण रूप से हस्तचालित पारंपरिक विधियों का उपयोग करते हैं। बिस्कुट निर्माण प्रक्रिया में *क्रिमिंग* (वसा तथा शर्करा पाउडर) तथा कदन्न का आटा मिलाना एवं आटा गूदना, गूदे आटे को फैलाना तथा बिस्कुटाकार में काटना व *ओवेन* में सेकना शामिल है। यह प्रक्रिया बड़े पैमाने पर बिस्कुट बनाने हेतु ज्यादा समय लेने वाली, थकाऊ तथा श्रम–साध्य है। भाकृअनुप–भारतीय कदन्न अनुसंधान संस्थान के द्वारा विकसित आधुनिक प्रौद्योगिकियों का उपयोग करके कदन्नों से *केक, बन, ब्रेड, रस्क, मफिन, ब्रॉउनी* तथा अन्य बैकरी उत्पाद भी तैयार किए गए।

कदन्न नमकीन *कुकीज*

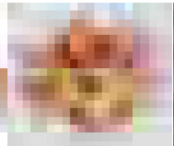
कदन्न मीठे *कुकीज़*

रागी *कुकीज*

त्वरित मिश्रण (*इंस्टेंट मिक्स*) प्रौद्योगिकी : चावल व गेहूँ के स्थान पर कदन्नों से पकाने को तैयार उत्पाद तैयार किए जाते हैं। कदन्नों से तैयार उपमा, पोंगल, खिचड़ी, पायसम, बिसिबेलभात, इडली तथा डोसा त्वरित मिश्रण उपलब्ध हैं।

कदन्न उपमा मिश्रण

कदन्न पोंगल मिश्रण

निष्कर्ष

कदन्नों के मूल्य–वर्धन के प्रभाव विविध रूपों में दिखाई देंगे, सर्वप्रथम इससे उपभोक्ताओं की वर्तमान जीवनशैली में दैनिक आहार के अंतर्गत इनकी मांग एवं उपयोग बढ़ेगा। मधुमेह, हृदय रोग, रक्तचाप तथा कैंसर आदि की रोकथाम में कदन्न अच्छा स्वास्थ्य लाभ प्रदान करता है। उद्यमी कदन्न प्रसंस्करण इकाईयां शुरु करने हेतु सामने आयेंगे, जिससे उन्हें कच्चे माल की आवश्यकता होगी। अंततः प्रसंस्करण एवं उपभोग हेतु कदन्नों की मांग बढ़ने पर इसका सकारात्मक प्रभाव किसानों पर होगा। उपभोक्ताओं को कदन्नों में विकल्प देने हेतु प्रौद्योगिकी हस्तक्षेप सफल हुआ है। इसने जीवन–शैली संबंधी रोगों से जूझ रहे लोगों के समक्ष एक स्वस्थ विकल्प प्रस्तुत किया है तथा किसानों की आय को भी बढ़ाने में सहायता प्रदान की है।

हिन्दी के लोक कवि घाघ और भड्डरी की कृषि सम्बंधी कहावतें आत्मनिर्भर भारत हेतु आज भी प्रासंगिक

पल्लवी यादव[1], ओम प्रकाश[2], ब्रह्म प्रकाश[2] एवं कामिनी सिंह

[1]चंद्र भानु गुप्त कृषि स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बक्शी का तालाब, लखनऊ

[2]भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

भारत कृषि प्रधान देश है। पुरातन काल से ही खेती भारतीयों की मुख्य जीविका रही है। यह अतिशयोक्ति नहीं होगी कि खेती मानव समाज के सुखों की जननी है। आर्य, जो इस देश के आदिम निवासी थे, खेती–किसानी करते थे। पराशर मुनि ने कहा है:

अवस्त्रत्वं निरन्नत्वं कृषितो नैव जायते।
अनातिश्चस्व दुखित्वं दुर्यनो न कदाचन।।

(खेती करने वालों को वस्त्र और अन्न का कष्ट नहीं होता। अतिथि–सेवा में असमर्थता तथा अन्य दुःखों से उनके मन में खेद नहीं पहुँचता)

कृषि की चिंता भारतीय मनीषियों को सदा से रही है। पूर्वकाल में, जब इस देश की भाषा संस्कृत थी, तब कृषि संबंधी ज्ञान श्लोक– बद्ध था। आचार्य वराहमिहिर (लगभग 505 ई) की वृहत्संहिता से ज्ञात होता है कि पूर्वकाल से गर्ग, पराशर, कश्यप और वात्स्य मुनियों को वर्षा के बारे मे प्रचुर जानकारी थी। उदाहरण के तौर पर वृहत्संहिता का एक श्लोक उद्धृत है:

अन्नं जगत प्रायः प्रावृट्कालस्य चान्नयात्तम्।
यस्मादत परीक्ष्यः प्रावृट्कालः प्रयत्नेन।।

(अन्न ही जगत का प्राण है, और यह वर्षा के अधीन है। इस कारण से यत्नपूर्वक वर्षाकाल की परीक्षा करनी चाहिए)। किसान की सबसे बड़ी अभिलाषा होती है कि मानसून में बारिश अच्छी हो ताकि अधिक पैदावार हो और अधिक लाभ मिले जिससे वे आर्थिक रूप से सुदृढ़ बन सकें। पर्जन्यादन्न सम्भवः (समुचित वर्षा होने पर ही अन्न की उपज ठीक से संभव है)।

वाचस्पति कोश में पराशर के तमाम श्लोक संस्कृत में हैं जिसमें कृषि संबंधी नियमों का वर्णन किया गया है। ऐसा माना जाता है कि इस परंपरा की शुरुआत महर्षि नारद और भृगु से आरंभ हुई। महर्षि भृगु द्वारा ज्योतिष शास्त्र की प्रामाणिक ग्रंथ 'भृगु संहिता' लिखी गयी जिसकी सूक्ष्म गणनाएं चमत्कारपूर्ण एवं अचूक हैं। जनश्रुति के अनुसार घाघ और भड्डरी इसी भृगु वंश से आते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वे संस्कृत साहित्य तथा ज्योतिष परंपरा से व्यापक ज्ञान अर्जित किए होंगे और अपने अनुभव, मेधा तथा तीक्ष्ण अग्रदृष्टि से कहावतों को गढ़ा होगा। सामान्यतः कोई व्यक्ति अत्यंत नीति–निपुण, गहरी सूझबूझ वाला या सामाजिक विषयों मे पैठ रखनेवाला हो तो उसे 'घाघ' की संज्ञा दी जाती है। पूरे देश में इनके वंशज पड़िया, जोशी, भड्डरी, डंक, डाकोची आदि उपनाम से देश में पाये जाते हैं।

ऐसा माना जाता है कि इनका जन्म 1753 में एक ब्राह्मण (दुबे) परिवार में हुआ था। घाघ का जन्म स्थान छपरा (बिहार) था। ऐसा भी माना जाता है कि घाघ का जन्म कन्नौज (उत्तर प्रदेश) के पास चौधरी सराय नामक एक गाँव में हुआ था। वहां से वे अपनी ससुराल कन्नौज (उत्तर प्रदेश) चले गए और वहीं बस गये। इसी कारण उत्तर प्रदेश के इतिहासकार उनका जन्म स्थान कन्नौज मानते हैं। भड्डरी इनके समकालीन थे। इनका कार्यकाल सम्राट अकबर के समय था। अन्वेषकों के अनुसार भड्डरी का जन्म काशी के पास मारवाड़ में हुआ था। **'घाघ कहै सुनु भड्डरी'** का प्रयोग कई कहावतों में घाघ द्वारा किया गया है। यह भी संभव है कि घाघ ने अपना अनुभव बताने के लिए ललकारा हो। ज्योतिषीय गणना के साथ–साथ ये ग्रहों की दशा सुधारने तथा शनि शांति आदि के लिए मशहूर हैं। घाघ की कहावतों की वाचिक परंपरा रही हैं। कोई प्रामाणिक काव्य संग्रह उपलब्ध नहीं है। भड्डरी की एक लघु पुस्तिका 'शकुन विचार' उपलब्ध है। वे संस्कृत के ज्ञाता थे और उनकी कई कहावतें 'मेघमाला' नामक संस्कृत ग्रंथ में हैं। घाघ की लिखी कोई भी पुस्तक अभी तक प्राप्त नहीं हुई है। पंडित हरिहर प्रसाद त्रिपाठी द्वारा संपादित पुस्तक घाघ और भड्डरी की कहावतें के अध्ययन से पता चलता है कि कुछ कहावतों में घाघ और भड्डरी अपने–अपने खास ढंग से मिलते–जुलते भाव व्यक्त करते हैं।

"कवि घाघ" का हिन्दी के लोक कवियों में महत्त्वपूर्ण स्थान है। कृषि सम्बन्धी कहावतों के लिए

घाघ बहुत प्रसिद्ध रहे हैं। असल में मुगल काल में हिन्दी देहाती भाषा थी। कृषकों के मध्य कृषि सम्बंधी मुहावरे व कहावतें अत्यंत प्रचलित थीं। हमने श्रृंगार, हास्य, वीर रस, छायावादी आदि कवियों के बारे में तो बहुत सुना है। लेकिन कृषक कवि के बारे में शायद ही सुना हो। ये किसकी रचनाऐं थीं, नहीं मालूम था। विद्वानों ने खोजबीन शुरु की तथा लोगों के मध्य प्रचलित कहावतों को संकलित किया गया।

रामनरेश त्रिपाठी ने इन कहावतों को 'घाघ और भड्डरी' नामक पुस्तक (हिंदुस्तानी एकेडेमी, 1931 ई.) के रुप में संकलित किया। ये अकबर के शासनकाल में थे। घाघ उत्तर भारत में किसानों के बीच कृषि सम्बन्धी कहावतों के लिए काफी प्रसिद्ध थे। इन्होंने सहज भाषा में किसानों को कृषि एवं मौसम संबंधी बढिया तरकीब सुलभ करायी। उन्होंने घोषणा की कि उनकी कहावतों और उसके फलादेश इतने सटीक है कि पडिया जोशी झूठा हो सकता है, पर उनकी कहावतें कदापि नहीं। घाघ जहाँ कृषि, नीति और स्वास्थ्य के लिए विख्यात हैं वही भड्डरी की कहावतें मुख्यतः वर्षा, ज्योतिष और आचार–विचार से संबद्ध है। इनका मौसम ज्ञान तथा शुभाशुभ विचार वैयक्तिक अनुभूति पर आधारित है। रोचक ढंग से पेश ये कहावतें उम्रदराज किसानों के जिह्वाग्र में आज भी व्याप्त हैं। ग्रामीण आज भी इन लोकोक्तियों को दुहराकर अपनी बुद्धिमत्ता और श्रेष्ठता का परिचय देते हैं।

भारत में कृषि, पशु–धन व वर्षा आदि के सम्बन्ध में इनकी कहावतें अत्यधिक प्रचलित हैं। संग्रहकर्ताओं ने इनकी कहावतों को संकलित किया है। इन कहावतों से घाघ के व्यावहारिक ज्ञान की गहराई का पता चलता है। घाघ के कृषि ज्ञान का पूरा–पूरा परिचय उनकी कहावतों से मिलता है। उनका यह ज्ञान चाहे बैल खरीदना हो या खेत जोतना, बीज बोना हो अथवा फसल काटना, खाद की मात्रा, खादों के उपयोग के तरीके, सिंचाई, फसल सुरक्षा, जुताई का समय, जुताई के तरीके, मेंड़ बाँधने, फसलों के बोने का समय, बीज की मात्रा, विभिन्न फसलों की खेती के महत्व एवं ज्योतिष ज्ञान शीर्षकों के अंतर्गत विभाजित किया जा सकता है। हवा की दिशा और वेग के आधार पर मौसम का सटीक पूर्वानुमान में घाघ पारंगत थे। वे प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण में दक्ष थे। मेंढक, गिरगिट, गौरैया, बकरी आदि जीवों की गतिविधि, हवा के रुख और आकाश का रंग देखकर वर्षा का सटीक अनुमान कर लेते थे।

घाघ की कहावतें हमारा पथ प्रदर्शन करती हैं। खादों के संबंध में घाघ के विचार अत्यंत पुष्ट थे। उन्होंने गोबर, कूड़ा, हड्डी, नील, सनई, आदि की खादों को कृषि में प्रयुक्त किए जाने के लिये वैसा ही सराहनीय प्रयास किया जैसा कि 1840 ई. के आसपास जर्मनी के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक लिबिग ने यूरोप में कृत्रिम उर्वरकों के संबंध में किया था। घाघ कृषि पंडित एवं व्यावहारिक पुरुष थे। उनका नाम भारत के, विशेषतः उत्तर भारत के कृषकों के जिह्वाग्र पर रहता है। ये कहावतें मौखिक रूप में भारत भर में आज भी प्रचलित हैं।

जानत रहा घाघ निर्बुद्धि।
आवै काल विनासै बुद्धी।।

(अर्थात–कृषि विज्ञान, ज्योतिष शास्त्र और सामान्य ज्ञान में निपुण होते हुए भी कवि घाघ इतने सरल व्यक्ति थे कि स्वयं को बुद्धिमान नहीं कहते थे और ये मानते थे कि जब मनुष्य का विनाश होना होता है तो बुद्धिहीन हो जाता है, विवेक चला जाता है और वह कुछ न कुछ ऐसी गलतियाँ कर देता है जो उसकी बर्बादी का कारण बन जाती हैं।

रात निर्मली दिन को छाडी,
कहै भड्डरी पानी नाही।

(रात निर्मल हो और दिन में बादल छाया रहे तो भड्डरी का मानना है कि वर्षा नहीं होगी)

इसी तर्ज पर घाघ की लोकोक्ति है

दिन में गर्मी रात में ओस,
कहै घाघ वर्षा सौ कोस।

(यदि दिन में गर्मी और रात में ओस पड़े तो वर्षा की कोई आशा नहीं है)

कहावतों के माध्यम से सदियों पूर्व घाघ ने खादों के बारे मे अत्यंत पुष्ट विचार दिए थे। आज दलहन की खेती पर विशेष जोर दिया जा रहा है। इससे दाल की पर्याप्त आपूर्ति के अलावा खेतों मे नाइट्रोजन की भी वृद्धि होती है। इन कहावतों पर गौर करें:

खाद परे तो खेत, नहीं तो कूड़ा रेत
गोबर, मैला, नीम की खल्ली,
या से खेत दूनी फली
वही किसानों में है पूरा,
जो छोड़े हड्डी का चूरा

(घाघ का मानना है कि अगर खाद छोड़कर गहरी जोत कर दी जाय तो खेती काफी लाभप्रद हो जाती है)

छोड़े खाद जोत गहराई,
फिर खेती का मजा दिखाई।

(जिस किसान के खेत में गोबर नहीं पड़ता है, उसमें कोई भी फसल फायदेमन्द नहीं हो सकती)

जिसके खेत पड़े नहीं गोबर,
सो किसान सबसे दूबर।

(जब खेत में गोबर, मैला और पत्तियां सडती हैं, तब उपज में काफी बढ़ोत्तरी होती है)

गोबर, मैला, पाती सड़े,
फिर खेती में दाना बढे।

(अधिक उपज के लिए बोआई के उपयुक्त समय के बारे में घाघ की अनेक कहावतें हैं।

रोहिणी खाट, मृगशिर छौनी,
आये आद्रा, धान की बौनी।

(किसान को चाहिए कि रोहिणी नक्षत्र में खाट की बिनाई, मृगसिरा में छप्पर की छवाई कर लें। आद्रा नक्षत्र चढ़ने पर धान की बोआई का काम करे)

चित्रा गेहूँ आद्रा धान,
ना लागे गेरुइ न लागे घाम।

(चित्रा में गेहूँ और आद्रा नक्षत्र में धान बोने से गेरुइ (एक प्रकार का फसल रोग) का प्रकोप नहीं होता तथा धान में धूप का भी प्रतिकूल असर नहीं पड़ता है)

आद्रा धान पुनर्वषु पैया।
रुवै किसान जो वुबै चिरैया।

(आद्रा नक्षत्र में धान बोने से अच्छा फल मिलता है। पुनर्वषु में बोने से बिना चावल का धान होता है और पुष्प नक्षत्र में धान बोने से किसान रोता ही रह जाता है)

आद्रा रैड़ पुनर्वषु पाती।
लगै चिरैया दिया न बाती।

(आद्रा नक्षत्र में धान बोने से डंठल कड़े और पुनर्वषु में पत्तियां ही पत्तियां होती हैं तथा पुष्प में बुआई से अंधकार हो जाता है यानी नाममात्र की उपज होती है)

सवा सेर बीघा, सावां जान।
तिल सरसों, अंजुरी परमाण।
कोदो, बरै, सेर बोआओ।
डेढ़ सेर बीघा, तीसी नाओ।

(प्रति बीघा में सवा सेर सावां, तिल्ली और सरसों एक–एक अंजुली, कोदो और कुसुम एक सेर तथा अलसी को डेढ़ सेर तक खेत में डालना चाहिए। इससे दुगुनी उपज की संभावना रहती है)

गेहूँ जौ बोवै पांच पसेर, मटरै बीघा तीस सेर।
बोवे चना पसेरी तीन, तीन सेर बीघा जोन्हरी लीन।

(गेहूँ और जौ हर बीघे में पांच पसेरी, मटर तीस सेर, चना तीन पसेरी तथा मक्का के बीज का तीन सेर बोना चाहिए)

डेढ़ सेर बिगहा बीज कपास,
दो सेर मोथी अरहर मास।
पांच पसेरी बिगहे धान,
तीन पसेरी जरहन जान।

(कपास प्रति बीघे में डेढ़ सेर, मेथी, अरहर, उड़द को दो सेर के हिसाब से बोना लाभप्रद है। हर बीघे में पांच पसेरी धान तथा जड़हन तीन पसेरी बोना उचित है)

दखिनी कुलछनी। पूस माघ सुलछनी।

(खेती के लिए दक्षिणी हवा हानिकारक होती है, परंतु अगर पूस माघ के महीने में चले तो लाभकारी होती है)

पछुवा बादर। झूठा आदर

(पश्चिम से उठने वाले बादल पर भरोसा नहीं करना चाहिए। झूठे मनुष्य का आदर करना वृथा है)

हवा बहै ईसाना। खेती ऊंची करो किसाना।

(अगर पूर्व और उत्तर दिशा से हवा बहने लगे तो अच्छी बारिश होगी)

भादो जै दिन पछुवा प्यारी,
तै दिन माघै पडती ठारी।

भादों के महीने में जितने दिन तक पछुवा हवा बहती है, माघ में उतने ही दिन पाला पड़ता है। बिहार में आज भी पान और तंबाकू की खेती करने वाले किसान इसके अनुसार पाला से फसल को बचाने के लिए उचित सावधानी बरतते हैं।

उत्तर चमके बिजली, पूरव बहै जु बाव।
घाघ कहे सुन रागिनी, बरधा भीतर लाव।

(यदि उत्तर दिशा में बिजली चमकती हो और पूरवा हवा बह रही हो तो घाघ अपनी पत्नी को कहते हैं कि बैलों को अंदर बाँध लो क्योंकि वर्षा शीघ्र आनेवाली है)

अगहन द्वादश मेघ अकास,

असाढ़ बरसै अखनावास।

(यदि अगहन की द्वादशी को आकाश में बादलों के समूह घूम रहें हों तो आषाढ़ में मूसलाधार बारिश होगी)

रोहिनी बरसै मृग तपै, कुछ कुछ अदरा जाय
कहै घाघ सुन घाघनी, स्वान भात नहीं खाय।।

(अर्थात–रोहिनी नक्षत्र में अच्छी बारिश हो और मृगशिरा में गर्मी पड़े तथा अदरा नक्षत्र में वर्षा हो तो धान की पैदावार इतनी अच्छी होती है कि कुत्ते भी भात खा खाकर ऊब जाते हैं)

आधा खेत बटैया देके, ऊँची दीह किआरी।
जो तोर लइका भूखे मरिहें, घघवे दीह गारी।।

(अर्थात– यदि किसान के पास खेत अधिक है तो आधा खेत बटाई पर दे देना चाहिए आधे खेत में ऊँची मेंड़ बांधकर खेती करनी चाहिए यदि इतना करने पर भी अनाज अधिक पैदा नहीं हो तो मुझे गाली देना)

आद्रा में जो बोवै साठी,
दुखै मरी किनारे लाठी।

(अर्थात– जो किसान आद्रा नक्षत्र में साठी (धान का एक प्रकार) बोता है वह दुःख को लाठी से मारकर भगा देता है।

घाघ का अभिमत था कि कृषि सबसे उत्तम व्यवसाय है जिसमें किसान भूमि को स्वयं जोतता है....

उत्तम खेती मध्यम बान,
निकृष्ट चाकरी भीख निदान।
खेती करै बनिज को धावै,
ऐसा डूबै थाह न पावै।।
उत्तम खेती जो हर गहा,
मध्यम खेती जो सँग रहा।।
जो हल जोतै खेती वाकी और
नहीं तो जाकी ताकी।
सावन मास बसे पुरवईया,
बछवा बेंच लहू धेनु गईया।

(अर्थात–यदि सावन के महीने में पुरवैया हवा बहने लगे तो यह समझ लेना चाहिए कि अकाल पड़ने वाला है)

घाघ ने अपनी लोकोक्तियों में सिर्फ खेती–किसानी के लिए व्यवहारिक नुस्खे ही नहीं दिये हैं बल्कि कतिपय कहावतों में सादगीपूर्ण और स्वस्थ जीवन–शैली की सीख भी दी है:

भुइयां खेडे, हर ह्वै चार।
घर होय गिहथिन, गऊ दुधार।
अरहर की दाल, जड़हने क भात।
पाकल नीम्बू, औ घी तात।
दही खाड़ जौ, घर में होय।
तिरछे नैन, परोसे जोय।
घाघ कहै, सबही है झूठा,
उहां छाड़ि इहवै बैकुणठा।

(यदि खेत घर के पास हो, चार हल की खेती हो, गृह कार्य में दक्ष पत्नी हो, दुधारू गाय हो, खाने के लिए अरहर की दाल हो, जड़हन चावल का भात हो, रसदार नींबू और घी, घर में ही दुग्ध उत्पाद, शक्कर और दही हो, प्रेमपूर्वक स्त्री परोसे तो घाघ कहते हैं कि बाकी सब इसके आगे झूठ है और स्वर्ग कहीं और नहीं, यहीं है)

सारांशतः ग्रामीण परिवेश में, रोजमर्रा की खेती एवं सामाजिक समस्याओं के सम्यक् निदान हेतु व्यवहारिक सोच के लिए घाघ और भड्डरी की कहावतों में समाविष्ट हैं। आज सस्य विज्ञान, पादप प्रजनन, पर्यावरण एवं ज्योतिष शास्त्र के परिपेक्ष्य में इन कहावतों के गहन अध्ययन और तत्वान्वेषन की आवश्यकता है। जहां पुरानी पीढ़ी इन कहावतों पर भरोसा करतीं हैं, वही नयी पीढ़ी में इस अमूल्य धरोहर के प्रति उदासीनता परिलक्षित होती है। इन कहावतों को सहेजना और उनका निरपेक्ष मूल्यांकन परमावश्यक है ताकि नयी पीढ़ी द्वारा प्राचीन भारत की कृषि व्यवस्था, सामाजिक एवं आर्थिक पक्ष तथा जीवन दर्शन को वर्तमान ग्राम्य परिपेक्ष्य में समझा जा सके और सीख ली जा सके। बिहार और उत्तर प्रदेश के अलावा दक्षिण भारत, कश्मीर, पंजाब, गुजरात, ओडिशा, बंगाल, असम एवं अन्य प्रांतों में भी इनकी कहावतें भिन्न–भिन्न भाषाओं और बोलियों में मिलती हैं। विशेषज्ञों का मानना है कि उनकी कहावतों का पूरे देश में प्रचार–प्रसार देशाटन करते उन्हीं के माध्यम से या उनके वंशजों द्वारा सतत परिमार्जन कर पारंपरिक रूप से किया गया।

दलहन एवं तिलहन के उत्पादन द्वारा आत्मनिर्भर कृषि और आत्मनिर्भर किसान

एस.के. गोयल, जय पी. राय एवं श्रीराम सिंह
कृषि विज्ञान केन्द्र, कृषि विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, बरकछा, मिर्जापुर, उत्तर प्रदेश

आने वाले वर्षों में दलहन व तिलहन के उत्पादन में भारत के आत्मनिर्भर हो जाने की आशा है, क्योंकि सरकार ने इनका उत्पादन बढ़ाने के लिए अच्छी गुणवत्ता के बीज उपलब्ध कराने हेतु *"सीड हब परियोजनाएं"* शुरु की हैं और तकनीक के उपयोग को लेकर कदम उठाए हैं। उल्लेखनीय है कि देश में अभी 50 लाख टन दाल और 1.45 करोड़ टन वनस्पति तेल खाद्य–अखाद्य हर साल आयात किया जाता है ताकि घरेलू माँग को पूरा किया जा सके। सरकार न केवल इनके उत्पादन को बढ़ाने के लिए कदम उठा रही है बल्कि कृषि को आय–केंद्रित बनाने के लिए भी प्रयासरत है जो उसके 2022 तक किसानों की आय को दोगुना करने के लक्ष्य से परिलक्षित होता है। देश के कृषि वैज्ञानिक इस लक्ष्य को पाने की दिशा में निरन्तर काम कर रहे हैं व कृषि क्षेत्र में कौशल विकास किए जाने पर जोर भी दे रहे हैं। दलहन व तिलहन फसलों की खेती को प्रोत्साहित करने के लिए इन फसलों पर न्यूनतम समर्थन मूल्यों के ऊपर बोनस भी दिया जा रहा है। आंकड़ों के अनुसार दलहनी व तिलहनी फसलों की मांग तथा उत्पादन में अंतर बढ़ता चला जा रहा है इसलिये इनके न्यूनतम समर्थन मूल्यों में वृद्धि की गयी है, ताकि किसान अधिक क्षेत्र में इनकी खेती के लिये प्रोत्साहित हों। अब समय आ गया है कि हम इन फसलों के उपयुक्त क्षेत्र का निर्धारण कर किसानों को इस फसलों की उत्पादकता बढ़ाने के लिये योजना बनाएं और उनका कार्यान्वयन ईमानदारीपूर्वक कर किसानों को प्रोत्साहित करें। तभी दलहन व तिलहन फसलों के उत्पादन में आत्मनिर्भरता की सोच सकते हैं। आत्मनिर्भर भारत की एक बड़ी प्राथमिकता देश की कृषि और किसानों को स्वावलंबी बनाना है। सरकार इस दिशा में कृषि क्षेत्र में सुधारों को आगे बढ़ाने के साथ–साथ इस काम के लिए जरूरी ढांचागत सुविधाओं का विकास प्राथमिकता के आधार पर कर रही है। आत्मनिर्भर भारत की एक अहम प्राथमिकता है – आत्मनिर्भर कृषि और आत्मनिर्भर किसान। इस दिशा में कदम उठाए गए हैं और किसानों को आधुनिक ढांचागत सुविधा देने के लिए एक लाख करोड़ रुपये का कृषि बुनियादी ढांचा कोष बनाया गया है। उल्लेखनीय है कि कृषि अवसंरचना कोष के तहत एक लाख करोड़ रुपये की वित्तपोषण सुविधा की शुरुआत हुई है। यह कोष कृषि–उद्यमियों, *स्टार्टअप्स,* कृषि क्षेत्र की प्रौद्योगिकी कंपनियों और कटाई बाद फसल प्रबंधन में किसान समूहों की मदद के लिए बनाया गया है। कृषि क्षेत्र में सुधारों के साथ किसानों के लिए उनके उत्पाद बेचने के मामले में सीमित दायरे को समाप्त किया गया है। अब किसान दुनिया के किसी भी हिस्से में अपना सामान बेच सकते हैं। किसान उत्पादक संघों (*एफपीओ*) को बढ़ावा दिया जा रहा है। सरकार ने कृषि सुधार से जुड़े दो अध्यादेश को जारी किया है। जहां कृषक उपज व्यापार और वाणिज्य (संवर्धन एवं सुविधा) अध्यादेश 2020 का लक्ष्य किसानों को राज्य के भीतर और अन्य राज्यों में कृषि उपज को बेचने की छूट देना है। वहीं, मूल्य आश्वासन और कृषि सेवाओं पर किसान (सशक्तिकरण और सुरक्षा) समझौता अध्यादेश –2020 किसानों को प्रसंस्करण इकाईयों, थोक व्यापारियों, बड़ी खुदरा कंपनियों और निर्यातकों के साथ पहले तय कीमतों पर समझौते की छूट देता है। किसानों ने अपने प्रयासों से देश को आत्मनिर्भर बनाया है।

गन्ना उत्पादन की वैज्ञानिक तकनीक

एस.आर. शर्मा, पी.के. गुप्ता एवं के.वी. सहारे
कृषि विज्ञान केन्द्र, नरसिंहपुर, मध्य प्रदेश

गन्ना एक महत्वपूर्ण नकदी फसल है। अधिकांश विद्वानों के मतानुसार भारत में गन्ने की खेती प्राचीन काल से की जा रही है। यह फसल देश के पहाड़ी क्षेत्रों को छोड़कर सभी प्रदेशों में ली जाती है। विपरीत वातावरण में भी गन्ने का उत्पादन होता है। विश्व में क्षेत्रफल एवं उत्पादन की दृष्टि से भारत का दूसरा स्थान है। भारत में 46.08 लाख हे. क्षेत्र में खेती की जाती है। जिसमें कुल उत्पादन 28960 टन एवं उत्पादकता प्रति हे. 62.8 टन प्राप्त होती है। जबकि ब्राजील में 58.4 लाख हे. क्षेत्रफल एवं उत्पादकता 72.3 टन/हे. तथा 3862 लाख टन उत्पादन होता है। प्रति हेक्टेयर उत्पादकता में भारत का 12वाँ स्थान है। नरसिंहपुर जिले में गन्ने का कुल क्षेत्रफल 65 हजार हे. है जबकि औसत उत्पादकता राष्ट्रीय स्तर से कम है। अतः निम्न अनुसार उन्नत तकनीक अपनाकर किसान दोगुना से ज्यादा प्रति हेक्टेयर उत्पादकता प्राप्त कर सकते हैं :

गन्ने के प्रमुख रोग

गन्ने में 240 बीमारियों का आपतन होता है जो फफूँद, जीवाणु, विषाणु व फाइटोप्लाज्मा द्वारा उत्पन्न होते है। प्रमुख रोगों की पहचान व नियंत्रण निम्नवत है :

लाल सड़न: यह फफूँदजनित रोगों में प्रमुख रोग है जिसे गन्ने का कैंसर भी कहते हैं। यह जुलाई माह से ऊपर की तीसरी–चौथी पत्तियों से होकर पूरे गन्ने को नष्ट कर देता है। इसमें पत्तियाँ ऊपर से किनारे को लेकर सूखती हैं। गाँठों पर काले–काले फफूँद के जीवाणु पाये जाते हैं। गन्ने को लम्बवत् फाड़ने पर अन्दर का गुदा लाल रंग का दिखाई देता है जिस पर सफेद धब्बे होते हैं। रोगी गन्ना तोड़ने पर कट की आवाज करके टूट जाता है। ऊपरी तनों पर लम्बवत सिकुड़न आ जाती है। रोग की अवस्था में गन्ना अन्दर से खोखला हो जाता है। कभी–कभी पत्तियों के मध्य शिरा पर लाल धब्बे दिखाई देते हैं। यह रोग *कोलेटोट्राइकम फाल्केटम* फफूँद से पैदा होता है। चीनी ग्लुकोज व फ्रक्टोज में बदल जाती है जिससे चीनी मिल में पेरने पर शीरा बनकर निकल जाता है। यह रोग उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा व महाराष्ट्र में प्रमुखता से होता है।

उकठा रोग: इस रोग का लक्षण सामान्यतः वर्षा समाप्त होने पर शुरू होता है। इसमें पौधे की बढ़वार रूक जाती है, पौधों की पत्तियाँ पीली होकर सूखने लगती हैं। रोगी गन्ना को लम्बवत चीरने के उपरान्त अन्दर का गूदा ईंट के रंग का दिखाई देता है। गन्ना अन्दर से खोखला हो जाता है। रोगी गन्ना को तोड़ने पर टूटता नहीं है बल्कि पिचक जाता है। इसकी *फ्यूजेरियम मोनीलीफार्म (सिफेलोस्पोरियम सैकराई)* नामक फफूँद इस रोग का कारक हैं। कभी–कभी लाल सड़न व उकटा रोग एक ही खेत में दिखाई देता है। ऐसी स्थिति में उस खेत का पूरा गन्ना नष्ट हो जाता है। इस रोग का आपतन उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, पंजाब, हरियाणा व आंशिक रूप से मध्य प्रदेश में भी पाया जाता है।

कंडुआ रोग: यह रोग गन्ना उत्पादन करने वाले सभी प्रदेशों में *अस्टिलगो सिटेमिनी* नामक फफूँद से होता है। मध्य प्रदेश की अधिकांश प्रजातियों में रोग आंशिक रूप से पाया जाता है। रोग का आपतन गन्ना जमाव से ही देखा जा सकता है। इससे ग्रसित गन्ने की पत्तियां छोटी, नुकीली व छड़ी की तरह सीधी दिखाई देती हैं। गन्ना पतला हो जाता है। गन्ने के मध्य शिरा से चाबुक आकार की लम्बी टेढ़ी काली इंडी निकलती है, जो गन्ने के साथ ही बढ़ती रहती है तथा सफेद पतली झिल्ली से ढंकी होती है। हवा के तेज झोंकें से झिल्ली फट जाने पर करोड़ों काले कंडुआ बीजाणु उड़कर पास के गन्ने या मीलों दूर गन्ने के खेतों में लगे गन्ने की पत्तियों पर पड़ते हैं। यही काले बीजाणु गन्ने के *लीफ शीथ* में होते हुए आंखो के पर्याप्त नमी की उपस्थिति में द्वितीयक संक्रमण उत्पन्न करते हैं।

गन्ने के प्रमुख कीट

चोटी बेधक: इस कीट का प्रकोप मार्च से सितम्बर तक होता है। इस कीट की 5–6 पीढ़ी होती है। इल्ली गन्ने के ऊपरी भाग की पोई को लपेट कर अन्दर घुस जाती है। पत्तों में गोल–गोल असंख्य छेद बनाती है और तने के ऊपरी भाग से प्रवेश कर नीचे की ओर सुरंग बनाकर खाती है। गन्ने का ऊपरी भाग नष्ट होने के कारण गन्ने की आँखों का जमाव कम हो जाता है। गन्ने का ऊपरी

शिरा झाड़ीनुमा हो जाता है जिससे *बन्ची टाप* जैसा दिखता है। कीट गन्ने की पत्तियों के निचले भाग (*बैकसाइड*) में अन्डे देकर भूरी झिल्ली को ढक देता है। ग्रसित पत्तियों को तोड़कर अंडे सहित जला दें। जून के अंतिम सप्ताह में 3% का कार्बोफ्यूरान 30–33 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से नमी की उपस्थिति में खेत में डालें।

तना बेधक: यह कीट गन्ने के तनों में छेद कर प्रवेश होने के उपरान्त अन्दर का गूदा खाता है। जिसका प्रभाव उपज व चीनी परत पर पड़ता है। यह कीड़ा जितना अन्दर का गूदा खाता है बिष्टा छोड़ता रहता है। गन्ने के तनों पर छिद्र दिखाई देता है। गन्ने में लगी सूखी पत्तियों को निकालकर जला देना चाहिए। जुलाई से अक्टूबर तक 15 दिन के अन्तराल पर 50,000–1,00,000 अंडे/हे. (ट्राईकोकार्ड) लगाएं, गन्ने में 15 कि.ग्रा. प्रति हे. फोरेट 10 जी का प्रयोग नमी की अवस्था में करके कीट नियंत्रित कर सकते हैं।

गन्ने का फुदका (पायरिला) कीट: इस कीट का वयस्क हल्के भूरे रंग का लम्बी चोंच वाला 10–12 मि.मी. लम्बा होता है। इसका शिशु अंग्रेजी के *एक्स* आकार का होता है। वयस्क व शिशु दोनों गन्ने की पत्तियों का रस चूसते हैं। मादा पत्तियों की निचली सतह पर अंडे झुण्ड में देकर हल्के भूरे रंग की झिल्ली से ढक देती है। पत्तियों का रस चूसते समय शिशु व वयस्क पत्तियों पर एक लसीला पदार्थ छोड़ते हैं जिससे पत्तियों पर काली फफूँद उग आती है। परिणामस्वरूप प्रकाश संश्लेषण की क्रिया प्रभावित होती है। निष्पादन के लिए अंडे समूह वाली पत्तियों को एकत्र करके नष्ट करें। पत्तियों पर सफेद कीट दिखता है जो नमी की उपलब्धता पर फैलता रहता है। यह एक परजीवी कीट है जो शिशु व वयस्क को खाता है जबकि *ट्रेट्रास्टीकस पाइरीली* परजीवी पाइरिला के अंड समूह को नष्ट करता है। अतः खेत में परजीवी हों तो किसी भी कीटनाशक का प्रयोग न करें, साथ ही फसल में सिंचाई करके नमी बनाएं। यदि परजीवी खेत में न हों तो क्वीनालफास 1500 मि.ली. या थाओमेंथाक्जाम 250 ग्राम प्रति हेक्टेयर 600 लीटर पानी के साथ छिड़काव करें।

सफेद मक्खी: यह कीट गन्ने की पत्तियों से रस चूसता है जिससे पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं। रस चूसते समय कीट चिपचिपा मधुस्राव छोड़ता है जिससे पत्तियों पर काली फफूँद (*शूटी मोल्ड*) लग जाती है इससे प्रकाश संश्लेषण प्रभावित होता है। पानी निकासी की सुविधा न होने वाले खेतों में कीट का आपतन ज्यादा पाया जाता है। कीट पत्तियों के पिछले भाग में सफेद तत्व छोड़ता है जो रगड़ने पर काला हो जाता है। कीट नियंत्रण हेतु *थाओमेथाक्जाम* 250 ग्राम प्रति हे. या फोरेट 10 जी 15 किलोग्राम प्रति हे. प्रयोग करें। इमिडाक्लोप्रीड 300–500 मि.ली. प्रति हे. 1000 लीटर पानी के साथ छिड़काव करें।

शल्क कीट: यह कीट गन्ने के तनों से रस चूसता है। इसके शिशु हल्के पीले रंग के होते हैं जो गन्ने के तनों से चिपके रहते हैं। वयस्क पहले राख की तरह भूरा होता है। जो बाद में काला हो जाता है। वयस्क पंखहीन होता है। मछली की शल्क की तरह पौरियों पर चिपके रहते हैं। गन्ना कटाई उपरान्त सूखी पत्तियों को नष्ट कर दें या गोबर की खाद में दबा दें। अत्याधिक ग्रसित फसल को शीघ्रता से चीनी मिल में भिजवा दें। मैलाथियान के एक प्रतिशत घोल में कपड़ा भिगोकर बुआई हेतु प्रयोग किये जाने वाले गन्ने की सफाई अवश्य करें। इसके प्रकोप से चीनी परता एवं उत्पादन दोनों प्रभावित होता है।

गन्ने की कटाई : गन्ने में *ब्रिक्स* की मात्रा 19–20 हो तो गन्ने की कटाई शुरू करना चाहिए। गन्ने की कटाई जमीन से एक इंच नीचे से करना चाहिए। क्योंकि ऐसे गन्ने का फुटाव एक समान होता है। कटने के बाद 25 किलोग्राम यूरिया कटे भाग पर कतार से डालें तथा एक सप्ताह के अन्दर देशी हल या ट्रैक्टर चालित यंत्र से गन्ने की पुरानी जड़ों को तोड़ें। नींदा नियन्त्रण हेतु गन्ने की दो पंक्तियों के बीच की खाली जगह में सूखी पत्तियां बिछाकर उस पर 5 किलो ग्राम *ट्राइकोडर्मा* 100 कि.ग्रा सड़े गोबर में मिलाकर नमी की उपस्थिति में पत्तियों पर छिड़काव करें। कटाई उपरान्त तत्काल गन्ने की पिराई स्वयं करें या चीनी मिल को *सप्लाई* करें जिससे वजन व चीनी परता में कमी नहीं हो पायेगी।

उपज: यहां दी गयी उन्नत तकनीकी से खेती करने पर किसानों को प्रति हे. 1200 से 1500 क्विंटल गन्ना प्राप्त होगा। यहां यह भी अवगत कराना है कि अभी गन्ने की औसत पैदावार 500 – 600 क्विंटल प्रति हे. ही है। साथ ही अन्तरवर्तीय फसलों के रूप में 100–150 क्विंटल/हे. आलू व प्याज भी प्राप्त होता है या 5–6 क्विंटल धनिया अतिरिक्त मिलता है।

गन्ना आधारित फसल चक्र में कृषि आय बढ़ाने हेतु कालमेघ की वैज्ञानिक खेती

संजय कुमार यादव[1], सुधीर कुमार शुक्ल[1], अनिल कुमार सिंह[2], वी.पी. जायसवाल[1], अरुण बैठा[1] एवं अश्विनी दत्त पाठक[1]

[1]भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

[2]वै.औ.अ.प.–केन्द्रीय औषधीय एवं सगंध पौधा संस्थान, लखनऊ

गन्ने की खेती उत्तर भारत में बहुतायत क्षेत्रफल में की जाती है जिसके फसल चक्र के खरीफ मौसम में मुख्य तौर पर धान की फसल उगाई जाती है। परन्तु यदि कालमेघ की फसल लगाई जाती है तो कम लागत में अधिक मुनाफा होता है। साथ ही साथ धान की तुलना में कालमेघ की खेती करने से सिंचाई जल की खपत कम होती है जिसके फलस्वरूप धान में अधिक जल दोहन से घटते जलस्तर को भी कालमेघ की खेती करके सुधारा जा सकता है। अतः कालमेघ की खेती किसानों की आय बढ़ाने में अधिक सहायक सिद्ध हो सकती है।

कालमेघ का वानस्पतिक नाम *एन्ड्रोग्रेफिस पैनीकुलेटा* है जिसको चिराईता के नाम से भी जाना जाता है। इसको संस्कृत में भूमि नीम कहा जाता है क्योंकि स्वाद में यह बहुत ही कड़वा होता है। इसके सम्पूर्ण शाकीय भाग का प्रयोग शरीर के विभिन्न रोगों के उपचार में किया जाता है। औषधीय गुणों से भरपूर होने के कारण इसकी मांग दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। अच्छी किस्मों का विकास होने के कारण इसकी खेती व्यावसायिक तौर पर करके अन्य फसलों की तुलना में कम लागत से अधिक से अधिक लाभ कमाया जा सकता है।

उपयोग

कालमेघ के शाकीय भाग का प्रयोग यकृत से संबन्धित विकार, मधुमेह, तेज ज्वर और पेट के रोग (पेचिश) के उपचार में बहुतायत से प्रयोग किया जाता है। यह पित्तवर्धी,कफोत्तासकारक और रक्तशोधक के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। जीवाणुरोधी होने के साथ–साथ कालमेघ में प्रति विषाणुकारक (*एंटीवायरल*) का भी गुण होता है अतः विषाणुओं से होने वाले रोगों से भी बचाव हेतु शरीर की प्रतिरोधात्मक क्षमता में कालमेघ वृद्धि करता है।

जलवायु

कालमेघ की खेती के लिए आमतौर पर गर्म तथा नम जलवायु उपयुक्त मानी जाती है। जिन क्षेत्रों में सामान्य से कम वर्षा होती है, उनमें इसकी खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है। जल निकास की समुचित व्यवस्था होने पर इसकी खेती अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में भी आसानी से की सकती है।

भूमि

जल निकास वाली मध्यम उर्वरता वाली दोमट मिट्टी में आसानी से सामान्य पैदावार प्राप्त होती है। कालमेघ को अनुपयोगी छायादार प्रकार की भूमि में भी सफलतापूर्वक लगाया जा सकता है। बलुई दोमट मृदा में भी इसकी खेती आसानी से की जा सकती है। जल भराव वाली भूमि कालमेघ की खेती के लिए उचित नहीं होती है।

उन्नतशील किस्मः *सिम–मेघा*

प्रवर्धन

मुख्य तौर पर कालमेघ की खेती बीज द्वारा नर्सरी में पौध उगाकर की जाती है। नर्सरी मई के महीने में उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों में डालनी चाहिए। मृदा की उर्वराशक्ति तथा समुचित प्रबंधन द्वारा नर्सरी में बीज से पौध लगभग 30 से 40 दिन में रोपाई के योग्य हो जाती है।

नर्सरी तैयार करना

कालमेघ की एक हेक्टेयर खेत की रोपाई के लिए 500 ग्राम बीज की आवश्यकता होती है। नर्सरी के लिए उचित जल निकास वाला खेत जिसमें कार्बनिक खाद की मात्रा अधिक हो, उपयुक्त रहता है। नर्सरी वाले खेत आमतौर पर 15 सें.मी.ऊँचा रखते हैं। आवश्यकतानुसार नर्सरी की चौड़ाई 1 से 1.5 मीटर रखते हैं जिससे खरपतवारों को आसानी से निकाला जा सके। जबकि लंबाई कम या अधिक रख सकते हैं। नर्सरी में बीज डालने के तुरंत बाद *नर्सरी बेड* को सीधी धूप से बचाने

हेतु ऊपर से इसको किसी *ग्रीन शेड* या तिरपाल से ढक देना चाहिए। नर्सरी में बीज को चींटियों से बचाने हेतु चारों तरफ से पतली नाली बनाकर उसमें पानी भर देना चाहिए या किसी कीटनाशी धूल की चारों तरफ से पतली लाइन बना देना चाहिए जिससे कि चींटियां नर्सरी में प्रवेश न कर सकें। आमतौर पर लगभग 30–40 दिन में नर्सरी से पौध रोपाई के लिए तैयार हो जाती है।

खेत की तैयारी तथा पौध रोपण

गर्मी के मौसम में तथा गहरी जुताई करने के बाद कुछ दिनों तक खेत को खुला छोड़ देना चाहिए जिससे खेत में खरपतवार तथा कीड़े धूप से नष्ट हो जाएं। वर्षा होने पर दो–तीन बार *डिस्क हैरो* या *कल्टीवेटर* द्वारा खेत की जुताई करने के बाद खेत को समतल करके समुचित जल प्रबंधन तथा जल निकास की नाली बना लेना चाहिए। उचित आकार की खेत की क्यारी की लंबाई व चौड़ाई को ढाल के अनुसार अच्छी तरह से बना लेना चाहिए। ध्यान रहे कि मिट्टी पूर्णरूप से भुरभुरी और मुलायम हो जाए। जब मिट्टी अच्छी तरह से तैयार हो जाए तो उसमें पौधों की रोपाई हेतु पंक्ति से पंक्ति की दूरी 40–45 सेंटी मीटर तथा पौधे से पौधे की दूरी 20 सेंटी मीटर रखनी चाहिए।

खाद व उर्वरक

यदि कार्बनिक खाद आसानी से उपलब्ध हो तो गोबर की सड़ी खाद 15–20 टन या 5 टन *वर्मीकम्पोस्ट* प्रति हे. क्षेत्रफल के हिसाब से देना पर्याप्त होता है। कार्बनिक खाद को पौध रोपाई के 15 दिन पहले खेत में डालकर अच्छी तरह से मिला लेना चाहिए। कालमेघ को धान की फसल की तुलना में बहुत ही कम पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। मुख्य रूप से कालमेघ के पौधों की अच्छी पैदावार के लिए नाइट्रोजन की 80 कि.ग्रा., फास्फोरस की 40 कि.ग्रा. तथा पोटाश की 40 कि.ग्रा. मात्रा की प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता होती है। पौध रोपाई के समय फास्फोरस और पोटाश की पूरी मात्रा खेत मे देनी चाहिए। नत्रजन की पूरी मात्रा को तीन बराबर भागों में विभाजित करके रोपाई के 20 से 25 दिन के अंतराल पर देना चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण

रोपाई द्वारा तैयार फसल में खरपतवार बहुत कम निकलते हैं। फिर भी रोपाई के लगभग एक महीने बाद या आवश्यकतानुसार खेत में एक या दो निकाई–गुड़ाई करना चाहिए।

सिंचाई तथा जल निकास

रोपाई के तुरंत बाद वर्षा न होने की स्थिति में हल्की सिंचाई करना चाहिए। यदि वर्षा नहीं होती है तो आवश्यकतानुसार 2–3 हल्की सिंचाई करनी चाहिए। आमतौर पर उन क्षेत्रों में जहां हल्की बारिश होती है, सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है। सिंचाई से महत्वपूर्ण वर्षा वाले क्षेत्रों में जल निकास की समुचित आवश्यकता होती है। किसी भी दशा में खेत में लगातार जल भराव की स्थिति उत्पन्न नहीं होना चाहिए अन्यथा फसल पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

कटाई एवं भंडारण

पौधों के शाकीय भाग की कटाई लगभग रोपाई के तीन महीने बाद करना उचित रहता है। ध्यान रहे कि पौधे की ऊपरी शाकीय भाग की कटाई करनी चाहिए। उचित प्रबंधन से दूसरी कटाई भी की जा सकती है। कटाई के बाद पत्तियों को थोड़ा खुले छायादार स्थान पर सुखाना चाहिए। ध्यान रहे कि किसी भी दशा में शाकीय भाग का ढेर नहीं लगना चाहिए, नहीं तो कालमेघ की गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

रोग और कीट का प्रबंधन

आमतौर पर कालमेघ में रोग व कीट का प्रकोप बहुत ही कम होता है। परंतु कभी रोग दिखाई पड़े तो विषय वस्तु विशेषज्ञ से संपर्क करके उनकी रोकथाम करना परम आवश्यक हो जाता है। ध्यान इस बात का रहे कि कटाई के ठीक 15 दिन पहले किसी भी प्रकार के रसायन का प्रयोग कदापि नहीं करना चाहिए।

पैदावार

कालमेघ की पहली कटाई में लगभग 4–5 टन सूखी शाक की प्राप्ति होती है जबकि दूसरी कटाई में लगभग 4 टन प्रति हे. सूखी शाक की प्राप्ति होती है। सामान्य तौर पर प्रति हे. क्षेत्रफल से कालमेघ के सूखी शाकीय भाग से लगभग 8 टन पैदावार होती है।

आय–व्यय

कालमेघ की खेती में लगभग ₹ 35,000 प्रति हे. लागत पड़ती है जबकि आय लगभग ₹ 1,25,000 प्रति हे. प्राप्त होती है। अतः कालमेघ की खेती से आमतौर पर लगभग एक हेक्टेयर में ₹ 35,000 की लागत से शुद्ध लाभ लगभग ₹ 90,000 रुपये प्राप्त होता है।

आत्मनिर्भर भारत के अभ्युदय में उन्नत गन्ना किस्मों एवं नवीन उत्पादन प्रौद्योगिकी कार्यक्रमों का समग्र प्रभाव

गया करन सिंह एवं आदिल जुबैर
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

गन्ना भारत की महत्वपूर्ण वाणिज्यिक फसलों में से एक है और इसका नकदी फसल के रूप में एक प्रमुख स्थान है। भारत में चीनी का मुख्य स्रोत गन्ना है। वर्तमान में लगभग 50 लाख हे॰ क्षेत्र पर गन्ने की खेती की जाती है उन्नत गन्ना क़िस्मों तथा नवीन उत्पादन तकनीकों को व्यापक रूप से अपनाने के कारण गन्ना एवं चीनी उपज में आशातीत वृद्धि हुई है। भारत में गन्ना फसल उत्पादन एवं प्रसंस्करण से बड़ी संख्या में कुशल एवं अर्धकुशल कामगार जुड़े हुए हैं। अखिल भारतीय समन्वित गन्ना अनुसंधान परियोजना के अंतर्गत विकसित की गई पिछले एक दशक की उन्नत गन्ना क़िस्मों एवं तत्संबंधी उत्पादन प्रौद्योगिकी का गन्ना एवं चीनी उपज, शर्करा परता एवं गन्ना उत्पादकों के आर्थिक विकास में योगदान का उल्लेख इस लेख में किया गया है।

प्राप्त आंकड़ों से स्पष्ट है कि गन्ने की उत्पादकता में वृद्धि हुई है और साथ ही उपोष्ण क्षेत्र जैसे उत्तर प्रदेश में चीनी परता में वृद्धि हुई है एवं राष्ट्रीय स्तर पर चीनी का उत्पादन (330 लाख टन) दर्ज किया गया है। पिछले पांच वर्षों के दौरान, देश अपनी घरेलू आवश्यकताओं से अधिक चीनी का उत्पादन कर रहा है जो किसानों/चीनी मिलों के लिए आर्थिक विकास पर तकनीकी प्रभाव का एक प्रमुख संकेतक है।

भारत में चीनी की वार्षिक माँग 250 से 260 लाख टन के आसपास है। इस प्रकार, स्वच्छ ईंधन (जैव–इथेनॉल) के निर्माण के लिए अधिशेष गन्ना को प्रयोग किया जा सकता है। इससे न केवल वातावरण स्वच्छ होगा अपितु आय वृद्धि से गन्ना उत्पादक भी लाभान्वित होंगे। सामान्य परिस्थितियों में एक बेहतर किस्म और उत्पादन तकनीक का सापेक्ष योगदान लगभग 70:30 होता है। वर्ष 1970–71 के बाद से इस परियोजना के तहत विकसित गन्ने की किस्में देश के सभी गन्ना उत्पादक क्षेत्रों के लिए विकसित की गई हैं जिससे गन्ने के उत्पादन में लगभग तीन गुना वृद्धि हुई है।

गन्ने की उन्नत किस्मों का प्रभाव

गन्ना और चीनी उत्पादकता में सुधार के लिए गन्ने की किस्में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। उपोष्ण क्षेत्रों में मुख्यत: गन्ने की प्रारम्भिक अवस्था मे सूखे जैसी स्थिति वर्षा ऋतु में तराई क्षेत्रों में जलभराव, बढ़वार हेतु सीमित अवधि तथा शरद ऋतु में निम्न तापमान स्तर गन्ने की उत्पादकता को बढ़ाने मे प्रमुख बाधाएँ हैं।

समन्वित परियोजना *नेटवर्क* के माध्यम से नई किस्मों के विकास ने किसानों और चीनी उद्योग को गन्ने और चीनी उत्पादन की वृद्धि को बनाए रखने के लिए इन समस्याओं के प्रबंधन में प्रमुख भूमिका निभाई। राज्यों में प्रचलित कृषि–जलवायु परिस्थितियों के आधार पर, विभिन्न किस्में विकसित की गयी हैं। वर्ष 2016–20 के दौरान, 27 किस्मों को *रिलीज* के लिए पहचाना गया, जबकि चौदह किस्मों को केंद्रीय प्रजातीय अधिसूचना समिति के माध्यम से अधिसूचित एवं जारी किया गया।

भारत के विभिन्न भागों में स्थित केंद्रीय और राज्य गन्ना अनुसंधान केन्द्रों के समन्वित प्रयासों के परिणामस्वरूप सभी गन्ना उगाने वाले राज्यों में वर्तमान में स्थान–विशिष्ट गन्ना किस्में खेती के लिए उपलब्ध हैं। यह बहु–स्थानिक परीक्षणों के तहत मुख्य रूप से संकरण, मूल्यांकन और चयन के माध्यम से संभव हुआ है। अखिल भारतीय स्तर पर, गन्ने की उत्पादकता में वृद्धि मुख्य रूप से उपोष्ण क्षेत्र में उत्पादकता और शर्करा परता में वृद्धि के कारण हुई। उन्नत किस्मों के तहत बढ़े हुए क्षेत्र (> 90%) के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय स्तर पर कुल उत्पादकता और चीनी उत्पादन में वृद्धि हुई है (चित्र 1)।

वर्ष 2015–20 के दौरान गन्ने और चीनी की उत्पादकता के आंकड़े इंगित करते हैं कि गन्ने की उपज ने ऐतिहासिक रूप से 80 टन/हे. के उच्चतम स्तर को छू लिया है। विगत वर्षों में चीनी की परता में सुधार हुआ है (चित्र 2) जो कि वर्ष 2019–20 में

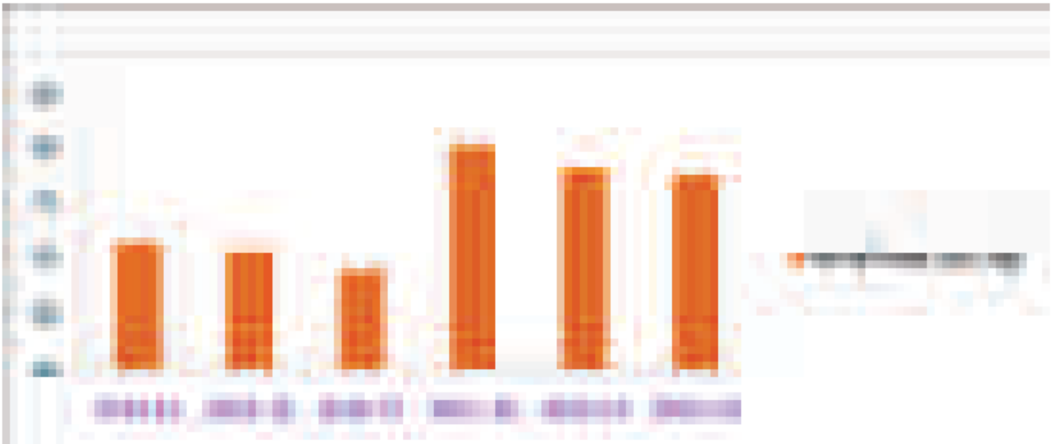

चित्र 1. भारत में वर्षवार गन्ने की औसत उपज (टन/हे.)

उच्चतम (11.73%) था। चीनी परता और गन्ना उत्पादकता में सुधार से उत्तर प्रदेश राज्य में चीनी उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि दर्ज की गयी जो गन्ने के क्षेत्र और उत्पादन में सर्वाधिक योगदान करता है

समन्वित परियोजना *नेटवर्क* के अंतर्गत विकसित की गई विशिष्ट गन्ना किस्मों को योग्यता आधारित अपनाने के कारण पिछले कुछ वर्षों में चीनी की परता में काफी वृद्धि हुई है। गन्ने की कटाई और देरी से पेराई पर नुकसान को कम करके, गन्ने की कटाई और परिवहन की उचित समयबद्धता, मिलों की दक्षता में सुधार और फसल की समय पूर्व कटाई के अभ्यास को हतोत्साहित करके इसे और बेहतर बनाया जा सकता है।

उत्तर प्रदेश में जारी *सीवीआरसी* की गन्ना किस्मों की उत्पादकता में 15–25% और 10.88% चीनी की उत्पादकता में वृद्धि हुई। पेराई सत्र 2017–18 के दौरान चीनी मिलों की चीनी की परता 10.02 से 12.30% तक रही ।

किसानों की आय दोगुनी करना

किसान की आय दोगुनी करने के लिए प्रधानमंत्री के आह्वान पर उत्तर प्रदेश के लखीमपुर–खीरी और

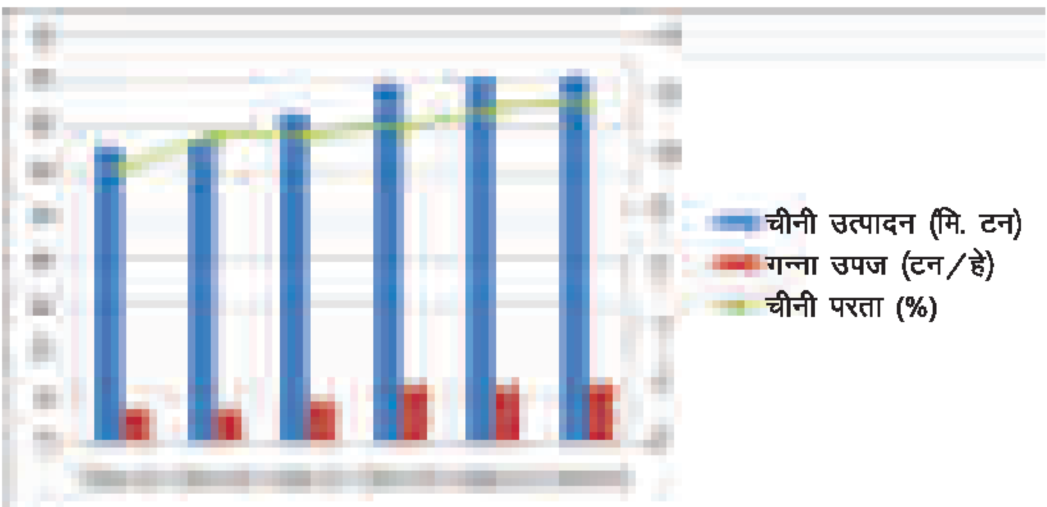

चित्र 2. उत्तर प्रदेश में वर्षवार गन्ना उत्पादकता, चीनी उत्पादकता और चीनी परता

हरदोई जिलों के आठ गाँवों में पेड़ी प्रबंधन, भूमि समतलन, बीज कार्यक्रम, किस्म चयन, *ट्रेंच प्लांटिंग, ड्रिप इरिगेशन, फर्टिगेशन,* अंतःखेती आदि सम्मिलित करके दर्शाया गया कि तकनीकी विकास आय वृद्धि में प्रभावी है।

शरद ऋतु के रोपड़ में 25.4% और गन्ने के क्षेत्र में 8.3% की वृद्धि हुई अतःफसल का क्षेत्र भी 44.4% बढ़ा है।

उत्तर प्रदेश में परियोजना की उन्नत किस्मों के अंतर्गत क्षेत्र का विस्तार

गन्ना आयुक्त, उत्तर प्रदेश सरकार के सरकारी आंकड़ों से स्पष्ट है कि इस परियोजना के तहत विकसित उन्नत किस्मों के अंतर्गत क्षेत्र में तेजी से विस्तार हुआ है। उत्तर प्रदेश में इसी अवधि में 5.93% से बढ़कर 93.4% हो गया।

उपोष्ण उत्तरी क्षेत्र में, उत्तर प्रदेश अधिकतम क्षेत्र (26.79 लाख हे.) का योगदान करता है और राष्ट्रीय गन्ना उत्पादकता (77.6 टन/हे.) से लगभग 4.51% अधिक गन्ने की उत्पादकता का स्तर प्राप्त किया है। शरदकालीन गन्ना (> 20%) के अंतर्गत बढ़ते क्षेत्र वृद्धि, उच्च चीनीयुक्त, शीघ्र पकने वाली किस्मों को प्रयोग, *ट्रेंच* विधि के माध्यम से बुवाई और गन्ने के साथ उच्च मूल्य तथा कम अवधि की अन्तःफसलों के चुनाव से चीनी उत्पादन में वृद्धि (120 लाख टन) हुई है और गन्ना किसानों की आय में आशातीत वृद्धि हुई है।

उत्तर प्रदेश 2013–14 से 2018–19 के मध्य, परियोजना द्वारा विकसित किस्मों का विस्तार 35.89% से बढ़कर 92.75% हो गया, जबकि इसी अवधि में अन्य किस्मों का क्षेत्र 64.11% से घटकर 7.25% रह गया जिससे चीनी परता एवं उत्पादकता में वृद्धि दर्ज की गई है।

उत्तर प्रदेश में वर्ष 2017–18 में उन्नत गन्ना उत्पादन के योगदान से गन्ना उपज (79.2 टन/हे.) और चीनी उत्पादन 120 लाख टन प्राप्त किया गया।

परंपरागत गन्ना क़िस्मों के प्रतिस्थापन में नवीन गन्ना क़िस्मों के बीज की अपर्याप्त उपलब्धता प्रमुख बाधा थी जिसे दूर करने के लिए बीज गन्ना उत्पादन कार्यक्रम को उद्यमिता विकास कार्यक्रम से जोड़कर इस बाधा को दूर किया गया। इस प्रकार समन्वित परियोजना द्वारा विकसित किस्मों के अपनाने से गन्ना और चीनी उत्पादन का परिदृश्य नाटकीय रूप से बदल गया।

ट्रेंच विधि को अपनाने से लगभग 2.0 लाख हेक्टेयर में गन्ने की पैदावार में 15–20 टन/हे. की वृद्धि हुई। गन्ने के साथ दलहन, सब्जियां, तिलहन और अनाज की परस्पर खेती से गन्ना उत्पादकों को प्रति हेक्टेयर ₹ 250 से ₹ 2,000 की अतिरिक्त आय अर्जित करने का पर्याप्त अवसर मिला।

इस प्रकार अखिल भारतीय समन्वित गन्ना अनुसंधान परियोजना के पटल पर विकसित उन्नत गन्ना प्रजातियों एवं नवीन उत्पादन तथा फसल सुरक्षा प्रौद्योगिकियों को राज्य सरकार द्वारा अपनाने के परिणामस्वरूप आज हम गन्ना एवं चीनी उत्पादन क्षेत्र में आत्मनिर्भरता पाकर अतिरिक्त गन्ना उत्पादन द्वारा जैव ईंधन (*एथानॉल*) के निर्माण में कदम रख चुके हैं।

गन्ने द्वारा जैवइथेनॉल उत्पादन से ऊर्जा उत्पादन में भी लाई जा सकेगी आत्मनिर्भरता

ब्रह्म प्रकाश, लाल सिंह गंगवार, अश्विनी कुमार शर्मा, अनीता सावनानी, ओम प्रकाश, अभिषेक कुमार सिंह एवं कामिनी सिंह

भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

वर्ष 2000 में विश्व में कुल मात्र 4.9 करोड़ टन चीनी का उत्पादन किया जा रहा था जो वर्ष 2021–22 में बढ़कर 17.37 करोड़ टन होने का अनुमान लगाया गया है। संयुक्त राज्य अमेरिका में चीनी की प्रति व्यक्ति खपत विश्व के अन्य देशों की तुलना में सर्वाधिक है। खाद्य तथा कृषि संगठन का अनुमान है कि चीन तथा भारत में भी चीनी की प्रति व्यक्ति खपत काफी तेजी से बढ़ रही है। हालांकि चीनी का स्वाद अत्यंत मीठा होने के बावजूद, गन्ने की खेती ने विश्व के पर्यावरण पर अत्यंत बुरा प्रभाव डाला है। गन्ने की फसल के उत्पादन हेतु पानी की बहुत अधिक मात्रा की आवश्यकता होती है। शोध अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि महाराष्ट्र में गन्ने की फसल कुल सिंचाई आपूर्ति का 60% तक का दोहन करके भूजल स्तर पर प्रभाव डालती है। कुछ स्थानों पर गत 20 वर्षों में भूजल स्तर 15 मीटर से बढ़कर 65 मीटर तक नीचे चला गया है। इसके साथ चीनी के उपभोग से भी मानव स्वास्थ्य पर गंभीर प्रभाव पड़ता है।

गन्ना जो भारत में लाखों किसानों सहित विभिन्न अन्य व्यक्तियों को भी रोजगार के अवसर प्रदान करता है, की खेती मौद्रिक रूप से अधिक लाभदायक सिद्ध हुई है। गन्ने को जैव ईंधन के लिए प्रयोग करके मानव स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभाव पर नियंत्रण पाया जा सकता है। इसके साथ ही कृषि क्रियाओं में भी परिवर्तन लाया जा सकता है। मैक्सिको में किए गए अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि पानी का पुनर्चक्रण करके गन्ने की फसल की जल उपभोग आवश्यकता को 94% तक कम किया जा सकता है जबकि तमिलनाडु में एक–एक कूँड़ छोड़कर पानी देने से गन्ने की जल उपयोग दक्षता में 60% की वृद्धि की जा सकती है।

महाराष्ट्र में गन्ने के साथ अन्य फसलों की जल आवश्यकता पर किए गए अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि गन्ना अत्यंत जल प्रधान फसल है। महाराष्ट्र में उथली कठोर चट्टानों वाले विभिन्न क्षेत्रों में गन्ने की खेती बहुत बड़े क्षेत्र में की जाने के कारण ऐसे स्थानों पर भूजल की भंडारण क्षमता भी अत्यंत कम होती है। गन्ने की खेती के लिए किसान भूजल का प्रयोग तो कर सकते हैं परंतु इसके साथ ही उनको सतही जल की भी आवश्यकता होती है। अतः गन्ना उन स्थानों पर भी उगाया जाता है जहां *कमाण्ड* अथवा नियंत्रित क्षेत्रों में भी अथवा बांधों से आधिक्य पानी की आपूर्ति की जा सकती है। अब गन्ने की फसल सतही तथा भूजल दोनों का ही उपभोग करती है। भूजल का स्तर वर्षा होने पर पुनर्स्थापित हो जाता है। जलवायु परिवर्तन के साथ इसका स्वरूप भी अप्रत्याशित होता जा रहा है। गन्ना से चीनी उत्पादन की बजाय जैव ईंधन बनाना एक उचित समाधान हो सकता है।

जैव ईंधन की महत्ता तथा गन्ने का उपयोग

गन्ना जैसी फसल से इथेनॉल बनाकर अथवा सोयाबीन जैसी तिलहनी फसल से *बायोडीजल* बनाकर जैव ईंधन बनाना जीवाश्म ईंधन के विकल्प के रूप में परिवहन के क्षेत्र में अधिक बेहतर विकल्प हैं। जैव ईंधन जीवाश्म ईंधन का नवीकरणीय स्त्रोत होने के कारण अच्छा विकल्प है। ब्राज़ील जो विश्व में गन्ने का सर्वाधिक उत्पादन करने वाला देश है, ने गन्ने पर आधारित जैव ईंधन उद्योग अपने देश में बहुत अच्छी तरह से स्थापित कर रखा है।

भारत में चीनी उद्योग के एक उप–उत्पाद शीरे से काफी समय से इथेनॉल बनाया जा रहा था परंतु भारत में मानव उपभोग में चीनी को एक आवश्यक वस्तु घोषित किए जाने के कारण गन्ने के रस से चीनी उत्पादन करने के बजाय सीधे जैव ईंधन बनाने की अनुमति पहले नहीं थी। परंतु भारत में गत कुछ वर्षों में चीनी उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि होने से देश के चीनी क्षेत्र में आत्मनिर्भर हो जाने के कारण गन्ने के रस से सीधे इथेनॉल बनाने की अनुमति भारत सरकार द्वारा दी जा चुकी है जिसका भविष्य में गन्ने की उत्पादकता व

टिकाऊपन पर निश्चित रूप से अच्छा असर पड़ेगा। भारत में जैव ईंधन की सरकारी नीति परिवहन क्षेत्र में 20% जैव ईंधन को प्रयोग करने की अनुमति देती है। यदि केवल शीरे से इथेनॉल बनाया जाए तो भारत को गन्ना उत्पादन में बहुत अधिक वृद्धि करनी होगी जिसके लिए गन्ने की फसल के अंतर्गत और भी अधिक क्षेत्र लाना होगा जो निकट भविष्य में संभव नहीं दिखता। यदि जैव ईंधन के लिए गन्ने के रस का प्रयोग किया जाए तो बगैर चीनी का उत्पादन बढ़ाए भी जैव ईंधन का उत्पादन किया जा सकेगा। इससे अधिक गन्ना उत्पादन करने में होने वाले जल की बचत होने के साथ–साथ हम जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों का भी सुगमता से सामना कर सकेंगे।

भारत में पेट्रोल में इथेनॉल मिश्रित किए जाने की भारत सरकार की नीति

भारत ने आयातित जीवाश्म ईंधन पर निर्भरता कम करने और प्रदूषण और *ग्रीनहाउस* गैस उत्सर्जन को कम करने के लिए इथेनॉल के उपयोग को प्रोत्साहित किया है। भारत सरकार के वर्ष 2025 तक पेट्रोल में 20% इथेनॉल सम्मिश्रण के लक्ष्य को पूरा करने के लिए गत पाँच वर्षों के दौरान, भारत का इथेनॉल उत्पादन तीन गुना बढ़ गया है। वर्ष 2020–21 के दौरान भारत का इथेनॉल उत्पादन 335 करोड़ लीटर था जो राष्ट्रीय स्तर पर 9.5 प्रतिशत के *ईबीपी* लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए पर्याप्त था। उत्तर प्रदेश एवं महाराष्ट्र जैसे प्रमुख गन्ना उत्पादक राज्य गन्ना आधारित इथेनॉल संयंत्रों के लिए पसंदीदा गंतव्य के रूप में उभरे हैं, जिन्होंने सरकार द्वारा एक योजना की घोषणा के बाद गत एक वर्ष में स्वीकृत कुल परियोजनाओं का 40 प्रतिशत आकर्षित किया। सरकार ने अब तक 859.11 करोड़ लीटर इथेनॉल के वार्षिक उत्पादन की संयुक्त क्षमता वाली 196 परियोजनाओं को मंजूरी दी है। महाराष्ट्र को 107.38 करोड़ लीटर की कुल क्षमता वाली 35 परियोजनाओं के लिए मंजूरी प्राप्त हुई है, जबकि उत्तर प्रदेश को 108.74 करोड़ लीटर की क्षमता वाली 29 परियोजनाओं के लिए मंजूरी मिली है। देश ने 268 करोड़ लीटर की स्थापित क्षमता वाले 116 अनाज आधारित इथेनॉल संयंत्रों को भी मंजूरी दी है। इथेनॉल आपूर्ति के मोर्चे पर, तेल विपणन कंपनियों द्वारा अपने चौथे चक्र में 95 करोड़ लीटर की कुल आवश्यकता में से, चीनी मिलों–आधारित आपूर्तिकर्ताओं द्वारा लगभग 39 करोड़ लीटर की पेशकश की गई है। तेल विपणन कंपनियां वर्तमान में बोलियों की जांच कर रही हैं और आशा है कि शीघ्र ही आवंटन कर दिया जाएगा। यद्यपि वर्ष 2021–22 के दौरान, तेल विपणन कंपनियों ने विभिन्न *फीडस्टॉक* से लगभग 385 करोड़ लीटर इथेनॉल आवंटित किया है। सरकार ने इथेनॉल सम्मिश्रण कार्यक्रम को बढ़ावा देने के लिए 1 अक्टूबर, 2021 से बिना इथेनॉल मिश्रित पेट्रोल पर ₹ 2 प्रति लीटर का अतिरिक्त उत्पाद शुल्क लगाया है। राजस्व विभाग की एक अधिसूचना के अनुसार, *बीआईएस* विनिर्देशों के अनुरूप पेट्रोलियम ईंधन को इथेनॉल के साथ मिश्रित ईंधन के रूप में वर्गीकृत किया जाना है। तेल विपणन कंपनियों से वास्तविक उठान मिश्रित ईंधन प्रतिशत को प्राप्त करने के लिए बेहतर होगा, जो वर्तमान में अतिरिक्त उत्पाद शुल्क से बचने के लिए लगभग 10% है।

इथेनॉल सम्मिश्रण कार्यक्रम के लिए समर्थन में सुधार करने के लिए, सरकार ने चीनी मिलों को इथेनॉल उत्पादन क्षमता के विस्तार के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए वित्तीय वर्ष 2021–2022 के लिए ₹ 160 करोड़ और वर्ष 2022–23 के लिए बजट में ₹ 300 करोड़ का प्रावधान कर रखा है। यह भारत में बेहतर प्रौद्योगिकियों के साथ अधिक इथेनॉल आसवनियों की स्थापना को प्रोत्साहन देगा। तेल विपणन कंपनियों ने वर्ष 2021–22 के दौरान खरीद के लिए 95 करोड़ लीटर इथेनॉल की आवश्यकता के लिए निविदाएं जारी की हैं। यह इंगित करता है कि यह मात्रा 11% सम्मिश्रण प्राप्त करने के लिए पर्याप्त होगी। गन्ना किसानों के लिए यह एक सकारात्मक निर्णय है क्योंकि ये सभी भुगतान गन्ना किसानों को किए जाने हैं।

भारत में जैव ईंधन का भविष्य

जीवाश्म ईंधन की प्रकृति के विपरीत जैव ईंधन ऊर्जा के नवीकरणीय स्त्रोत होते हैं जिनको जैवमार, शैवाल अथवा पशु सामग्री से भी सुगमतापूर्वक बनाया जा सकता है। जैव ईंधन सस्ते होने के कारण लागत प्रभावी होते हैं तथा पर्यावरण की दृष्टि से अनुकूल होते हैं जो संवेदनशील जीवाश्म ईंधन के मूल्यों तथा वैश्विक तापमान वृद्धि के समय में महत्वपूर्ण कारक होते हैं। सबसे प्रमुख द्रव जैवईंधन इथेनोल शर्करा अथवा स्टार्च के किण्वन द्वारा बनाया जाता है। ब्राज़ील तथा संयुक्त राज्य अमेरिका इथेनौल के प्रमुख उत्पादक राष्ट्र हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका में इथेनॉल को मक्के के दाने से उत्पादित करते हैं जिसे गैसोलीन के साथ मिलाकर 10% इथेनॉल बनाया जाता है। ब्राज़ील में इथेनॉल गन्ने के रस से बनाया जाता है तथा 100% इथेनॉल ईंधन अथवा 85% इथेनॉल युक्त गैसोलीन के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। भारत सरकार ने वर्ष 2025 तक पेट्रोल में 20% इथेनॉल मिश्रण करने का लक्ष्य निर्धारित किया है। इससे पेट्रोल तथा डीजल के आयात पर खर्च होने वाली बहुमूल्य विदेशी मुद्रा की बचत हो सकेगी तथा पर्यावरण में कार्बन डाईआक्साइड से होने वाला प्रदूषण भी कम हो सकेगा। क्योंकि अभी भी देश में बहुत सारे स्थानों पर अभी भी खेतों पर ही बहुत से पादप अवशेष जलाए जाते हैं। इन अवशेषों से इथेनॉल उत्पादित करके इथेनॉल के वर्तमान स्तर को 700 से 1500 करोड़ लीटर तक बढ़ाया जा सकता है। भारत में गन्ने के रस अथवा चीनी उत्पादन की प्रक्रिया में शीरा नामक उप–उत्पाद से इथेनॉल बनाए जाने के अतिरिक्त, मक्के के डंठल, सनई, *स्विच ग्रास, जेट्रोफा* की झाड़ी, शैवाल तथा *जाइंट रीड्स* जैसी प्रजातियों से भविष्य में इथेनॉल बनाने की अपार संभावनाएं हैं, जिनके दोहन से भारत ऊर्जा उत्पादन में भी आत्मनिर्भर हो सकेगा।

गन्ना फसल अवशेष प्रबंधन का मशीनीकरण

मृत्युंजय कुमार सिंह, अखिलेश कुमार सिंह एवं राम धीरज सिंह
भाकृअनुप—भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

गन्ना एक महत्वपूर्ण व्यावसायिक फसल है जिसकी खेती भारत में लगभग 50 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में की जा रही है। देश ने 70 टन प्रति हेक्टेयर के राष्ट्रीय औसत से 3000 लाख टन से अधिक गन्ने का उत्पादन किया है। भूमंडलीकरण के वर्तमान संदर्भ में, मिट्टी और जल संसाधनों का संरक्षण करते हुए जनसंख्या वृद्धि के साथ तालमेल बनाए रखने के लिए प्रति इकाई क्षेत्र, समय और *इनपुट* का समुचित उपयोग कर अधिक गन्ना उत्पादन करने के तरीकों और साधनों को विकसित करना होगा।

गन्ना फसल अवशेष, जिसे गन्ना कचरा के रूप में भी जाना जाता है, में ज्यादातर पौधे के *टॉप्स* (हरे पत्ते युक्त) और सूखी पत्तियां शामिल हैं। लगभग 10—20 टन प्रति हेक्टेयर फसल अवशेष गन्ने की फसल के बाद खेत में छोड़ दिया जाता है, जिसे आम तौर पर *इंटरकल्चरिंग* और खेत में खाद डालने के समय हटा दिया जाता है। कचरा जलाए बिना, कचरा प्रबंधन बदलते परिदृश्य में एक बड़ी चुनौती है, जिसका किसानों को विशेष रूप से सामना करना पड़ रहा है। पारंपरिक विधि में, गन्ने की कटाई के बाद, सूखे और अर्ध सूखे पत्तों सहित फसल अवशेष को ढेर कर दिया जाता है या खेत में समान रूप से फैला दिया जाता है। किसानों को अगर ईंधन के लिए फसल अवशेष की आवश्यकता नहीं है तब अगली फसल की शुरुआत के लिए उन्हें फसल अवशेष को खेत में जलाना सुविधाजनक लगता है। अब पर्यावरणीय चिंता के कारण फसल अवशेष जलाना प्रतिबंधित कर दिया गया है और किसानों को मिट्टी के अनुकूल रोगाणुओं और मिट्टी के स्वास्थ्य पर जलने के दुष्प्रभावों के बारे में शिक्षित किया जा रहा है। इसके तेज अपघटन के लिए फसल अवशेष को विशेष रूप से टुकड़ों में कटाई (*श्रेडिंग*) करने के लिए कुछ मशीनों को विकसित किया गया है।

धान की कटाई के बाद अगली फसल की सीधी बुवाई के लिए *हैप्पी सीडर* जैसे यन्त्र विकसित किये गए हैं। लेकिन आमतौर पर गन्ने के मामले में पेड़ी फसलें ली जाती हैं। इसलिए, गन्ने में पेड़ी की फसल उगाने पर फसल अवशेष प्रबंधन में मशीनों के प्रभाव का अध्ययन करने की आवश्यकता है। इसके अलावा, गन्ने की कटाई के बाद बेहतर पेड़ी लेने के लिए आवश्यक है कि गन्ने के ठूँठ को जमीन की सतह से काटा जाए। इस कार्य को संपन्न करने के लिए ट्रैक्टर चालित एक एवं दो पंक्तियों के ठूँठ कटाई यंत्र (*स्टबल शेवर*) का विकास किया गया है। इस यंत्र की मदद से गन्ने के ठूँठ की जमीन की सतह से कटाई के साथ—साथ गन्ने की दो पंक्तियों के बीच की जगह में गुड़ाई एवं उचित मात्रा में खाद गिराने का कार्य भी सम्पादित किया जाता है। भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान ने पेड़ी प्रबंधन यंत्र (*आर. एम. ड़ी.*) का भी विकास किया है जिसकी मदद से 75 व 90 सें.मी. की दो पंक्तियों की ठूँठ कटाई, गहरी गुड़ाई, दवा, उर्वरक एवं खाद तथा खर—पतवार को पलट कर मिट्टी ढ़कने का कार्य एक साथ सम्पादित किया जा सकता है। संस्थान ने अभी हाल में तवेदार पेड़ी प्रबंधन यंत्र का विकास किया है जिसका उपयोग अधिक दूरी (1.20 से 1.50 मीटर) पर बोए गए खेत मे किया जाता है। तवेदार पेड़ी प्रबंधन यंत्र गन्ना कटाई के दौरान छोड़े गए फसल अवशेष की उपस्थिति में संचालन करने के लिए विकसित किया गया है। भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान ने गन्ना फसल अवशेष प्रबंधन के लिए *प्लांट रेजिड्यु श्रेडर* यंत्र का भी विकास किया है।

चुकंदर बीज से चीनी तक की तकनीक

मुकुन्द कुमार, आशुतोष कुमार मल्ल, वरुचा मिश्रा एवं सन्तेश्वरी
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

विश्व में लगभग 1420 लाख टन चीनी बनाई जाती है। कुल उत्पादित चीनी 76 प्रतिशत गन्ने से तैयार होती है, शेष 24 प्रतिशत चीनी चुकंदर से बनाई जाती है। चुकंदर विश्व के समशीतोष्ण देशों, यूरोप और अमेरिका में उगाया जाता है। गन्ना विश्व के उष्ण कटिबंधीय देश, एशिया एवं अफ्रीका के देशों में उगाया जाता है। गन्ने में चीनी उसके तने के रस से मिलती है जबकि चुकंदर में चीनी उसकी जड़ों से प्राप्त होती है। चुकंदर से चीनी बनाना काफी किफायती है। परंतु वर्तमान के भूमंडलीकरण के दौर में विश्व बाजार की शर्तों के अनुसार अब फसल उगाने के लिए दी जाने वाली सभी *सब्सिडी* खत्म कर दी जायेगी तो यूरोप में चुकंदर से चीनी बनाना गन्ने से चीनी बनाने की अपेक्षा तीन गुना महँगा हो जायेगा तब विश्व में गन्ने से चीनी उत्पादन करने वाले देश ही चीनी आपूर्ति कर पायेंगे। भारत में समस्त चीनी उत्पादन केवल गन्ने से ही होता है और यहाँ पर प्रमुख चीनी उत्पादक प्रदेशों–महाराष्ट्र के अलावा कनार्टक और आन्ध्र प्रदेश में लगातार सूखे की स्थिति बने रहने के कारण गन्ना उत्पादन में कमी आई है, जिससे चीनी मिलों को पेराई के लिए भरपूर गन्ना नहीं मिल पा रहा है। कई चीनी मिलें तो बंद होने के कगार पर खड़ी हैं। ऐसी स्थिति में वहाँ ऐसी फसल की आवश्यकता है जिसे कम पानी में भी उगाकर उससे चीनी बनाई जा सके। इस दृष्टि से चुकंदर निम्नलिखित कारणो से एक उपयुक्त फसल नजर आती है :

1. गन्ने की अपेक्षा चुकंदर को 30 से 50 प्रतिशत कम पानी की आवश्यकता होती है।
2. चुकंदर सूखे को सहन करने की क्षमता रखता है।
3. चुकंदर क्षारीय भूमि में भी आसानी से उगाया जा सकता है।

इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ में एक *नेटवर्क* परियोजना प्रारंभ की गयी थी जिसके अंतर्गत देश में उष्णकटिबंधीय चुकंदर की सस्य क्रियाएं विकसित की गई हैं जिससे महाराष्ट्र के अलावा अन्य राज्यों में चुकंदर की खेती की जा सके। इस परियोजना के अंतर्गत भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ (उतर प्रदेश) एवं मुक्तेश्वर (उत्तराखंड) केंद्रो पर शोध कार्य चल रहे हैं।

चुकंदर क्या है?

चुकंदर एक सफेद, पार्सनिप जैसी *टेपरूट* होती है इसकी पत्तियों में प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया के माध्यम से सुक्रोज बनता है और जड़ में सुक्रोज संग्रहित होता है। इसमें लगभग 16% सुक्रोज की मात्रा होती है, और एक निष्कर्षण प्रक्रिया से पौधे से चीनी को अलग करती है। गन्ने के विपरीत चुकंदर समशीतोष्ण जलवायु में उगाया जाता है इसलिए यह यूरोप और उत्तरी अमेरिका में गन्ने का अधिक लोकप्रिय विकल्प है।

चुकंदर चीनी की खोज

16वीं शताब्दी में वैज्ञानिक ओलिवियर डी सेरेस ने सबसे पहले चुकंदर के बारे में बताया। उन्होंने कहा था कि 'चुकंदर को उबालने पर चीनी के *सिरप* के समान रस निकलता है, जो सिंदूर के रंग के जैसा होता है। उन्होंने जिस *बीट* का उल्लेख किया था, वह वास्तव में एक सामान्य लाल *बीट* है, जिसे हम लोग सर्दियों में सलाद के रूप में उपयोग करते हैं। सन 1747 में, बर्लिन के विज्ञान अकादमी में भौतिकी के प्रोफेसर एंड्रियास सिगिस्मंड मारग्राफ ने सफेद चुकंदर में चीनी की खोज की। चुकंदर से शुद्ध चीनी निकालने में सक्षम होने के बावजूद, इसका व्यवसायीकरण 1801 तक नहीं हो पाया था। फिर भी उसी दौरान मारग्राफ के छात्र, फ्रांज कार्ल अचर्ड ने सिलेसिया में दुनिया का पहला चीनी चुकंदर कारखाना खोला था। अचर्ड के काम को देखकर नेपोलियन बोनापार्ट को चुकंदर से चीनी निकालने में बहुत दिलचस्पी हो गई, और अपने वैज्ञानिकों को सिलेसिया जाने और कारखाने की जांच करने के लिए नियुक्त किया। उन्होंने पेरिस के पास दो समान कारखानों का निर्माण किया। पश्चिमी यूरोप में जल्द ही नेपोलियन की चीनी योजनाओं की ओर ध्यानाकर्षण हुआ और यूरोप में चुकंदर उद्योग तेजी से विकसित

हुआ। 1850 के दशक में, कई यूरोपीय देशों की सरकारों ने चुकंदर के उत्पादन को *सब्सिडी* देने का प्रावधान किया विशेष रूप से ग्रेट ब्रिटेन में चुकंदर चीनी उद्योग ने गन्ना चीनी उद्योग को पीछे कर दिया। हालाँकि महायुद्ध के दौरान यूरोप भर में चुकंदर के कई खेत नष्ट हो गए थे और यूरोप में गन्ने से चीनी शोधन को पुनर्जीवित किया गया था। आज तक यूरोप और उत्तरी अमेरिका में गन्ना और चुकंदर के बीच प्रतिस्पर्धा बनी हुई है।

चुकंदर की खेती

यूरोपीय देशों में चुकंदर किसानों के बीच एक लोकप्रिय फसल है क्योंकि यह एक अच्छी *रोटेशन* फसल है। मिट्टी की गुणवत्ता बनाए रखने और कीटों और बीमारियों को रोकने के लिए, साल–दर–साल एक विशेष क्षेत्र पर उगाई जाने वाली फसल के चक्रण के लिए महत्त्वपूर्ण है। चुकंदर को अक्सर *ब्रेक* फसल के रूप में उपयोग किया जाता है जो कि बीच–बीच में *रोटेशन* में लगाई जाती है। यह मिट्टी को कीटों और खरपतवारों की रोकथाम में मदद करता है जो अन्य फसलों को संक्रमित करते हैं, बाद की फसल के लिए मिट्टी को शुद्ध करते हैं। कटाई की प्रक्रिया में *बीट* की पत्तियों को काट दिया जाता है, जिससे वे स्वाभाविक रूप से विघटित हो जाते हैं और भूमि पर महत्वपूर्ण पोषक तत्व छोड़ देते हैं। बुवाई से लेकर कटाई तक चुकंदर प्रसंस्करण के लिए तैयार होने में एक साल तक का समय लग सकता है। चुकंदर किसानों के लिए मिट्टी के प्रबंधन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। चुकंदर काफी हद तक बढ़ता है। छोटे बीज से बड़े पौधे के साथ एक बड़ी जड़ तक विकास प्रक्रिया के दौरान चुकंदर में लगने वाले रोगों एवं कीटों से रक्षा करने के लिए किसान भाई समय–समय पर निकाई–गुड़ाई एवं खरपतवारों को खेत से निकालते रहें जिससे चुकंदर की अच्छी पैदावार मिल सके।

चुकंदर प्रसंस्करण

प्रसंस्करण संयंत्र में पहुंचने पर, चुकंदर की गुणवत्ता और सुक्रोज के लिए परीक्षण किया जाता है। फिर इसे *कन्वेयर बेल्ट* पर रखा जाता है जो *बीट* को पानी के साथ परावर्तित *ड्रम* में ले जाता है, जहां गन्दगी को चुकंदर की जड़ से अलग किया जाता है और साफ किया जाता है। यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण प्रक्रिया है क्योंकि चुकंदर जमीन में बढ़ता है और इसलिए कारखाने में आने पर गन्ने की तुलना में बहुत अधिक गन्दा होता है। चुकंदर को एक चुकंदर *वॉशर* में धोया जाता है जिससे अतिरिक्त मिट्टी साफ हो सके। स्वच्छ चुकंदर *स्लाइसरों* की ओर नीचे लुढ़कते हैं, जहां उन्हें छोटे *फ्रेंच फ्राइज* की तरह दिखने वाले *'कॉस्सेट्स'* में काट दिया जाता है तथा सतह क्षेत्र में फैल जाता है और चीनी को अधिक आसानी से निकालने में मदद करता है।

चुकंदर *स्ट्रिप्स* एक बड़े गर्म पानी के टैंक में जाते हैं जहां पर चुकंदर की जड़ों की कोशिका झिल्ली को तोड़ा जाता हैं, जिससे सुक्रोज को *ऑस्मोसिस* द्वारा निकाला जा सके। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि चुकंदर की जड़ो में उनके आसपास के पानी की तुलना में अधिक सुक्रोज होती है, जिससे सुक्रोज पानी में फैल जाता है। इस प्रकार एक *ब्राउन शुगर* पल्प बनता है जो एक प्रसार कक्ष में प्रवेश करता है और पानी की धारा में उन्हें चलाकर *कोसेट* से जितना संभव हो उतना सुक्रोज निकाल लिया जाता है। फिर, *शुगर लिक्विड* (कच्चा रस) शुद्धिकरण के लिए तैयार हो जाता है। चुकंदर से अतिरिक्त रस को निकालने के लिए गैर–शर्करा वाले गूदे को दबाया जाता है। फिर इसे *पैलेट* के रूप में सुखाया जाता है जिसे पशु आहार के रूप में उपयोग किया जाता है।

शुगर सिरप या *'रॉ जूस'* को शुद्धि प्रक्रिया में ले जाया जाता है, जहां चूने और कार्बन डाइऑक्साइड के मिश्रण को मिलाकर अशुद्धियों को दूर किया जाता है। इस प्रक्रिया (*कार्बोनेशन*) के दौरान चूने का पानी कैल्शियम कार्बोनेट का उत्पाद बनता है जो गैर–शर्करा उत्पाद का संग्रह करता है। यह सबसे अधिक अशुद्धियों को साफ करता है, क्योंकि यह चीनी के रस को छोड़ देता है। कुछ *प्रोसेसर* तरल को हटाने के लिए डी–रंग *आयनिक एक्सचेंजर्स* भी जोड़ते हैं। फिर, अवशिष्ट रस को एक *फ्रेम* या *प्लेट प्रेस* का उपयोग करके एक अन्य निस्पंदन प्रक्रिया के माध्यम में डाला जाता है। चीनी के रस को निचोड़ने के लिए अधिक दबाव बनाया जाता है जिसके परिणामस्वरूप पतला रस और ठोस अपशिष्ट प्राप्त होता है। अपशिष्ट, जिसे चूने का ठोस कहा जाता है और सभी अशुद्धियों को रखता है, फिर *फार्मलैंड* पर फैला दिया जाता है, जिससे एक और टिकाऊ उत्पाद उर्वरक बनाया जाता है। परिणामस्वरूप पतला रस प्राप्त होता है जो कच्चे रस की तुलना में अधिक शुद्ध

होता है, इसमें अपेक्षाकृत कम चीनी होती है। चीनी रस को 16% से 65% तक गाढ़ा बनाने के लिए पतले रस को उबाला जाता है। *सिरप* 6 गुना ज्यादा वाष्पीकरण प्रक्रिया से गुजरता है जहां पानी उबलता रहता है। गाढ़ा रस तब तक इस प्रक्रिया से गुजारा जाता है जब तक रस का क्रिस्टलीकरण न हो जाए। क्रिस्टलीकरण प्रक्रिया में उपयोग किए जाने वाले पानी को तब तक गर्म करने और *ऑन–साइट* उपयोग करने तथा कचरे को कम करने, संसाधनों और ऊर्जा को कुशलतापूर्वक प्रबंधन के साथ उपयोग करना चाहिए। गाढ़ा रस फिर चार चरणों की क्रिस्टलीकरण प्रक्रिया से गुजरता है, जिसमें से पहला इसे एक कम तापमान पर एक अपकेंद्रित (दबाव वाले *वैक्यूम सिस्टम*) से गुजारा जाता है, जहां चीनी *क्रिस्टल* को जोड़ा जाता है, जिससे एक जटिल शीतलन का उपयोग करके चीनी क्रिस्टल बनने और वाष्पीकरण प्रक्रिया होती हैं। *क्रिस्टल* चीनी, अब एक स्थिरता के साथ मिश्रण से *क्रिस्टल* को तीन बार अलग करने के लिए *सेंट्रीफ्यूज* में डाल दिया जाता है। अधिक मात्रा में चीनी के *क्रिस्टल* को निकालने के बाद जो *फूड–बाय–प्रोडक्ट* रहता है, उसे चुकंदर *पैलेट* कहा जाता है, और इसका उपयोग पशु आहार या शराब बनाने के लिए किया जाता है। चीनी *क्रिस्टल* को गर्म हवा के साथ सुखाया जाता है और इकट्ठा कर लिया जाता है जिसे *पैकेट* में *पैक* किया जाता है और उपभोक्ताओं तक पहुंचाया जाता है जिसे हम सब खाने में उपयोग करते हैं।

गुड़ के मामले में आत्मनिर्भर भारत विदेशों में कर रहा भारी मात्रा में निर्यात

अतुल कुमार सचान, ब्रह्म प्रकाश, कामिनी सिंह, राजेश कुमार एवं अश्विनी कुमार शर्मा

भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

गुड़ अपरिष्कृत प्राकृतिक शर्करा है जो प्रायः गन्ने के रस से बिना किसी रसायन को मिलाए निर्मित किया जाता है। कुल विश्व गुड़ उत्पादन का 70% से अधिक उत्पादन भारत में ही किया जाता है। गुड़ लोकप्रिय रूप से "औषधीय चीनी" के रूप में भी जाना जाता है और यह शहद के साथ पोषक रूप से तुलनीय है। गत 3,000 वर्षों से आयुर्वेदिक चिकित्सा में एक मिठासक के रूप में गुड़ का प्रयोग किया जा रहा है। भारतीय आयुर्वेद के अनुसार गुड़ गले और फेफड़ों के संक्रमण के इलाज में अत्यंत लाभप्रद होता है। जबकि परिष्कृत चीनी में मुख्य रूप से *ग्लूकोज* और *फ्रक्टोज़* ही होते हैं, गुड़ में *ग्लूकोज* और *सुक्रोज* होते हैं। लेकिन गुड़ में खनिज लवण और विटामिन भी प्रचुर मात्रा में होते हैं जिनका परिष्कृत चीनी में अभाव होता है। गुड़ की खनिज सामग्री में कैल्शियम, फास्फोरस, मैग्नीशियम, पोटेशियम और लौह तत्व की प्रचुर मात्रा के साथ–साथ जस्ता और तांबा भी अल्प मात्रा में उपस्थित रहता है। गुड़ की विटामिन सामग्री में फ़ौलिक एसिड और बी–कॉम्प्लेक्स विटामिन शामिल रहते हैं। इसके अलावा, यह ऊर्जा का भी अत्यंत अच्छा स्रोत है। यह आंतों के दर्द के साथ–साथ पित्त के विकारों को रोकता है; थकान, मांसपेशियों, नसों और रक्त वाहिकाओं को आराम देने में भी सहायक होता है; रक्तचाप को बनाए रखता है और शरीर में पानी की प्रतिधारण क्षमता को कम करता है; हीमोग्लोबिन का स्तर बढ़ाता है और एनीमिया को रोकता है। बेकरी और *कन्फैक्शनरी* उत्पादों को पोषक तत्वों, विटामिन और प्रोटीन से सुसज्जित किया जाता है। ये पके हुए उत्पादों जैसे *बिस्कुट, ब्रेड, केक, पेस्ट्री, बन्स, रस्क* और *रोल* आदि में प्रयोग किया जाता है। गुड़ के अन्य प्रयोगों में *चॉकलेट्स,* मिठाईयाँ, *च्युइंग गम* आदि शामिल हैं। भारत में बेकरी क्षेत्र खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों के सबसे बड़े खंडों में से एक है, जिसमें मूल्य के हिसाब से वार्षिक कारोबार लगभग 90 करोड डॉलर का है। भारत में कुल 30 लाख टन बेकरी का अनुमानित उत्पादन (15 लाख टन *ब्रेड,* 11 लाख टन *बिस्कुट* तथा 4 लाख टन *केक)* होता है।

बाजार में *ब्रेड* की मांग लगभग 7% प्रति वर्ष की दर से बढ़ने का अनुमान है, और हाल के वर्षों में *बिस्कुट* उद्योग ने लगभग 8–10% प्रति वर्ष की दर से थोड़ा अधिक विकास देखा है। *बिस्कुट* श्रेणी में, *क्रीम* और *कुकीज़ बिस्कुट* 20% प्रति वर्ष की गति से बढ़ रहे हैं। वर्तमान में, देश में लगी अनुमानित 20 लाख *बेकरी* हैं। *कन्फेक्शनरी* उद्योग चीनी, *कन्फेक्शनरी, चॉकलेट* और *च्युइंग गम* मसूड़ों में विभाजित है। *कन्फेक्शनरी* उद्योग की वर्तमान क्षमता 85,000 टन है और प्रति वर्ष विकास दर 10–15% है।

गुड़ के प्रमुख उत्पादक राष्ट्र के रूप में, भारत ने प्रमुख व्यापारियों और निर्यातक राष्ट्रों के बीच दुनिया में अपना एक नया मुकाम बनाया है। वर्ष 2019–20 के दौरान भारत ने 3,41,155.34 मीट्रिक टन गुड़ और *कन्फेक्शनरी* उत्पादों को दुनिया के विभिन्न देशों में निर्यात करके ₹ 1,633.22 करोड़ अथवा अमेरिकन $ 2279 लाख अर्जित करवाएँ हैं। भारत के गुड़ के प्रमुख निर्यातक राष्ट्र श्रीलंका, रूस, नाइजीरिया, नेपाल, मलेशिया, तंजानिया व बंगलादेश हैं।

भाकृअनुप–राष्ट्रीय अंगूर अनुसंधान केंद्र द्वारा विकसित अंगूर की किस्में

अजय कुमार शर्मा, रामहरि गु. सोमकुवर एवं रोशनी समर्थ
भाकृअनुप–राष्ट्रीय अंगूर अनुसंधान केंद्र, पुणे

यूं कहने को तो अंगूर शीतोष्ण जलवायु का फल है, परंतु आज अंगूर का उत्पादन भारत के उष्ण क्षेत्रों में भी सफलतापूर्वक किया जा रहा है। अंगूर का उत्पादन प्रमुख रूप से महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, मिज़ोरम, पंजाब आदि राज्यों में है। देश के कुल अंगूर उत्पादन का लगभग 95% महाराष्ट्र तथा कर्नाटक से प्राप्त होता है। महाराष्ट्र के नासिक, सांगली, सोलापुर, पुणे, अहमदनगर आदि जिलों में विशेष रूप से अंगूर का उत्पादन किया जाता है जबकि कर्नाटक राज्य के बीजापुर, बागलकोट, बंगलौर ग्रामीण आदि जिले भी अंगूर उत्पादन के लिए जाने जाते हैं। इन क्षेत्रों में मुख्य रूप से बीजरहित सफ़ेद *थॉमसन सीडलैस* किस्म तथा इससे चयनित क्लोन जैसे कि तास–ए–गणेश, सोनाका, माणिक चमन आदि; शरद *सीडलैस* तथा इससे चयनित क्लोन जैसे कि नाना साहब पर्पल, सरिता सीडलैस, महादेव सीडलैस, इत्यादि; रैड ग्लोब, क्रिमसन सीडलैस, फ्लेम सीडलैस आदि किस्में उगाई जा रही हैं। अंगूर उत्पादन के विभिन्न पहलू विदेशों से प्रभावित हैं क्योंकि यह फसल आयातित है लेकिन इनमें अपनी परिस्थितियों के हिसाब से बदलाव करने की आवश्यकता थी। भारतीय परिस्थितियों को ध्यान में रखकर विभिन्न बदलाव किए गए जिससे कि उत्पादन लागत में कमी के साथ–साथ उच्च गुणवत्ता वाले अंगूरों के उत्पादन से उत्पादकों की आय में वृद्धि की जा सके और भारत सरकार द्वारा निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके।

अंगूर प्रमुख रूप से खाने, किशमिश/मुनक्का बनाने, *वाइन* तथा *जूस* उत्पादन हेतु उत्पादित किए जाते हैं। किस्मों के लक्षणों के हिसाब से ही इनका चयन किया जाता है कि किस रूप में उपभोग किया जाय। वर्तमान में अंगूर की दस हजार से अधिक किस्में विश्व के विभिन्न देशों में उगाई जा रही हैं। अमुक क्षेत्र की उत्पादन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए क़िस्मों का चयन किया जाता है साथ ही साथ बाजार की मांग को भी ध्यान में रखना आवश्यक होता है। अंगूर की उत्पत्ति भारत से नहीं होने के कारण इसकी क़िस्मों का विकास भी उन्हीं देशों में प्रारम्भ हुआ जहां इसका उत्पादन पहले हुआ। साथ ही साथ शीतोष्ण भागों में अंगूर प्रमुख रूप से *वाइन* उत्पादन करने के लिए उगाया जाने लगा। धीरे धीरे अंगूरलताओं ने अन्य देशों का रुख किया और इसके साथ ही इसके उपभोग के नए तरीकों पर लोगों ने कार्य करना शुरू किया।

अंगूर की किस्में

संसार के अन्य उष्ण क्षेत्रों की भांति भारत में भी अंगूर का उत्पादन, अंगूरों को ताजा खाने के लिए किया जाने लगा और समय के साथ जलवायु परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए अंगूरों के शुष्कन की प्रक्रिया आरंभ हो गई। आज भारत ताजे अंगूर उत्पादन के साथ–साथ अंगूर शुष्कन से तैयार मूल्यवर्धित उत्पाद किशमिश के उत्पादन में भी जाना जाता हैं। ताजे अंगूर तथा अंगूर जिनसे किशमिश पैदा की जाती हैं, के लिए थॉमसन सीडलैस विश्व में जानी मानी किस्म है। थॉमसन सीडलैस तथा इससे चयनित *क्लोन* मुख्य रूप से उपभोक्ताओं द्वारा पसंद किए जाते हैं लेकिन समय के साथ उपभोक्ताओं की पसंद में भी बदलाव आ रहे हैं। अतः आज आवश्यकता है कि उसी प्रकार की क़िस्मों को उगाया जाए, जिसके उपभोक्ता अधिक हैं अथवा विशेष उपभोक्ता बाजार में अधिक मूल्य देने के लिए तैयार हैं। उपभोक्ताओं की मांग, बाजार मूल्य, जलवायु परिस्थितियों, गुणवत्ता, अंतिम उपभोग हेतु अंगूर उपयुक्तता, रोग तथा कीटों के प्रति अंगूर लताओं का प्रदर्शन, उत्पादन लागत मूल्य, उपज, इत्यादि को ध्यान में रखते हुए भाकृअनुप–राष्ट्रीय अंगूर अनुसंधान केंद्र ने निम्नलिखित चार किस्मों का विकास किया है:

मांजरी नवीन: मांजरी नवीन किस्म का चयन सेंटेनियल सीडलैस नामक किस्म से किया गया है। इस किस्म की मणियाँ एकदम गोल न होते हुए थोड़ी लंबी सी हैं और फल गुच्छा प्राकृतिक रूप से ढीला है। मणियों का आकार भी बड़ा है। सामान्यरूप से अंगूर की मणियों का आकार बढ़ाने एवं गुच्छे को ढीला रखने हेतु जिब्रेलिक अम्ल का अनुप्रयोग व्यापक रूप से किया जाता है। लेकिन इस किस्म के गुच्छे ढीले होते हैं तथा

मणियों का आकार भी बड़ा होता है। अतः जिब्रेलिक अम्ल के अनुप्रयोग की आवश्यकता नहीं होती है। इस तरह से अच्छी गुणवत्ता की मणियाँ कम उत्पादन लागत में पैदा होती हैं। इस किस्म की विशेषता है कि जब मणियों में कुल घुलनशील पदार्थ की मात्रा 16^0 ब्रिक्स से अधिक होने लगती है तो मणि के खाने पर एक विशेष प्रकार की खुशबू का एहसास होता है जो सामान्य तौर पर अन्य क़िस्मों में अनुपस्थित रहता है। यह किस्म निर्यात सक्षम भी है और इसका छोटे स्तर पर अन्य देशों को निर्यात भी किया जा रहा है।

मांजरी मेडिकाः भाकृअनुप–राष्ट्रीय अंगूर अनुसंधान केंद्र, पुणे में पूसा नवरंग तथा *फ्लेम सीडलैस* जनकों के द्वारा एक संकर किस्म विकसित की गई जिसे मांजरी मेडिका नाम दिया गया है। इस किस्म के विकास पर 14–15 वर्ष पहले ही काम शुरू किया गया था तथा उपज, फल गुणवत्ता मूल्यांकन के आधार पर इसे *जूस* उत्पादन हेतु अच्छा पाया गया। विभिन्न क्षेत्रों में इस किस्म की औसत उपज 12–14 टन प्रति एकड़ दर्ज की गई। इस किस्म के फल गुच्छों का वजन 200–250 ग्राम के मध्य दर्ज किया गया। छंटाई से लेकर फल गुच्छों की तुड़ाई तक 130–140 दिन की आवश्यकता होती है। इस किस्म में रोग तथा कीटों का प्रकोप कम पाया गया है अतः उत्पादन लागत भी कम रहती है। इस किस्म की मणियां गहरे काले रंग की होती हैं तथा साथ ही साथ इसके *जूस* का रंग भी बहुत गहरा होता है। यह गहरा रंग वस्तुतः अधिक *एंथोसाइएनिन्स* के कारण होता है। मणियों में *एंथोसाइएनिन्स* निहितता की सीमा 4–6 ग्राम प्रति कि. ग्रा. तक पाई गई। कई सालों के दौरान दर्ज किए गए आंकड़ों से ज्ञात होता है कि इस किस्म के जूस में *पौलीफिनोलिक्स* भी प्रचुरता से पाए जाते हैं। इस अनुसंधान केंद्र द्वारा इस किस्म को शून्य अपशिष्ट आधारित प्रसंस्करण हेतु बहुत ही अनुकूल पाया गया है। संक्षेप में कहा जाए तो यह किस्म देश के अंगूर उत्पादन के ढांचे को पूरी तरह बदलने की क्षमता रखती है और किसानों के लिए असीमित संभावनाओं की आशा जगाने में सक्षम है।

मांजरी श्यामाः यह एक काली मणियों वाली ताजे अंगूरों की किस्म है जिसे ब्लैक चम्पा तथा थॉमसन सीडलैस के *क्रॉस* से विकसित किया गया है। मणियाँ गोल होती हैं तथा इनका आकार भी बड़ा होता है। सामान्य तौर पर काली किस्मों की मणियों में रंग के समान विकास की समस्या पाई जाती है जो इस किस्म में देखने को नहीं मिलती है। फल कली विभेदन भी सामान्य होता है अतः फलत की भी कोई समस्या नहीं होती है। इस किस्म की लताओं पर रोग तथा कीटों का प्रकोप कम पाया गया है। अतः कम लागत में अच्छी गुणवत्ता के अंगूर प्राप्त करने में यह किस्म सहायक हो सकती है। इसके फलगुच्छे को आकार तथा आकृति के आधार पर, *नैट* में *पैक* करने के लिए उपयुक्त पाया गया है। सामान्य दशाओं में एक एकड़ क्षेत्र से 10–12 टन उत्पादन मिलता है।

मांजरी किशमिशः मांजरी किशमिश किस्म का चयन किशमिश रोजाविश नामक किस्म से किया गया है। यह किस्म किशमिश उत्पादन हेतु विकसित की गई है। अध्ययनों के आधार पर इस किस्म के अंगूरों से अन्य क़िस्मों के मुक़ाबले किशमिश *रिकवरी* अधिक पाई गई है। अंगूर के उत्पादन में जिब्रेलिक अम्ल का अनुप्रयोग कम किया जाता है क्योंकि किशमिश उत्पादन हेतु बड़ी मणियों की आवश्यकता नहीं होती है। सामान्य दशाओं में एक एकड़ क्षेत्र से 10–12 टन अंगूर उत्पादित किया जा सकता है और कुल 3 टन से अधिक किशमिश पैदा की जा सकती हैं।

ड्रैगन फ्रूट अर्थात कमलम्: पथरीली भूमि तथा सूखा क्षेत्र के लिए एक उपयुक्त फसल

प्रवीण तावरे, धनंजय नांगरे एवं जगदीश राणे
भाकृअनुप–राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, बारामती (महाराष्ट्र)

भारत की लगभग 8% (26.5 दशलक्ष हे.) भूमि पथरीली तथा अनउपजाऊ है। सिंचाई की शाश्वत सुविधा 48.8% क्षेत्र में ही उपलब्ध है और बाकी क्षेत्र में मानसून पर निर्भरता की वजह से बड़े हिस्से में हर समय सूखे का सामना करना पड़ता है। इस परिस्थिति में खेती में आत्मनिर्भरता पाने हेतु फसल विविधीकरण एक विकल्प है। *ड्रैगन फ्रूट* या कमलम् वाणिज्यिक रूप से लाभदायक फलदार पौधा है जिसमें अद्‌भुत स्वास्थ्यवर्धक गुण होते हैं और यह एक विकल्प के रूप में सामने आ रहा है।

ड्रैगन फ्रूट या कमलम् कैक्टस परिवार का एक पौधा है, जिसके लिए उष्ण कटिबंधीय जलवायु उपयुक्त होती है। पौधों के स्वस्थ विकास के लिए 500 से 1500 मि.मी. वार्षिक वर्षा व 20–30^{0} से. तापमान अनुकूल होता है। जबकि, सूखे क्षेत्रों में सिंचाई सुविधाएं सुनिश्चित होने पर इसकी खेती आसानी से की जा सकती है। *ड्रैगन फ्रूट* या कमलम् की तीन महत्वपूर्ण किस्में हैं; *हायलोसेरियस अनडेटस* (फल का छिलका लाल तथा *पल्प* यानि गूदा सफ़ेद होता है), *हा. पोलीर्हायजस, हा. मोनाकैन्थस* या *हा. कोस्टारिसेन्सीस* (छिलका लाल तथा *पल्प* लाल, गुलाबी, जामुनी जैसे रंगीन होता है) और *हा. मेगालैन्थस* (छिलका पीला तथा *पल्प* सफ़ेद होता है।)

ड्रैगन फ्रूट या कमलम् का रोपण *कटिंग* द्वारा किया जाता है। रोपाई के दौरान पौधों के बीच 4x3 मीटर दूरी, हवा संचरण के लिए पर्याप्त होती है। शुरुआती दौर में पौध प्रशिक्षण और चँदवा प्रबंधन पर ध्यान देना आवश्यक होता है। इसके लिए अपरिपक्व तनों को कंक्रीट या लकड़ी के *पोल* से बांध दिया जाता है। प्रत्येक पोल के नजदीक चार पौधे लगाए जाते हैं। एक बार बेल *पोल* के ऊपरी हिस्से तक पहुँचने पर शाखाओं को मुक्त रूप से बढ़ने दिया जाता है। शाखाओं का घनत्व बढ़ने पर कीट और रोग की समस्या उत्पन्न होती है। इसके निवारण के लिए अवांछित शाखाओं की छटाई करके उनकी संख्या 30 से 50 तक रखनी चाहिए। इसे पानी की अधिक आवश्यकता नहीं होती है। दूसरे साल से पानी की औसत आवश्यकता एक से दो हजार लीटर प्रति *पोल* प्रति वर्ष होती है। शीतोष्ण क्षेत्र में पुष्पण मई से जून के दौरान प्रारम्भ होता है। रोपण के प्रथम वर्ष से ही फल लगने शुरू हो जाते हैं किन्तु उचित प्रबंधन द्वारा तीसरे वर्ष से औसत उपज लगभग 12 से 15 टन प्रति हे. तक प्राप्त हो सकती है। *ड्रैगन फ्रूट* या कमलम् की बागान स्थापित करने में अनावर्ती रूप में 8 से 9 लाख रुपये की प्रारम्भिक लागत आती है। इस फसल में गहन प्रबंधन या देखभाल की आवश्यकता नहीं होती है। भाकृअनुप –राष्ट्रीय अजैविक स्ट्रैस प्रबंधन संस्थान, बारामती, महाराष्ट्र में फसलों के विकल्पों पर अनुसंधान हो रहा है। इसमें पाया गया है कि *ड्रैगन फ्रूट* या कमलम् का उत्पाद पथरीली भूमि तथा सूखे की परिस्थिति में किसानों की आय बढ़ाने और उनको आत्मनिर्भर बनाने में कारगर सिद्ध होगा।

आलू "भविष्य का भोजन"

कपिल कुमार शर्मा
भाकृअनुप—केंद्रीय आलू अनुसंधान केंद्र, कुफरी

वैश्विक स्तर पर आबादी की बढ़त के साथ दलहनी तथा तिलहनी फसलों का उत्पादन भी अपने अंतिम छोर को छू चुका है। ऐसे समय में एक ऐसी फसल की जरूरत है जो विश्व की भोजन संबंधी जरूरतों को पूरा करने के साथ सम्पूर्ण आहार भी हो। आलू को विश्व की चौथी मुख्य भोज्य फसल होने का श्रेय प्राप्त है। अंतर्राष्ट्रीय खेतीबाड़ी संस्था द्वारा आलू को 2008 में "भविष्य का भोजन" की उपाधि दी गयी है। बहुत सारे यूरोपियन देशों में आलू ने मुख्य भोज्य फसल के रूप में अपनी पहचान बनायी है।

आलू भारत की अपनी फसल नहीं है तथा इसका आगमन पुर्तगाली व्यापारियों द्वारा 17वीं शताब्दी में माना जाता है। भारत में आलू संबंधी शोध कार्य 1935 से ही शुरू हो गये थे, लेकिन 1949 में केन्द्रीय आलू अनुसंधान संस्थान की स्थापना के साथ इसमें तेजी आई। वर्ष 1949—50 में 2.34 लाख हेक्टेयर भूमि से 6.59 टन प्रति हेक्टेयर की दर से 15.4 लाख टन का कुल उत्पादन था जो 2016—17 में 21.8 लाख हेक्टेयर भूमि से 22.3 टन प्रति हेक्टेयर की दर से 486 लाख टन हो गया है। आलू आज भारत के लगभग हर प्रदेश में उगाया जाने लगा है। अलग—अलग प्रदेशों में वर्ष पर्यन्त आलू फसल उत्पादन का क्रम चलता रहता है, इससे ग्राहकों को भोज्य आलू की आपूर्ति के साथ—साथ आलू प्रसंस्करण उद्यमों को भी कच्चे माल की उपलब्धता बनी रहती है।

आलू उत्पादन में सबसे अहम कड़ी है निरोग आलू बीज क्योंकि यह उत्पादन लागत का लगभग 40 से 50 प्रतिशत तक का अंशदान देता है। जलवायु परिवर्तन, नए कीटों तथा बीमारियों के दुष्प्रभावों के चलते बीज आलू की गुणवत्ता का बहुत तेजी से क्षीण होना एक बहुत बड़ी चुनौती बनकर उभरा है। बदलते हुए बाजारी परिदृश्य में बहुत सारे दूसरे संस्थानों, निजी कम्पनियों द्वारा आलू बीज उत्पादन के क्षेत्र में कूद पड़ने से समीकरण बदलते जा रहे हैं। आज के तेजी से बदलते वैश्विक परिदृश्य में खुली बाजार अर्थव्यवस्था का दौर चल रहा है तथा ऐसी परिस्थितियों में सिर्फ वही उद्यम सफल हो पाते हैं जिसके उत्पादों की गुणवत्ता विश्व स्तर की हो तथा मूल्य समतुल्य उत्पादों से कम या समकक्ष हों। आज के युग में 'अपनी डफली अपना राग' अलापने के दिन चले गए। योग्यतम उत्तरजीविता का मूल मंत्र ही किसी भी संस्थान को राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा में अपनी जगह बनाने के लिए जरूरी हो गया है।

कोरोना काल में प्रवासी मजदूरों के स्व–रोजगार हेतु कौशल विकास में राजस्थान के कृषि विज्ञान केन्द्रों का योगदान

सुशील कुमार सिंह[1], बाबू लाल जाँगिड़[1] एवं रणधीर सिंह[2]

[1]भाकृअनुप–कृषि तकनीकी अनुप्रयोग अनुसंधान संस्थान (अटारी), क्षेत्र–II, जोधपुर, राजस्थान

[2]भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, कृषि अनुसंधान भवन, नई दिल्ली

कोविड–19 विषाणु के कारण फैली कोरोना महामारी के कारण देश और दुनिया में जीवन के सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया और इसने जीवन–शैली और इसके क्रिया–कलापों को बदल कर रख दिया। देश में केन्द्र सरकार द्वारा राज्यों के सहयोग से लागू किये गए अभूतपूर्व तालाबंदी (*लॉकडाउन*) के कारण अप्रैल और मई 2020 में सभी उद्योगों को बंद करना पड़ा। बड़े शहरों में असंगठित क्षेत्रों में कार्यरत ज्यादातर प्रवासी मजदूर कार्यस्थल से अपने घर और गाँव को पलायन कर गए। माननीय प्रधानमंत्री जी ने उनकी आजीविका को संबल प्रदान करने के लिए पहल की और इनका 'गरीब कल्याण रोजगार अभियान' के तहत कृषि और उससे जुड़े क्षेत्रों में कौशल विकास करने के लिए कार्यक्रम शुरू किया। 'गरीब कल्याण रोजगार अभियान' का शुभारंभ माननीय प्रधानमंत्री जी ने आभासी रूप में 20 जून 2020 को किया।

इसके अंतर्गत राज्यवार उन जिलों को चिन्हित किया गया जहां शहरों से गाँवों में सर्वाधिक प्रवासी मजदूर लौटे थे। इस सर्वेक्षण के आधार पर राजस्थान के 22 जिलों यथा–अजमेर, अलवर, बाँसवाड़ा, बाड़मेर, भरतपुर, भीलवाड़ा, बीकानेर, चित्तौड़गढ़, चुरू, डूंगपुर, हनुमानगढ़, जयपुर, जालोर, झुनझुनु, जोधपुर, करौली, नागौर, पाली, राजसमंद, सीकर, सिरोही, और उदयपुर, का चुनाव गाँव लौटे प्रवासी मजदूरों के कौशल प्रशिक्षण के लिए किया गया। उसी अनुरूप इन 22 जिलों के निम्न कृषि विज्ञान केन्द्रों–अजमेर, अलवर–II, बाँसवाड़ा, बाड़मेर–II, भरतपुर, भीलवाड़ा–I, बीकानेर–II, चित्तौड़गढ़, चुरू–I, डूंगपुर, हनुमानगढ़–I, जयपुर–II, जालोर, झुनझुनु, जोधपुर–I, करौली, नागौर–I, पाली, राजसमंद, सीकर, सिरोही, और उदयपुर–I ने प्रवासी मजदूरों के लिए कौशल विकास प्रशिक्षणों का आयोजन किया।

इन प्रशिक्षण कार्यक्रमों को ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार ने प्रायोजित किया और इसके अंतर्गत प्रत्येक कृषि विज्ञान केंद्र को तीन दिवसीय अवधि के 16 प्रशिक्षणों के आयोजन का लक्ष्य दिया गया और प्रत्येक प्रशिक्षण में 35 प्रवासी मजदूरों को प्रशिक्षण देना था। इन प्रशिक्षण कार्यक्रमों के आयोजन के लिए प्रत्येक कृषि विज्ञान केंद्र को ₹ 3.28 लाख का बजट दिया गया और इस तरह 22 केन्द्रों के लिए कुल ₹ 72.16 लाख का बजट भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली द्वारा भाकृअनुप–कृषि तकनीकी अनुप्रयोग अनुसंधान संस्थान (अटारी), क्षेत्र–II, जोधपुर को आवंटित किया गया, जिसे राजस्थान के इन 22 कृषि विज्ञान केन्द्रों को समय पर उपलब्ध करवाया गया। अटारी, जोधपुर ने भाकृअनुप, नई दिल्ली के निर्देशन में राजस्थान के इन कृषि विज्ञान केन्द्रों द्वारा इन कौशल विकास प्रशिक्षणों के आयोजन हेतु निरंतर समन्वय और निगरानी रखी और केन्द्रों को इन प्रशिक्षणों को समय पर प्रभावी रूप से आयोजन हेतु निर्देशित एवं प्रोत्साहित किया और भाकृअनुप, नई दिल्ली को केन्द्रों द्वारा आयोजित प्रशिक्षणों का साप्ताहिक प्रगति प्रतिवेदन भेजा।

फलस्वरूप 'गरीब कल्याण रोजगार अभियान' के अंतर्गत 20 जून 2020 से 15 अक्टूबर 2020 के दौरान राजस्थान के इन 22 जिलों के 22 कृषि विज्ञान केन्द्रों ने आवंटित बजट का लगभग शत प्रतिशत उपयोग करते हुए 357 कौशल विकास प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए और 12,543 प्रवासी मजदूरों का कृषि और उससे जुड़े क्षेत्रों में स्व–रोजगार के लिए कौशल विकास किया। इन प्रशिक्षणों में प्रवासी मजदूरों का मुख्य रूप से मुर्गी पालन, बकरी पालन, दुग्ध और दुग्ध उत्पाद उत्पादन, सब्जी उत्पादन, ढिंगरी की खेती, उद्यानिकी आदि के बारे में कौशल विकास किया गया। एक अनुमान के अनुसार प्रशिक्षित प्रवासी मजदूरों में से 25–30 प्रतिशत ने प्रशिक्षण के दौरान सीखे गए कौशल के अनुसार अपने उद्यम शुरू किए और अपने परिवार की आजीविका सुरक्षा के लिए इन उद्यमों को रोजगार के रूप में जारी रखा। इस तरह राजस्थान के कृषि विज्ञान केन्द्रों ने कोरोना महामारी के दौरान शहरों से गाँवों में लौटे प्रवासी मजदूरों का स्वरोजगार हेतु कौशल विकास कर उनकी आजीविका सुरक्षा में महती भूमिका अदा की है। समय की जरूरत है कि इस तरह के कौशल विकास प्रशिक्षणों को भविष्य में भी आवश्यकतानुसार आयोजित कर प्रवासी कामगारों को अपने गाँव में ही कृषि और उससे जुड़े क्षेत्रों में स्वरोजगार के अवसर उपलब्ध करवाने में कृषि विज्ञान केन्द्र अपना योगदान दे सकते हैं।

आत्मनिर्भर भारत ही बनाएगा गरीबी एवं बेरोजगारमुक्त समृद्ध भारत

आशीष सिंह यादव, ब्रह्म प्रकाश, ओम प्रकाश, लाल सिंह गंगवार एवं शर्मिला रॉय
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

विश्व में कोरोना महामारी के संकट से लड़ने और देश की अर्थव्यवस्था में समुचित सुधार लाने के लिए हमारे देश की सरकार ने आत्मनिर्भर भारत अभियान का शुभारंभ करके हम सबको इस संकल्प को साकार रूप देने का आह्वान किया है। कोरोना संकट काल से पूर्व भारत में *एन 95 मास्क, पीपीई किट, वेन्टिलेटर* एवं *सेनेटाइजर* का निर्माण अत्यंत सीमित मात्रा में होता था तथा अधिकांश मांग पूरी करने के लिए हम विदेशों से आयात पर निर्भर थे, परंतु कोरोना काल में वायुयानों एवं जलयानों के भी बंद हो जाने के कारण कोरोना के संकट से उबरने के लिए हमारे पास अपने देश में ही इनके उत्पादन के सिवा कोई उपाय नहीं था। इन सभी चीजों का निर्माण भारत में करना ही आत्मनिर्भर भारत की ओर बढ़ने का प्रथम कदम था। देश में उपरोक्त वस्तुओं के उत्पादन से हमें अन्य देशों की मदद भी नहीं लेनी पड़ रही है तथा हमारे देश का पैसा हमारे देश के ही काम आ रहा है एवं भारतीयों की समृद्धि एवं संपन्नता का कारण बनने के साथ–साथ भारत को आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर कर रहा है।

आत्मनिर्भर भारत बनाने का अभियान

कोरोना काल में 12 मई 2020 को भारत के प्रधानमंत्री महोदय ने देशवासियों से इस आपदा को अवसर मे बदलने का आह्वान किया था। संकट की इस घड़ी में सभी को आत्मनिर्भर बन राष्ट्र की सेवा और उन्नति में प्रत्येक नागरिक को यथासंभव योगदान देने की अपील की। उनका स्पष्ट संदेश था कि जब देश आत्मनिर्भर होगा तभी इस संकट की घड़ी में हम राष्ट्र को प्रगति के पथ पर अग्रसर कर सकेंगे।

भारत को प्राकृतिक संसाधनों का अनमोल खजाना सौंपा गया है। स्वतंत्रता के पश्चात भारत की गरीबी और भुखमरी को दृष्टिगोचर करते हुए राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने देश को आत्मनिर्भर बनाने का सपना देखा था, पर उस स्थिति में सुविधाओं की कमी होने के कारण हम इस सपने को साकार करने में असमर्थ रहे। हालांकि ये पूरी तरह से तो संभव नहीं हो सका, परंतु जहां तक संभव हो सका, लोगों ने स्वयं को आत्मनिर्भर बनाया। कोरोना महामारी के इस संकट ने एक बार पुनः महात्मा गांधी के आत्मनिर्भरता के उस सपने को याद दिला दिया। भारत में संसाधनों की कोई कमी नहीं है और वर्तमान में भारत किसी भी वस्तु का अपने देश में ही निर्माण करने में सक्षम है। इसके लिए उसे किसी अन्य देश से प्रौद्योगिकी या किसी अन्य सहायता लेने की आवश्यकता नहीं है।

आत्मनिर्भर भारत बनाने का तात्पर्य है कि हमारे देश को प्रत्येक क्षेत्र में स्वयं पर ही निर्भर होना होगा। भारत को देश में ही आवश्यकता की प्रत्येक चीज का निर्माण करना होगा। इस अभियान का मुख्य उद्देश्य भारत के संसाधनों से निर्मित वस्तुओं को भारत में ही उपयोग में लाना है। आत्मनिर्भर भारत से अपने यहां के लघु एवं कुटीर उद्योगों में सुधार करके युवाओं के लिए रोजगार सृजन करना एवं गरीबों के लिए पर्याप्त भोजन की व्यवस्था करना ही इस अभियान का मुख्य उद्देश्य है।

आत्मनिर्भर भारत के लाभ

यदि हमारा देश आत्मनिर्भर बनता है तो भारत को इससे निम्नलिखित विभिन्न लाभ होगें जो यहाँ के नागरिकों एवं देश की प्रगति में अत्यंत सहायक सिद्ध होंगें:

- आत्मनिर्भर भारत से हमारे देश में उद्योगों की संख्या मे वृद्धि होगी।
- भारत को विदेशों से सहायता कम लेनी पड़ेगी।
- हमारे देश में रोजगार के अधिक अवसर उत्पन्न होगें।
- इससे देश बेरोजगारी के अभिशाप से मुक्त होने के साथ–साथ गरीबी से भी मुक्त हो सकेगा।
- भारत की आर्थिक स्थिति अत्यंत मजबूत हो सकेगी।
- आत्मनिर्भर बनने के साथ भारत विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन कर अधिक मात्रा में भंड़ारण कर सकेगा।
- भारत में विभिन्न देशों से होने वाले आयात में कमी आएगी एवं भारत से निर्यात में वृद्धि हो सकेगी।

- आपदा की स्थिति में भी भारत विदेशों से सहायता की कम मांग करेगा।

  देश में स्वदेशी वस्तुओं का निर्माण कर देश की प्रगति को शीर्ष तक ले जाने में मदद प्राप्त होगी।

आत्मनिर्भर भारत बनाने के महत्वपूर्ण तत्व

आत्मनिर्भर भारत की घोषणा के अंतर्गत प्रधानमंत्री महोदय ने आत्मनिर्भरता के लिए निम्नलिखित पांच महत्वपूर्ण तत्वों पर ज़ोर दिया था:

- *इन्फ्रास्ट्रक्चर* (अवसंरचना) विकास यानी सार्वजनिक ढ़ाचे को मजबूत करना
- *इन्वेस्टमेन्ट* (निवेश) करना
- *इंटेंट* अर्थात इरादा करना
- *इन्क्लूजन* यानी समावेश करना
- *इनोवेशन* (नवीन वस्तुओं की खोज करना)

आत्मनिर्भर भारत बनाने का अवसर

सम्पूर्ण दुनिया के साथ–साथ भारत भी कोरोना की महामारी के दौर से गुजर रहा है। अतः इसी आपदा ने ही भारत को आत्मनिर्भर बनाने का सुअवसर भी प्रदान किया है। इस महामारी के दौरान कुछ सीमा तक हमने आत्मनिर्भर भारत के सपने को साकार किया है और बिना किसी अन्य देश की सहायता से इस महामारी से लड़ने के लिए हमने भारत में ही विभिन्न ऐसी वस्तुओं का निर्माण करना आरंभ कर दिया है, जो पहले हमारे देश में बिल्कुल भी नहीं बनती थीं।

भारत ने *पीपीई किट, वैन्टिलेटर, एन–95 मास्क, सैनिटाइजर* इत्यादि वस्तुओं को बनाकर आत्मनिर्भरता की ओर अपना प्रथम कदम बढ़ा दिया है और हमें भी इसमें अपना योगदान देकर आत्मनिर्भर भारत के सपने को साकार करना होगा। हमें अधिक से अधिक स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग करने की आवश्यकता है। हमें कोई भी वस्तु खरीदते समय *एक्सपायरी* डेट देखने की आदत के साथ–साथ 'भारत में निर्मित' अथवा '*मेड इन इंडिया*' को देखकर देश में निर्मित वस्तु ही खरीदने की आदत डालनी होगी। तभी हम भारत को आत्मनिर्भर, मजबूत, समृद्ध एवं खुशहाल राष्ट्र बना सकेंगे।

खाद्य, पोषण एवं आजीविका सुरक्षा में आत्मनिर्भरता लाने हेतु कृषि का महत्व

ओम प्रकाश एवं सुनील कुमार झा
भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली

दुनिया आज परम्परागत संरक्षित व्यापार से मुक्त वैश्विक बाजार की ओर तीव्र गति से आगे बढ़ रही है। यह आर्थिक व नवोन्मेषी व्यक्तियों तथा समूहों को अधिक से अधिक प्रतियोगिता के अवसर प्रदान करता है। इसमें व्यापक बाज़ार के कारण अधिक क्षमता वाले उद्यमों का विकास तीव्र होता है। इस कारण उपभोक्ताओं को बेहतर उत्पाद व सेवायें न्यूनतम मूल्य पर उपलब्ध हो पाते हैं। वर्तमान में तकनीकी विकास ने उत्पादकों और उपभोक्ताओं के बीच की दूरी को भी कम किया है। मोबाइल फोन या कम्प्यूटर के माध्यम से दुनिया के विभिन्न उत्पादकों और उपभोक्ताओं के बीच व्यापार को अधिक सुगम बनाया जा रहा है। बाज़ार और इसके उपभोक्ताओं को बेहतर तरीके से समझने में कृत्रिम बुद्धिमता *आर्टिफिशल इंटेलिजेंस* सहायक सिद्ध हो रही है।

एक महाशक्ति के रूप में स्थापित होने के लिए भारत भी तेजी से अग्रसर है और विभिन्न मामलों में हम कई बड़े देशों के समकक्ष खड़े हैं। नवीनतम तकनीकों और मोबाइल फोन के प्रयोग के मामले में हमने काफी प्रगति की है। लोग चलनशील दूरभाष के माध्यम से नकदरहित लेनदेन कर रहे हैं। बड़े उद्योगपतियों और उपभोक्ताओं के दृष्टिकोण से यह बाजार और लोगों के जीवन में सुधार का माध्यम है। लेकिन, नई परिस्थितयों में स्थानीय स्तर पर सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमियों को बाजार पर प्रभाव बनाये रखने के लिए बड़े–बड़े उद्योगपतियों से प्रतियोगिता करनी पड़ती है। छोटे उद्यमी और व्यवसायियों को उपभोक्ताओं की जरुरत के अनुसार खुद को परिवर्तनशील रखना होता है। अपने व्यवसाय के क्षेत्र में नवाचार के माध्यम से ही ये बाजार में प्रभावी बने रह सकते हैं। दुनिया की दूसरी सबसे बड़ी आबादी वाले इस विकासशील देश में रोजगार एक बड़ा मुद्दा है। इन्हें जीवन–यापन के लिए आत्मनिर्भर बनाकर हीं देश की अर्थव्यवस्था को अतिरिक्त भार से बचाते हुए सतत समावेशी विकास किया जा सकता है। देश की बड़ी अर्थव्यवस्था और महाशक्ति के रूप में स्थापित होने की सार्थकता लोगों की आत्मनिर्भरता में निहित है, जो उनके रोजगार के साधनों को जीवित रखकर हीं संभव है।

आजीविका सुरक्षा और जागरूकता के द्वारा लोग अपनी आधारभूत जरूरतों विशेष रूप से खाद्य व पोषण के लिए भी आत्मनिर्भर हो सकते हैं। आजीविका सुरक्षा जहाँ लोगों के क्रय शक्ति का मानक है, वहीं जागरूकता खाद्य व पोषण को लोगों के आय–व्यय की प्राथमिकता सूची में रखने के लिए जरुरी है। कृषि विविधता और प्रसंस्करण के द्वारा भी हम स्थानीय स्तर पर रोजगार सृजन के साथ खाद्य व पोषण सुरक्षा को प्राप्त कर सकते हैं। कृषि विविधता का तात्पर्य बहुवैकल्पिक खेती से है, जहाँ भिन्न–भिन्न उद्यमों से आय को सुनिश्चित कर एक फसल पर निर्भरता के जोखिम को कम किया जाता है। इससे किसानों को जलवायु और मौसम की प्रतिकूल परिस्थितियों में भी जीवन–यापन को सुरक्षित किया जा सकता है। दूसरी तरफ, बहुवैकल्पिक खेती से खाद्य के साथ–साथ पोषण सुरक्षा को भी प्राप्त कर सकते हैं। प्रसंस्करण के क्षेत्र में भी पोषण सुरक्षा की अपार सम्भावनायें हैं। स्थानीय स्तर पर उगाये जाने वाले कृषि उत्पादों को प्रसंस्कृत कर देश–विदेश में लोगों के दैनिक आहार में शामिल करके किसानों की आजीविका व आय में वृद्धि करना संभव है। उदाहरणार्थ बिहार का मखाना व महुआ, राजस्थान का केर व खेजड़ी, कर्नाटक का करोंदा व फालसा आदि उत्पाद हैं, जो स्थानीय स्तर पर प्रसंस्कृत कर दूर बाजारों में भी भेजे जा सकते हैं। इन उत्पादों में कई बहमूल्य पोषक तत्व उपलब्ध हैं, जो पोषण सुरक्षा के लिए निर्णायक भूमिका निभाने की क्षमता रखते हैं। आत्मनिर्भर भारत का सपना सच करने के लिए लोगों के खाद्य, पोषण व आजीविका सुरक्षा को सुनिश्चित करना अनिवार्य है। अतः स्थानीय उत्पादों व व्यापारियों को बढ़ावा देकर स्थानीय लोगों के जीवन–यापन को बनाये रखने के लिए *वोकल फॉर लोकल* (स्थानीय उत्पादों के लिए मुखर होने) की मुहिम को बढ़ावा देना समय की जरुरत है।

फसल विविधीकरण से आत्मनिर्भरता की ओर

कुमार नन्द लाल
भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

आत्मनिर्भर का सामान्य तात्पर्य है बिना किसी की सहायता के अपना निर्वाह करना। भारत सदियों से कृषि प्रधान देश रहा है। परन्तु विडम्बना यह है कि आज भी हमारा देश, दूसरे देशों से विभिन्न प्रकार के खाने–पीने के सामानों का आयात करता है। अतः भारत सरकार द्वारा वर्तमान में किसानों तथा कृषि उत्पादों की उपलब्धता को बढ़ाने हेतु किए जा रहे प्रयासों को सफल बनाने के लिए यह अति आवश्यक है कि हम अपने किसानी के तरीकों को बदलें। इसके लिए यह भी आवश्यक है कि विभिन्न जगहों तथा परिस्थितियों के अनुसार कृषि वैज्ञानिकों के द्वारा मार्गदर्शित किए गए उपायों को अपनाएं क्योंकि प्रत्येक फसल देश के विभिन्न क्षेत्रों में नहीं उगाई जा सकती है। इस विषय पर एक महत्वपूर्ण सुझाव कृषि वैज्ञानिकों द्वारा यह दिया जाता है कि हम फसल विविधीकरण को अपनाएं। अब प्रश्न उठता है कि फसल विविधीकरण क्या है? किसानों को इससे क्या फायदे हैं, जिससे वे अपनी आय को बढ़ा सकते हैं तथा देश की तरक्की का एक अहम हिस्सा बन सकते हैं। वास्तव में फसल विविधीकरण जमीन की उर्वरा शक्ति को बढ़ाने, भिन्न–भिन्न प्रकार के फसलों को उगाने तथा अपनी आर्थिक स्थिति को सुधारने का एक बहुत ही आसान तरीका है जिसे किसान बड़ी आसानी से अपना सकते हैं। इसके लिए उन्हें किसी अन्य प्रकार की तैयारी या किसी विशेष समय पर निर्भर रहने की जरूरत नहीं है।

सामान्य भाषा में फसल विविधीकरण का मतलब उन्हीं फसलों को उगाना है जो सामान्यतः किसी क्षेत्र का किसान अपनी जमीन पर उगाता है। फर्क सिर्फ इतना है कि उन्हीं फसलों को एक क्रम बनाकर उसी समयावधि में इस प्रकार किसानी करना जिससे किसान को अच्छी उपज मिल सके, उसकी आर्थिक स्थिति में सुधार हो तथा जमीन की उर्वरा शक्ति बनी रहे। इस प्रकार की खेती करने से किसानों को अधिक गुणवत्ता वाली उपज मिलेगी। जिससे उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार होगा तथा जमीन की उर्वरता बनी रहेगी। इसका लाभ यह होगा कि हमारे देश में उपज बढ़ेगी और हमें दूसरे देशों से आयात करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। परन्तु उपज बढ़ने से खाद्यान्न को संरक्षित रखने की भी उचित व्यवस्था करनी होगी अन्यथा अनाज का नुकसान होगा।

अब इस नुकसान से बचने के लिए भी हमें कोई उपाय करने की आवश्यकता होगी जिसका एक उपाय है प्रसंस्करण। हम धान्य, दलहन तथा तिलहन फसलों को तो लम्बे समय तक संरक्षित कर सकते हैं परन्तु शाकीय फसल तथा फल–फूल आदि को दो–चार दिनों से अधिक संग्रहित नहीं कर सकते। इस कारण भी कई किसान इन फसलों की ओर ध्यान नहीं देते हैं। परन्तु अगर इन्हें कोई ऐसा उपाय मिल जाए जिससे वे इन फसलों को भी लम्बे समय तक संरक्षित रख सकें तो इससे उनका ध्यान इस ओर आकर्षित होगा तथा वे और अधिक सम्पन्न होने की कोशिश कर सकते हैं। अतः शाकीय फसलों तथा फल–फूल आदि के संरक्षण के लिए किसानों को प्रसंस्करण की जानकारी देनी चाहिए। आज बाजार में विभिन्न तरह के प्रसंस्कृत उत्पाद उपलब्ध हैं परन्तु ये सब बड़ी–बड़ी कंपनियों द्वारा बनाए जाते हैं जिससे इसका फायदा सिर्फ चंद कारोबारियों को मिलता है, न कि किसानों को। इसलिए यह आवश्यक है कि हम किसानों को इसके बारे में बताएं ताकि वे अपने बर्बाद होने वाली फसलों को संरक्षित कर अपने नुकसान को बढ़ाने के बजाए अपनी आय में बढ़ोत्तरी कर सकें।

इसके लिए किसानों को कृषि आधारित उद्योगों की ओर भी ध्यान देना होगा। छोटे–छोटे घरेलू उद्योग को आरंभ कर वे अपने फसल को खराब होने से बचा सकते हैं साथ ही इससे अच्छा आर्थिक लाभ भी कमा सकते हैं। जैसे गेहूँ पीसने की मशीन, *जूस* बनाने की मशीन, फलों एवं सब्जियों आदि की *पैकिंग* आदि ऐसे कुछ सामान्य उद्योग हैं जिसे किसान बड़ी आसानी से शुरू कर सकते हैं जिन्हें घरेलू उद्योग के नाम से भी जाना जाता है।

इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि अगर इन बातों पर अमल किया जाए तो हमारा देश कृषि क्षेत्र में उत्पादन तथा प्रसंस्करण के लिए विश्व के अग्रणी देशों में गिना जाएगा। इससे हमारे देश को आर्थिक तथा सामयिक दोनों क्षेत्रों में मजबूती मिलेगी।

प्राकृतिक खेती से आर्थिक, स्वास्थ्य एवं सामाजिक सुरक्षा

चन्द्रशेखर खरे

कृषि विज्ञान केन्द्र, जांजगीर, चंपा, छत्तीसगढ़

भारत में प्राकृतिक खेती प्रकृति की गोद में बसे आदिवासियों द्वारा हजारों वर्षों से की जा रही है जिसके प्रमाण हड़प्पा तथा बौद्ध संस्कृति में देखने को मिलते हैं। आदिवासी प्राकृतिक खेती हिमालय के तराई क्षेत्रों तथा नदी–नालों के बहाव क्षेत्रों के किनारें करते आ रहे हैं। घने जंगलों की सड़ी–गली पत्तियों एवं जीव–जंतुओं के अवशेषों, जीवाश्मों के उपजाऊ क्षेत्रों का समुचित उपयोग के साथ आदिवासियों की खेतीगत संस्कृति को संरक्षित करते हुए प्राकृतिक खेती ही आज की नितांत आवश्यकता है जिससे भूमि की उपजाऊ शक्ति बनाई रखी जा सके। छोटी–छोटी नदी–नाले तथा पशुपालन, चरागाहों का विकास, गोबर की खाद केंचुवा खाद, हरी खाद, सूक्ष्म जीवाणु युक्त खाद आदि के प्रयोग के साथ किसान अपनी बाड़ियों में अपनी आवश्यकता के समस्त खाद्यान्न एवं दलहन, तिलहन, साग–सब्जियों की खेती के साथ मशरूम उत्पादन, छतों में गमलों में सब्जी उत्पादन आदि से ही प्राकृतिक खेती से जुड़ाव के साथ आर्थिक बचत एवं लाभ होगा। शुद्धता के साथ उच्च गुणवत्तायुक्त पोषक तत्वों से भरपूर खाद्यान्न, दलहन, तिलहन, साग सब्जियाँ मिलने से मानव जीवन में वृद्धि एवं विकास द्रुत गति से होगा।

प्राकृतिक खेती के तत्व: नदी–नाले तथा पशुपालन से जैविक खेती, नीम की खली, जीवामृत, गोबर की खाद, केंचुवा खाद, हरी खाद, सूक्ष्म जीवाणु युक्त खाद, नील हरित शैवाल, पराली से जैविक खाद बनाना, *ट्राइकोडर्मा* का उपयोग करना, चारागाहों का विकास तथा बकरी व चमगादड़ के विष्ठा बतौर खाद के रूप में वांछित परिणाम देखने को मिल रहे हैं।

शोध पत्र का उददेश्य :

1. प्राकृतिक खेती के प्रति ज्ञानार्जन करना
2. प्राकृतिक खेती से जीवकोपार्जन के साथ आय में वृद्धि कराना
3. प्राकृतिक खेती से आर्थिक, स्वास्थ्य एवं सामाजिक सुरक्षा को मजबूती प्रदान करना
4. प्राकृतिक खेती के प्रति नागरिकों को आकर्षित करना
5. प्राकृतिक खेती से जीवन मूल्यों से समाज को लाभान्वित करना
6. प्राकृतिक खेती से महिलाओं एवं बच्चों को सुपोषित करना

कृषि ने सभ्यता विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आज खाद्यान्न एवं दलहन, तिलहन की लाखों किस्मों का पादप किस्म संरक्षण एवं संवर्धन करने का श्रेय जाता है तो केवल प्राकृतिक खेती से ही उनका *जीनोम* संरक्षण हो पाया है जिससे आज वर्तमान में अधिक उपज देने वाली तथा कीटों एवं रोगों के प्रतिरोधक नवीन किस्मों का विकास भी इन्हीं संरक्षित किस्मों से संभव हो सका है। जिनमें प्रचुर मात्रा में उच्च गुणवत्तायुक्त पोषक तत्वों सहित विपुल फसल उत्पादन में आत्मनिर्भरता का श्रेय हरित क्रांति को जाता है। कृषि योग्य भूमि पर फसलों के उत्पादन के साथ–साथ भौतिक स्थलाकृतों संरचनाओं के आधार पर खेती को अपनाना ही मानव के लिए हितकर है। तदापि देखा जाए तो पहाड़ी क्षेत्रों में भी यही पद्धतियां अपनाई जा रही हैं। जलवायु अनुकूल फसल किस्मों का चयन काफी हद तक महत्वपूर्ण कारक होता है।

छत्तीसगढ़ के महान संत गुरू घासीदास जी ने कहा है सत्य से ही धरती टिकी है, सत्य से ही टिका आकाश है, सत्य से ही चंद्रमा और सूरज प्रकाश दे रहे हैं जिससे संपूर्ण विश्व जीव–जंतुओं के लिए प्रकाशवान जीवन संभव है।

"सत्य से धरती टिके, सत्य से टिके आकाश,

सत्य से चंदा और सूरज दे रहे हैं प्रकाश "

इसीलिए कहा गया है, "कृषि जीवनस्य आधारम्" कृषि ही जीवन का आधार है यही सत्य है।

प्राकृतिक खेती:– प्राकृतिक खेती से मतलब प्राय: यही माना व जाना जाता है कि बिना खेत की जुताई किए प्रकृति आधारित मिट्टी पलटने वाला केंचुआ या

सूक्ष्म जीवों का समावेशन से की जाने वाली खेती है। परंतु आज के आधुनिक समय में तथा जनसंख्या की उत्तरोत्तर बढ़ोत्तरी और मनुष्यों तथा जीव जंतुओं को भोजन पानी की उपलब्धता एक महत्वपूर्ण कारक है। प्राकृतिक खेती बिना किसी खाद एवं उर्वरकों के प्रयोग से की जाने वाली खेती है परंतु आज के वैज्ञानिक युग में प्राकृतिक आधारित *सूडोमोनास,* नील हरित शैवाल, *ट्राइकोडर्मा,* जीवामृत, *एफवाईएम,* स्फुर घोलक जीवाणु, कोलिगों, कार्बनिक एवं जैविक तत्वों का मृदा में समावेशन किया जाना उचित है। प्राकृतिक खेती बिना जुताई–गुड़ाई के बिना शाकनाशियों के प्रयोग से केवल उचित नियंत्रण पद्धतियाँ अपनाने की अनशंसा करती है परंतु वर्तमान परिदृश्य में जहां समय, धन, श्रम और पूंजी को बचाना होगा वहीं वैज्ञानिक पद्धतियों का अनुप्रयोग सफल एवं कारगर उपाय है जिसे अपनाया जाना चाहिए। प्राकृतिक खेती में अंधाधुंध खाद–उर्वरकों का प्रयोग प्रतिबंधित है। परंतु आज की परिस्थितियों में जहां सभी में कम श्रम व कम पूंजी लगाकर अधिक पैदावार लेने की सोच प्रबल है, उस स्थिति में वैज्ञानिक अनुशंसित प्राकृतिक जीवाणुओं का प्रयोग कर दलहनी फसलों की पैदावार बढ़ाकर फसल चक्र अपनाकर आज की स्थिति में प्राकृतिक खेती की ओर जा सकते हैं।

प्राकृतिक खेती से आर्थिक लाभ : प्राकृतिक खेती अपनाना आज की आवश्यकता है। अंधाधुंध प्रयोग की गई खाद एवं उर्वरकों के कारण एक ओर हमारी धरती की संरचना एवं उपजाऊपन नष्ट होने के कगार पर आ गई है। पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, जैसे विकासशील राज्यों में उत्पादन बढाने, लाभ कमाने के लिए अविवेकपूर्ण रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से आज हर पांचवा व्यक्ति कैंसर जैसी गंभीर एवं मधुमेह जैसे भयानक बीमारियों से जूझ रहा है, वहीं औद्योगीकीकरण ने एक ओर जल, जंगल एवं जमीन को प्रदूषित किया है जो मानव स्वास्थ्य के लिए अत्यंत हानिकारक है। अतः हमें प्राकृतिक खेती करनी है तो कृषि वैज्ञानिक प्रणालियों एवं अनुशंसाओं के आधार पर ही तथा बीज प्रमाणीकरण एवं जैविक प्रमाणीकरण, *ग्रीन ट्रिब्यूनेल* के आदेशों को कृतकल्पित करना आवश्यक है जिससे उच्च गुणवत्तायुक्त पोषक तत्वों से भरपूर फसल एवं फलोत्पादन को बढ़ावा मिले तभी प्राकृतिक खेती आर्थिक रूप से हितकर होगी।

प्राकृतिक खेती से स्वास्थ्य सुरक्षाः प्राकृतिक खेती के आज के आधुनिक युग में कल–कारखानों के भीषण प्रदूषण के बीच परिकल्पना करना होगा। हमें यह केवल गाँवों में खेती किसानी में की जा सकती है चूंकि ग्रामीण क्षेत्रों का वातावरण एवं मृदा आज भी कुछ हद तक उपजाऊ है तथा अधिक उर्वरकों का प्रयोग प्रायः किसान नहीं कर पाते क्योंकि गरीब किसानों के पास खाद खरीदने के लिए आय के स्रोत नहीं हैं और वे किसान आज भी आदिवासी संस्कृति से जहां खेती करते हैं जैसे छत्तीसगढ़ का बस्तर संभाग जहां वनांचल तराई पहाडी क्षेत्रों में किसान प्रकृति की गोद में केवल प्राकृतिक तौर से खेती करते आ रहे हैं। वहां की जलवायु वातावरण शुद्धता के साथ फसल किस्मों को प्राण वायु प्रदान करती है। उन क्षेत्रों की उगाई गई फसलें जो जैविक रूप से आज उत्पादित की जा रही है, वहां के उत्पादित फसल का स्वाद शरीर को अंग लगता है। कहने का तात्पर्य यही है कि उच्च शुद्धता गुणवत्तायुक्त फसलें एवं किस्मों के संरक्षण के साथ प्राप्त सब्जी भाजी में प्रचुर मात्रा में विटामिन, प्रोटीन, खनिज पोषक तत्व विद्यमान होते हैं जो मनुष्यों के लिए लाभदायक हैं।

प्राकृतिक खेती से सामाजिक सुरक्षा : प्राकृतिक खेती आज सुदूर वनांचल क्षेत्रों बस्तर संभाग, सरगुजा संभाग एवं पठारी क्षेत्रों में एक प्रकृति की पूजा करने वाली आदिवासियों द्वारा बहुत ही बेहतरीन तरीके से खेती को संरक्षित करते हुए समाज की शारीरिक वृद्धि एवं विकास को ध्यान में रखकर की जाती है। आज भी आदिवासी लोग प्राकृतिक खेती को ही महत्व देते हैं जिससे भले ही उनको आर्थिक लाभ कम हो परंतु वे लोग आज भी वातावरण जलवायु के अनुरूप खेती को महत्व दे रहे हैं जिससे समाज की आने वाले पीढ़ियों को पोषक गुणों से भरपूर उच्च गुणवत्ता के खाद्यान्न, तथा दलहन एवं तिलहन मिल सकें तथा साथ ही आम, इमली, बहेड़ा, बेर, उद्यानिकी फसलों के साथ–साथ जैव विविधता को संरक्षण एवं संवर्धन भी प्रदान कर रहे हैं।

कृषि में भारत को आत्मनिर्भर बनाने के उपाय

आशुतोष उपाध्याय एवं अनिल कुमार सिंह
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना, बिहार

भारत एक कृषि प्रधान देश है, और कृषि भारत की अर्थव्यवस्था की रीढ़ है. इसलिए अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाए रखने के लिए कृषि को वैज्ञानिक सोच के साथ विकसित करने पर बल दिया जाना चाहिए। पिछले वर्ष कोविड–19 महामारी के भीषण प्रकोप से देश की अर्थव्यवस्था चरमरा गई और इसका दुष्प्रभाव अभी तक देश झेल रहा है। इन विपरीत परिस्थितियों में भी देश के अन्नदाताओं ने अथक परिश्रम करके कृषि में अच्छा उत्पादन प्राप्त किया और देश को भुखमरी की कगार पर पहुँचने से बचा लिया। उनका योगदान सराहनीय है। भारत सरकार ने भी किसानों की सहायता करने के लिए व देश को कृषि में आत्मनिर्भर बनाने के लिए वृहद स्तर पर प्रयास आरम्भ किये हैं। वर्तमान में भारत का कृषि परिदृश्य, आत्मनिर्भरता का तात्पर्य, कृषि में आत्मनिर्भरता पाने के लिए सरकार के प्रयास आदि महत्वपूर्ण विषयों पर विचार व्यक्त किये गये हैं और हमारा देश कृषि में आत्मनिर्भर कैसे बन पाएगा और दीर्घकालीन स्थायित्व कैसे प्राप्त कर सकेगा इस पर चर्चा प्रस्तुत की गई है।

वर्तमान में भारत का कृषि परिदृश्य

भारतीय कृषि अपनी विविध जलवायु और भौगोलिक स्थिति के कारण अद्वितीय है और सभी प्रकार की जलवायु का आनंद उठाती है। जलवायु के अनुसार इसको 20 कृषि–जलवायु क्षेत्रों और 21 कृषि–पारिस्थितिकी क्षेत्रों में विभाजित किया गया है। कृषि अभी भी सबसे महत्वपूर्ण है क्योंकि यह सबसे अधिक 44% श्रम शक्ति का समायोजन करती है। यह राष्ट्रीय आय में 35% योगदान व सकल घरेलू उत्पाद में 19.90% योगदान देती है।

भारत की कृषि अर्थव्यवस्था पर एक नजर डालने पर यह ज्ञात होता है कि 2008–09 से 2018–19 भारत कृषि उपज का शुद्ध निर्यातक रहा है। भारत सरकार 2018 में 2022 तक कृषि निर्यात को दोगुना करने के उद्देश्य से एक नई कृषि निर्यात नीति लेकर आई है। हालांकि, 2019–20 में, कृषि–निर्यात महज 36 बिलियन डॉलर और कृषि–अधिशेष 11.2 बिलियन था। शुद्ध कृषि–अधिशेष उपरोक्त अवधि में गिर रहा है, जिससे किसानों की आय दोगुना करना और 2022 तक कृषि निर्यात दोगुना करना मुश्किल हो गया है।

भारत के कृषि उत्पाद निर्यात की टोकरी में समुद्री उत्पाद (6.7 बिलियन डॉलर), चावल (6.4 बिलियन डॉलर), मसाले (3.6 बिलियन डॉलर), भैंस का मांस (3.2 बिलियन डॉलर), चीनी (2 बिलियन), चाय और कॉफी (1.5 बिलियन डॉलर), ताजे फल और सब्जियां (1.4 बिलियन), और कपास (1 बिलियन) शामिल हैं। चावल और चीनी निर्यात पर भारी *सब्सिडी* उपलब्ध है, जबकि भारी निर्यात क्षमता वाली अन्य फसलों की अनदेखी की गई है। फलों और सब्जियों, मसालों, चाय और कॉफी और कपास जैसे उच्च मूल्य वाले कृषि –निर्यात के लिए प्रोत्साहन की आवश्यकता है।

तालिका 1. भारत द्वारा वर्ष 2018–19 मे किया गया कुल आयात निर्यात

सामान एवं सेवा	निर्यात		आयात	
	अंश (प्रतिशत)	+ बिलियन	अंश (प्रतिशत)	+ बिलियन
कृषि उत्पाद	12.8	42.2	8.1	41.6
ईंधन एवं खनन उत्पाद	13.8	45.5	30	154.2
निर्माता	70.6	232.7	51.7	265.7
अन्य	2.9	9.6	10.2	52.4
कुल		330		514
सकल व्यापार		844+ बिलियन		

भारतीय कृषि की प्रमुख विशेषताएं

- कृषि मुख्यतः निर्वहन व जीविकोपार्जन हेतु की जाती है।
- 60% कृषि अविश्वसनीय मानसून व्यवहार पर निर्भर है।
- भारत की बदलती जलवायु और मिट्टी की स्थिति के अनुसार विभिन्न प्रकार की फसलों का उत्पादन संभव है।
- 140 मिलियन हे. कृषि भूमि का 48.8% सिंचित है और शेष 51.2% वर्षा आश्रित है।
- वर्षा आधारित क्षेत्र की उत्पादकता लगभग 1.1 टन/हे. है जबकि सिंचित क्षेत्र की उत्पादकता 2.8 टन/हे. है।
- सभी उष्णकटिबंधीय, उपोष्ण कटिबंधीय और समशीतोष्ण फसलें यहाँ उगाई जाती हैं।
- यहाँ खाद्य फसलों की प्रधानता है, जो कुल मिलाकर फसली क्षेत्र का लगभग 2/3 है।
- बिजली, पानी, ऋण और विपणन की उचित व्यवस्था का अभाव है।
- दूध में पहला स्थान (विश्व उत्पादन का 17%), आम, केला, नारियल, काजू, पपीता, मटर, कसावा और अनार के उत्पादन में भी अग्रणी है।
- मसालों, बाजरा, दालों, सूखी बीन और अदरक आदि का सबसे बड़ा उत्पादक और निर्यातक है।
- कुल मिलाकर सब्जी, फलों और मछलियों का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक देश है।
- देश में खरीफ, रबी और जायद तीन मुख्य फसल मौसम हैं।
- भारत का 70% खाद्यान्न उत्पादन सिंचित क्षेत्र से होता है।
- देश का लगभग 498 लाख हे. बाढ़ग्रस्त है और हर वर्ष लगभग 80 लाख हे. बाढ़ से प्रभावित होता है।
- देश में जलभराव क्षेत्र लगभग 116 लाख हे. है।
- उचित मात्रा में अच्छी गुणवत्ता वाले आदानों का सही समय पर उपयोग न हो पाना कम उत्पादन के प्रमुख कारक हैं।
- खेती की प्रक्रिया के दौरान देखभाल/प्रबंधन का सामान्यतः अभाव रहता है।
- भंडारण, प्रसंस्करण, मूल्य संवर्धन और उचित मूल्य पाने के लिए उपयुक्त बाज़ार की अनुपलब्धता है।
- कम बीज प्रतिस्थापन अनुपात और उन्नत प्रौद्योगिकी को न/कम अपनाना भी कम उत्पादन का कारण है।
- छोटे और खंडित भूमि की जोत हैं और किसानों की जोखिम लेने की क्षमता भी अत्यन्त कम है।

आत्मनिर्भरता का तात्पर्य

वर्तमान वैश्वीकरण के युग में आत्मनिर्भरता की परिभाषा में बदलाव आया है। आत्मनिर्भरता, आत्मकेंन्द्रिता से अलग है। भारत 'वसुधैव कुटुंबकम' की संकल्पना में विश्वास करता है क्योंकि भारत दुनिया का ही एक हिस्सा है। अतः भारत प्रगति करता है तो ऐसा करके वह दुनिया की प्रगति में भी योगदान देता है। आत्मनिर्भर भारत के निर्माण में वैश्वीकरण का बहिष्करण या संरक्षणवाद को बढ़ावा नहीं दिया जाएगा अपितु दुनिया के विकास में मदद की जाएगी। इसका तात्पर्य यह हुआ कि हमें उच्च गुणवत्ता वाले उत्पादों का अधिक मात्रा में उत्पादन करना होगा ताकि हम देश की आवश्यकता को पूर्ण कर सकें। साथ ही साथ, वैश्विक बाज़ार में भी उत्पादों का गुणवत्ता स्तर प्रतिस्पर्धा में भाग लेकर श्रेष्ठ साबित कर पायें और अंतर्राष्ट्रीय बाज़ारों में हमारे उत्पादों की मांग बढ़े। इससे ही हम आत्मनिर्भर बन पाएंगे और हमारी आर्थिक स्थिति मजबूत होगी।

अभी भी भारत कुछ आवश्यक कृषि वस्तुओं में आत्मनिर्भर नहीं है और आयात पर बहुत अधिक निर्भर करता है। अतः उच्च मूल्य वाले कृषि उत्पादों जैसे फलों, सब्जियों, मसाले, चाय और कॉफी आदि को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। नीति निर्माताओं को "तुलनात्मक लाभ" के सिद्धांत को ध्यान में रखने की आवश्यकता है अर्थात न्यूनतम लागत की फसलों का उत्पादन करना और निर्यात करना। इसी तरह तिलहन और दलहनी फसलें हैं, जहाँ "आत्मनिर्भरता" उच्च आयात शुल्क लगाकर पाने की नहीं है, बल्कि उत्पादकता बढ़ाने और तिलहन के उत्पादन से तेल के *रिकवरी* अनुपात को बढ़ाने के मामले में और प्रतिस्पर्धात्मक लाभ लेने की है। सरसों, सूरजमुखी, मूँगफली आदि में तेल उत्पादन को कुछ हद तक बढ़ाने की क्षमता है, जबकि *पाम* तेल में संभावनाएं अधिक हैं। *पाम* ही एक ऐसा पौधा है जो एक हे. से चार टन तेल दे

सकता है। भारत में लगभग 20 लाख हे. क्षेत्र *पाम* खेती के लिए उपयुक्त है। इससे 80 लाख टन *पाम* तेल प्राप्त किया जा सकता है। लेकिन इसके लिए दीर्घकालिक दृष्टि और रणनीति की जरूरत है।

आत्मनिर्भर भारत के पांच मुख्य स्तंभ निम्नलिखित हैं:

- **अर्थव्यवस्था:** जो वृद्धिशील परिवर्तन के स्थान पर बड़ी उछाल पर आधारित हो।
- **अवसंरचना:** ऐसी अवसंरचना जो आधुनिक भारत की पहचान बने।
- **प्रौद्योगिकी:** 21वीं सदी प्रौद्योगिकी संचालित व्यवस्था पर आधारित प्रणाली।
- **गतिशील जन:** जो भारत के लिए ऊर्जा का स्रोत हैं।
- **मांग:** भारत की मांग व आपूर्ति श्रृंखला की पूरी क्षमता का उपयोग किया जाना चाहिए।

तालिका 2 : वर्ष 2018–19 एवं 2019–20 में कृषि उत्पादन

फसल	उत्पादन (मिलियन टन)		
	2018–19	2019–20	वृद्धि
गेहूँ	103.60	106.21	+2.61
चावल	107.80	117.47	+9.67′
धान्य	43.06	45.24	+2.16
दलहन	20.26	23.02	+2.76′
कुल तिलहन	31.52	34.19	+2.67
ईख	349.78	353.85	+4.07
कपास	28.04	34.89	+6.85
अनाज	285.21	295.67	+10.46

170 किलो की मिलियन बेलें, ′पंच वर्षीय औसत उत्पादन

सांख्यिकी

कृषि और अन्य क्षेत्रों को इन परिवर्तनों के अनुरूप तैयार कर औद्योगिक विकास के साथ–साथ ग्रामीण अर्थव्यवस्था में ध्यान दिया जा सकता है। उदाहरण के लिए विभिन्न प्रकार की कृषि उत्पादों की *पैकेजिंग* या उनसे बनने वाले अन्य उत्पादों के निर्माण हेतु स्थानीय स्तर पर छोटी औद्योगिक इकाईयों की स्थापना को बढ़ावा देकर औद्योगिक उत्पादन संख्या में ग्रामीण क्षेत्रों की भागीदारी सुनिश्चित की जा सकती है ।

वोकल फॉर लोकल: सरकार की नई पहल

सरकार ने अब घरेलू कृषि उत्पादों को बढ़ावा देने पर *फोकस* किया है। घरेलू कृषि उत्पादों को *ब्रांड* बनाने और दुनिया भर में लोकप्रिय करने के लिए सरकार ने प्रसिद्ध खाद्य उत्पादों के लिए *क्लस्टर* बनाने की योजना बनाई है। ये *क्लस्टर* अलग–अलग राज्यों में, (जहाँ का जो उत्पाद प्रसिद्ध होगा) बनाए जाएंगे। असंगठित खाद्य प्रसंस्करण इकाई के लिए भी सरकार ने ₹10 हजार करोड़ का प्रावधान किया है। प्रसिद्ध खाद्य उत्पादों के लिए *क्लस्टर* बनाए जाने और खाद्य प्रसंस्करण इकाई के लिए *फंड* मिलने से करीब 2 लाख इकाई को फायदा मिलने की उम्मीद है। देश में अलग–अलग राज्यों में अलग–अलग कृषि उत्पाद लोकप्रिय हैं। कहीं हल्दी, कहीं मसाले, कहीं आम, कहीं सेब, कहीं मखाना या अन्य कृषि उत्पाद। उत्तर प्रदेश का आम, जम्मू कश्मीर की केसर, आंध्र प्रदेश की मिर्च, तमिलनाडु की हल्दी लोकप्रिय हैं। सरकार का मानना है कि *क्लस्टर* तैयार किए जाने की योजना से स्थानीय कृषि उत्पाद को पहचान दिलाने और *ब्रांड* बनाने में मदद मिलेगी। देश के माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने हाल ही में *वोकल फॉर लोकल* की बात कहते हुए घरेलू उत्पादों को बढ़ावा देने की बात कही थी। उनका कहना था कि आत्मनिर्भर भारत बनाने के लिए स्थानीय उत्पादों को बढ़ावा देना होगा। उन्होंने नागरिकों से अपील की थी कि *लोकल* के लिए *वोकल* भी बनें। अब सरकार ने आत्मनिर्भर भारत के तहत दिए जाने वाले राहत *पैकेज* में इस योजना के लिए काम करना शुरू कर दिया है।

कृषि में आत्मनिर्भर बनने के लिए क्या करना होगा?

स्थानीय कृषि उत्पादों की *ब्रांडिंग* : स्थानीय कृषि उत्पादों के *ब्रांड* को बढ़ावा देना सबसे महत्वपूर्ण है क्योंकि यह मूल्य के दुष्चक्र को दूर करने में मदद करता है और किसान को उत्पादों की गुणवत्ता के बारे में अधिक जागरूक बनाता है। केवल *ब्रांडेड* गुणवत्ता वाले उत्पादों में 2% से अधिक निर्यात हिस्सेदारी बढ़ाने की

प्रबल संभावना है।

स्वदेशी प्रौद्योगिकी ज्ञान: स्वदेशी मिशन 2.0 में कृषि में स्वदेशी प्रौद्योगिकी ज्ञान आईटीके के प्रचार पर जोर देने की आवश्यकता बताई गई है जिसमें तकनीक पोषण, बीमारी और कीटों से निपटने में स्थानीय संसाधनों पर निर्भर हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में नवाचार को बढ़ावा देना: स्थानीय स्तर पर ग्रामीण नवाचारों को लाने का आग्रह है। इस तरह के नवाचारों को एक राष्ट्रीय स्तर की *रजिस्ट्री* में पंजीकृत करने की आवश्यकता होती है, जो बदले में, *पेटेंट* दाखिल करने में मदद कर सकती है और उद्यमों के लिए सूक्ष्म उद्यम पूंजी प्राप्त कर सकती है।

***एफपीओ* को प्राथमिकता देने वाला क्षेत्र:** खाद्य उत्पादक संगठन (*एफपीओ*) वर्तमान में ब्याज के दायरे से बाहर हैं जो व्यक्तिगत किसानों के लिए उपलब्ध हैं। *एफपीओ* को *एसएचजी* के साथ एक ही धरातल पर लाने के लिए प्राथमिकता क्षेत्र ऋण के दायरे में लाया जाना चाहिए।

एग्री बिजनेस बैंक: चीन, फिलीपींस और अन्य देशों की तर्ज पर एक विशेष कृषि–व्यवसाय बैंक स्थापित करना आवश्यक है। इस तरह के समर्पित *बैंकिंग* संस्थान कुछ हद तक धन की समस्या को हल कर सकते हैं।

अधिक जल खपत वाली फसलों के निर्यात में कमी: धान व गन्ने की खेती के लिए मुफ्त में बिजली व खाद (मुख्यतः नत्रजन) पर अनुदान मिलने के कारण अमूल्य जल संसाधन का अपव्यय हो रहा है। क्योंकि एक किलो ग्राम धान उत्पादन में 3,500–5,000 लीटर जल व एक किलो ग्राम गन्ना उत्पादन में लगभग 2,000 लीटर जल की खपत होती है। इसलिए पंजाब व हरियाणा में धान की खेती व महाराष्ट्र में गन्ने की खेती के कारण भूजल स्तर बहुत नीचे जा रहा है. इसमें कमी करने की आवश्यकता है।

फसल प्रणाली में सुधार की आवश्यकता: कृषि पारिस्थितिकी के अनुसार फसल प्रणाली में सुधार को प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है।

कृषि क्षेत्र के लिए वित्त मंत्री की 10 बड़ी घोषणाएं

1. किसानों की आमदनी बढ़ाने के लिए एक लाख करोड़ रुपए किसानों की खाद्यान्न भंडारण और संवर्धन संबंधी समस्या दूर करने के लिए आवंटित किये गए हैं। जब किसानों की उपज होती है तो भण्डारण के अभाव में उसे कम दाम में बेचना पड़ता है। ऐसे में किसानों को इसके लिए एक लाख करोड़ रुपए का *फंड* दिया जायेगा। इसे गोदाम और *स्टोरेज सेक्टर* को बढ़ावा देने में खर्च किया जायेगा।
2. मत्स्य पालन और *कोल्ड चेन* के लिए ₹ 20,000 करोड़ प्रधानमंत्री मत्स्य संपदा योजना के अंतर्गत देने की घोषणा हुई है। इसमें से ₹ 11,000 हजार करोड़ समुद्री और अंतर्देशीय मत्स्य पालन पर खर्च होंगे जबकि ₹ 9,000 करोड़ से *कोल्ड चेन* बनाए जाएंगे। सरकार का दावा है कि इससे मछली का उत्पादन अगले पांच साल में 70 लाख टन होगा जबकि इससे 55 लाख लोगों को रोजगार भी मिलेगा। सरकार का एक लाख करोड़ रुपए के निर्यात का लक्ष्य है। मछुआरों और नावों का बीमा भी कराया जाएगा।
3. पशुओं के टीकाकरण के लिए ₹ 13,343 करोड़ आवंटित कर सरकार देश के 52 करोड़ पशुओं (गाय, भैंस, बकरी, शूकर आदि) को टीका लगाने की योजना लेकर आई है। इससे पशुओं को बीमारियों से बचाया जा सकेगा। दूध का उत्पादन भी बढ़ेगा। लगभग 1.5 करोड़ गायों को टीका लगाया जा चुका है।
4. सरकार ने पशुपालन क्षेत्र की बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के लिए ₹ 15,000 करोड़ रुपए का आवंटन किया है। *लॉकडाउन* के दौरान दूध की मांग 20–25 फीसदी घटी है। नई योजना के तहत *डेयरी कोऑपरेटिव्स* को वर्ष 2020–2021 के लिए ब्याज में 2 फीसदी प्रति वर्ष की छूट मिलेगी। इसके अलावा जो लोग जल्द भुगतान करेंगे उन्हें अतिरिक्त दो फीसदी ब्याज की छूट दी जाएगी। वित्त मंत्री सीतारमण ने कहा कि इससे दो करोड़ किसानों को फायदा पहुंचेगा और इसका कुल ₹ 5,000 करोड़ का खर्च आएगा। बाकी के पैसे डेयरी प्रसंस्करण, मूल्य संवर्धन और पशु चारे के लिए खर्च होंगे।
5. वित्त मंत्री ने सूक्ष्म, खाद्य संस्करण इकाईयों के लिए 10 हजार करोड़ रुपए की योजनाओं की घोषणा की है। इससे करीब दो लाख सूक्ष्य इकाईयों को फायदा मिल सकता है। योजना

समूह (*क्लस्टर*) आधारित होगी। इसमें स्थानीय कंपनियों को सहयोग दिया जायेगा। जैसे बिहार का मखाना, उत्तर प्रदेश के आम, जम्मू–कश्मीर के केसर जैसी खेती में *क्लस्टर* बनाया जाएगा।

6. *हर्बल* खेती को बढ़ावा देने के लिए ₹ 4,000 करोड़ का आवंटन भारत में *हर्बल* खेती को बढ़ावा देने के लिए सरकार ने किया है। इसके तहत दो वर्षों में *हर्बल* खेती के तहत 10 लाख हेक्टेयर को *कवर* करने का लक्ष्य है। इसके जरिए गंगा के किनारों पर औषधीय पौधों का गलियारा बनाया जाएगा। वित्त मंत्री ने कहा कि इससे किसानों को ₹ 5,000 करोड़ तक की आमदनी होगी। जन औषधि की खेती करने के साथ उसका *नेटवर्क* किया जा रहा है।

7. मधुमक्खी पालन को बढ़ाने का लक्ष्य निर्धारित करते हुए संबंधित बुनियादी ढांचे के विकास के लिए सरकार एक योजना लागू करेगी। इसमें महिलाओं की क्षमता निर्माण पर विशेष जोर देने के साथ दो लाख मधुमक्खी पालकों के लिए आय बढ़ाने का लक्ष्य है। मधुमक्खी पालन करने वाले किसानों के लिए ₹ 500 करोड़ का *पैकेज* दिया जाएगा। ग्रामीण इलाकों में जो लोग मधुमक्खी पालन करते हैं उन्हें इससे सहयोग मिलेगा। दो लाख मधुमक्खी पालन करने वाले लोगों की आमदनी बढ़ेगी।

8. आवश्यक वस्तु अधिनियम में बदलाव लाया जायेगा। सरकार ने कहा है कि किसानों के लिए बेहतर मूल्य प्राप्ति को आसान करने के लिए सरकार आवश्यक वस्तु अधिनियम 1955 में संशोधन करेगी। इससे किसानों को अनाज, खाद्य तेल, तिलहन, दालें, प्याज और आलू आदि को कम कीमत में नहीं बेचना पड़ेगा।

9. *ऑपरेशन ग्रीन्स* को टमाटर, आलू और प्याज से बढ़ाकर सभी फलों और सब्जियों तक किया गया है। इसके लिए ₹ 500 करोड़ का प्रावधान किया गया है। इससे पहले इस योजना में टमाटर, आलू और प्याज को ही शामिल किया गया था। इसके अलावा सरकार ने न्यूनतम समर्थन मूल्य देने के लिए ₹ 74,300 करोड़ के कृषि उत्पाद खरीदे और *पीएम* किसान *फंड* के तहत ₹ 18,700 करोड़ किसानों को दिए गए।

निष्कर्ष

भारत को कृषि में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए कई चुनौतियों का सामना करना होगा। अन्नदाताओं पर न केवल देश की बढ़ती हुई जनसंख्या के भरण पोषण का उत्तरदायित्व है वरन यह भी चुनौती है कि कृषि उत्पादो की गुणवत्ता में सुधार लाएं ताकि उनका निर्यात हो सके और देश की आय बढ़ सके। इसके लिए सरकार का प्रयास *'वोकल फॉर लोकल '* (जिसमें स्थान विशेष के प्रसिद्ध कृषि उत्पादों की गुणवत्ता वृद्धि, प्रसंस्करण, उचित भण्डारण व मूल्य संवर्धन पर बल दिया गया है), भारत को कृषि में आत्मनिर्भर बनाने के लिए एक सराहनीय कदम है।

माननीय प्रधानमंत्री जी के अनुसार, पहले इस देश में एक किसान अपना कृषि उत्पाद अपनी शर्तों के अनुसार नहीं बेच सकता था। अब एक किसान अपनी शर्तों पर बेच सकता है। निवेश लागत को कम करने के लिए कदम उठाने की कोशिश भी की गयी है। समय की जरूरत है कि खाद्य प्रसंस्करण, *पैकेजिंग* सहित हमारा कृषि क्षेत्र मजबूत हो। इसके लिए भारत सरकार ने किसानों को आधुनिक बुनियादी ढांचा देने के लिए कृषि अवसंरचना कोष को एक लाख करोड़ रुपये आवंटित किए हैं।

अंत में यह कहा जा सकता है, कि भारत सरकार ने कृषि में देश को आत्मनिर्भर बनाने के लिए उचित कदम उठाए हैं। कोविड उपरांत *पोस्ट कोविड* किसानों की मदद करने के लिए व कृषि अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए राहत *पैकेज* की घोषणाएं की हैं। आवश्यकता इस बात की है कि विभिन्न मदों में जो घोषणाएं की गयी हैं, वे सभी के सहयोग से सही प्रकार से लागू हों। ऐसा प्रतीत होता है कि भविष्य में इन योजनाओं का सकारात्मक परिणाम मिलेगा और भारत कृषि में न केवल आत्मनिर्भर बन पाएगा वरन दूसरे देशों को गुणवत्तापूर्ण उत्पाद निर्यात करके विश्व पटल पर पुनः अपनी पहचान बनाएगा।

आत्मनिर्भर भारत में खाद्य स्वावलंबन हेतु कृषि अनुसंधान की भूमिका

कामिनी सिंह, लाल सिंह गंगवार, ब्रह्म प्रकाश, अनीता सावनानी एवं ओम प्रकाश

भाकृअनुप – भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

भारत में कृषि क्षेत्र, कई विकासशील देशों की तरह, एक महत्वपूर्ण स्थिति पर कायम है, और सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 20 प्रतिशत योगदान देता है। इस क्षेत्र में लगभग दो–तिहाई कार्यबल कार्यरत हैं। अर्थव्यवस्था का समग्र प्रदर्शन काफी हद तक इस क्षेत्र पर निर्भर है। स्वतंत्रता के बाद की अवधि में, कृषि वैज्ञानिकों द्वारा प्रौद्योगिकी नीति को सकारात्मक नीति समर्थन, कृषि अनुसंधान और विकास के लिए अधिक से अधिक सार्वजनिक धन और किसानों के समर्पित कार्य के साथ मिलकर भारत में कृषि, पशु और मछली प्रस्तुतियों में अभूतपूर्व वृद्धि में योगदान दिया है। इस रणनीति की सफलता के लिए स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात कृषि के विकास हेतु सुसंगत और संतुलित दृष्टिकोण अपनाया गया जैसे *"भूमि सुधारों के एजेंडा"* ने कृषि विकास की रणनीति का नेतृत्व किया। तत्पश्चात बांधों के विकास को "आधुनिक भारत के मंदिर" के रूप में चिन्हित किया गया। *ग्रो मोर फूड कैंपेन* (1940) और *इंटीग्रेटेड प्रौडक्शन प्रोग्राम* (1950) को खाद्य एवं नकदी फसलों की आपूर्ति के लिए बनाया गया। 1960 से उत्पादन क्रांतियों की एक श्रृंखला का प्रारंभ हुआ जिसमे हरित क्रांति; पीली क्रांति (तिलहन उत्पादन से संबंधित 1986–1909), *ऑपरेशन फ्लड* (डेयरी–1970–1996), और नीली क्रांति (मत्स्य पालन–1973–2002) इत्यादि सम्मिलित हैं। इनमे से हरित और श्वेत क्रांतियों ने भारतवासियों के जीवन को बड़े पैमाने पर प्रभावित करना शुरू कर दिया। जहाँ तक खाद्य सुरक्षा का संबंध है, भारत को खाद्य आत्मनिर्भरता के साथ कोई समझौता नहीं करना चाहिए। हालाँकि इस संबंध में कई अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन कदम उठाए जाने हैं। हरित क्रांति का उद्देश्य अनाज के उत्पादन में वृद्धि करना था। इस कदम से अनाज के आयात में भारी कमी आई है। हरित क्रांति की बदौलत हम अब अनाज उत्पादन के क्षेत्र में आत्मनिर्भर हो गए हैं और हमारे पास अनाज का प्रचुर भण्डार मौजूद है। हम अब अनाज का निर्यात करने में सक्षम हो गए हैं। हरित क्रांति के कारण खेती के तौर–तरीकों में बहुत परिवर्तन आया है। इसके कारण विभिन्न प्रकार की मशीनों, रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों, खरपतवारों को नष्ट करने के तरीकों की मांग काफी बढ़ गई है और इसके परिणामस्वरूप कृषि आधारित उद्योग पनप रहे हैं तथा देश में भारी मात्रा में रोज़गार के अवसर पैदा हो रहे हैं। इसके अतिरिक्त भूमि सुधार, भूमि विकास, मशीनीकरण, विद्युतीकरण, विशेष रूप से रसायनों– उर्वरकों का उपयोग तथा सरकारी पर्यवेक्षण के अंतर्गत शीघ्र ही एकल पहलू को बढ़ावा देने के बजाय कार्यों की एक व्यवस्था अपनाने के लिए कृषि उन्मुख *'पैकेज एप्रोच'* का विकास किया गया।

कृषि अनुसंधानों का योगदान

पिछले तीन दशकों में भारतीय कृषि में बहुत विकास हुआ है, अब देश आत्मनिर्भरता के लिए भोजन की कमी के युग से उभरा है, और हम कुछ खाद्यान्न के भी निर्यातक बन गए हैं। खाद्यान्न उत्पादन 1950–51 के समय से अब बढ़कर 2030 लाख टन हो गया हैं। इसके अलावा, तिलहन, फल, सब्जियां, दूध, मुर्गी और मछली के उत्पादन में भी प्रभावशाली प्रगति हुई है। यह सब स्वदेशी रूप से उत्पन्न विज्ञान और प्रौद्योगिकियों के अत्याधुनिक होने के कारण संभव हुआ हैं। देश में कृषि क्रांतियों का नेतृत्व करने के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, जो कृषि अनुसंधान और समन्वय का एक सर्वोच्च संगठन है, सबसे आगे रहा है। 1929 में अपनी स्थापना के बाद से भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद एक जीवंत संगठन के रूप में उभरा, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के 102 शोध संस्थान, 11 कृषि प्रौद्योगिकी अनुप्रयोग शोध संस्थान (अटारी) 725 कृषि विज्ञान केन्द्र शामिल हैं। 3 केंद्र और 73 राज्य कृषि विश्वविद्यालय (*एसएयू*), देश की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। इसके अलावा, पिछले कुछ वर्षों के दौरान, हमने कृषि प्रौद्योगिकी उत्पादन और प्रसार के निजी क्षेत्र में, गैर–सरकारी संगठनों और किसान संगठनों की उभरती भूमिका देखी है। विकासात्मक प्रयासों और बुनियादी ढाँचे के निर्माण, जैसे कि सिंचाई प्रणाली, उर्वरक और रसायन उद्योग, भूतल परिवहन

प्रणाली, ग्रामीण ऋण प्रणाली, विपणन और भंडारण सुविधाओं के विधिवत अनुसंधान और शैक्षिक प्रयासों ने यह सब सुनिश्चित किया हैं।

विकासशील देशों में वर्ष 2020 में अनाज, मांस और मांस उत्पादों की मांग में लगभग, 58, 18 और 56% तक की बढ़ोत्तरी हुई है। उत्पादन में बहुत तीव्र वृद्धि के बावजूद विकसित देशों की तुलना में गरीब विकासशील देशों के लिए, मांग–आपूर्ति के अंतर को कम करने का काम बहुत कठिन होता हैं। दक्षिण एशिया में घरेलू मांग को पूरा करने के लिए, वर्ष 2020 में उत्पादन में वृद्धि (1994–96 औसत प्रस्तुतियों से) हुई हैं जैसे कि खाद्यान्नों में 55%, फलों में 142%, दूध में 28%, मांस में 57% और मछली में 24% का क्रम रहेगा। यह सब कृषि शोध संस्थानों के अनुसंधानों और कुशल प्रयासों द्वारा संभव हुआ है।

कृषि अनुसंधानों द्वारा किए गए प्रयास

वर्ष 2020 में प्रधानमंत्री ने देश को 8 फसलें समर्पित की जो विकसित जैव–विविधता वाली किस्में पोषण तत्व के मामले में 3.0 गुना अधिक हैं। चावल की किस्म सीआर धान 315 जस्ता की अधिकता वाली है; गेहूं की एचडी 3298 किस्म प्रोटीन और लौह से जबकि डीबीडब्लू 303 और डीडीडब्लू 48 प्रोटीन और लौह से समृद्ध है। मक्का की संकर किस्म 1, 2 और 3 लाइसिन और ट्रिप्टोफैन से, बाजरे की सीएफएमवी 1 और 2 फिंगर किस्म कैल्शियम, लोहा और जस्ता से भरपूर है। स्मॉल *मिलेट्स* की सीसीएलएमवी 1 किस्म लौह और जस्ते से भरपूर हैं। पूसा सरसों 32 कम एरियूसिक एसिड से जबकि मूंगफली की गिरनार 4 और 5 किस्म बढ़े हुए ओलिक एसिड से तथा रतालू की श्री नीलिमा तथा डीए 340 किस्म एंथोसायनिन से भरपूर है, फसलों की ये किस्में, अन्य खाद्य सामग्री के साथ, सामान्य भारतीय थाली को पोषक तत्वों वाली थाली में बदल देंगी। इन किस्मों को स्थानीय भूमि और किसानों द्वारा विकसित किस्मों का उपयोग करके विकसित किया गया है। उच्च जस्ता युक्त चावल की किस्म गारो पर्वतीय क्षेत्र तथा गुजरात के डांग जिले से संग्रहित की गई है।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने पोषण संबंधी सुरक्षा को बढ़ाने के लिए परिवार को खेती से जोड़ने के लिए *न्यूट्री–सेंसिटिव एग्रीकल्चर रिसोर्सेज एंड इनोवेशंस (एनएआरआई)* कार्यक्रम शुरू किया है, पोषण सुरक्षा बढ़ाने के लिए पोषक–स्मार्ट गाँवों और स्थानीय स्तर पर उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए कृषि विज्ञान केन्द्रों द्वारा सूक्ष्म पोषक तत्वों से युक्त स्वस्थ और विविध आहार स्थानीय स्तर पर उपलब्ध कराए जाने के लिए विशिष्ट पोषण उद्यान मॉडल विकसित और प्रचारित किए जा रहे हैं। कुपोषण को कम करने और प्राकृतिक रूप से समृद्ध खाद्य सामग्री के माध्यम से भारत को कुपोषण से मुक्त बनाने के लिए *बायोफॉर्टिफाइड* फसलों की किस्मों के उत्पादन को बढ़ावा देकर इन्हें मध्यान्ह भोजन, आंगनवाड़ी आदि जैसे सरकारी कार्यक्रमों के साथ जोड़ा जाएगा। यह किसानों के लिए अच्छी आमदनी सुनिश्चित करेगा तथा उनके लिए उद्यमिता के नए मार्ग खोलेगा।

कुपोषण की समस्या से निबटने के प्रयास में भारत ने 10 करोड़ से अधिक लोगों को लक्षित करते हुए एक महत्वाकांक्षी पोषण अभियान शुरू किया है, जिसका उद्देश्य शारीरिक विकास में बाधा, कुपोषण, एनीमिया और जन्म के समय कम वजन जैसी समस्या से निजात पाना है। कुपोषण एक वैश्विक समस्या है जिसके कारण दो अरब लोग मूल पोषक तत्वों की कमी से पीड़ित हैं। बच्चों में लगभग 45 प्रतिशत मौतें कुपोषण से जुड़ी हैं। ऐसे में यह अभियान सही मायने में संयुक्त राष्ट्र के 17 सतत विकास लक्ष्यों में से एक है। अंतर्राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के अनुरुप सूक्ष्म पोषक तत्वों लौह, जस्ता, कैल्शियम, सकल प्रोटीन, लाइसिन और ट्रिप्टोफैन की अधिकता वाले गुणवत्ता युक्त प्रोटीन, एन्थोकायनिन, प्रोविटामिन ए और ओलिक एसिड से भरे पोषक तत्वों की समृद्ध किस्मों के विकास को सरकार द्वारा सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के नेतृत्व में राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान प्रणाली के तहत पिछले पांच वर्षों के दौरान फसलों की 53 ऐसी किस्मों का विकास किया गया है। वर्ष 2014 से पहले केवल एक *बायोफॉर्टिफाइड* किस्म विकसित की गई थी। समाज के कमजोर वर्गों और समूहों को आर्थिक रूप से और पोषाहार के मामले में सशक्त बनाने के लिए खाद्य एवं कृषि संगठन के अब तक के प्रयास अद्वितीय रहे हैं। भारत का खाद्य एवं कृषि संगठन के साथ ऐतिहासिक संबंध रहा है। वर्ष 2016 को अंतर्राष्ट्रीय दलहन और 2023 को अंतर्राष्ट्रीय बाजरा वर्ष घोषित किए जाने के भारत के प्रस्तावों को भी खाद्य एवं कृषि संगठन द्वारा समर्थन दिया गया।

कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा किए गए प्रयास

भारत सरकार की केंद्रीय बीज उपसमिति ने वर्ष 2021 में इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर द्वारा विकसित विभिन्न फसलों की 12 नवीन किस्मों को व्यावसायिक खेती एवं गुणवत्ता बीज उत्पादन के लिए अधिसूचित किया है। इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर में विकसित चावल की तीन, गेहूं की दो, चने की एक, सोयाबीन की तीन, कुसुम की एक और अलसी की दो नवीन किस्मों को छत्तीसगढ़ तथा देश के अन्य राज्यों में व्यावसायिक खेती एवं गुणवत्ता बीज उत्पादन के लिए अधिसूचित किया गया है। आगामी वर्षों में विश्वविद्यालय द्वारा विकसित इन सभी नवीन किस्मों को व्यावसायिक खेती तथा गुणवत्ता बीजोत्पादन कार्यक्रम में लिया जाएगा। केंद्रीय बीज उपसमिति ने इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय में विकसित जिन नवीन फसल किस्मों को अधिसूचित किया है, उनमें धान की तीन नवीन किस्मों – विक्रम टीसीआर (छत्तीसगढ़ चावल), सीजी जवांफूल (आरटीआर–31), सीजी बरानी धान–2 (आरआरएफ–105) को छत्तीसगढ़ राज्य के लिए अधिसूचित किया गया है। गेहूं की नवीन किस्म – सीजी 1029 (कनिष्क) को छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, गुजरात, राजस्थान के (कोटा और उदयपुर संभाग) और उत्तर प्रदेश के (झांसी संभाग) और छत्तीसगढ़ हंसा गेहू (सी.जी.–1023) को छत्तीसगढ़ राज्य के लिए अधिसूचित किया गया है। विश्वविद्यालय द्वारा विकसित चना की नवीन किस्म–आरजी 2015–08 (सीजी लोचन चना) को छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश राज्यों के लिए अधिसूचित किया गया है।

इसी प्रकार सोयाबीन की नवीन किस्म

आरएससी 11–07 को पूर्वी क्षेत्र (पश्चिम बंगाल, बिहार, झारखण्ड, ओडिशा और छत्तीसगढ़ तथा दक्षिणी क्षेत्र (दक्षिण महाराष्ट्र, कर्नाटक, तेलंगाना, आन्ध्र प्रदेश और तमिलनाडु) राज्यों के लिए अधिसूचित किया गया है। सोयाबीन की किस्म आरएससी 10–46 को पूर्वी क्षेत्र (पश्चिम बंगाल, बिहार, झारखण्ड, ओड़िशा और छत्तीसगढ़) तथा मध्य क्षेत्र (मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश के बुंदेलखण्ड क्षेत्र, राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्र के मराठवाड़ा और विदर्भ) क्षेत्र के लिए अधिसूचित किया गया है।

निष्कर्ष

कृषि उत्पादन और घरेलू खाद्य और पोषण सुरक्षा की अस्थिरता के बारे में हाल ही में कई मुद्दे सामने आए हैं जैसे कि मृदा–स्वास्थ्य, जल उपलब्धता और इसकी गुणवत्ता, पर्यावरण प्रदूषण, जैव विविधता की हानि, ज्ञान के प्रवाह में बाधाएं, नए विज्ञान के दोहन में बौद्धिक संपदा अधिकारों के प्रभाव, गैर–प्रशुल्क अवरोधों को कम करने के लिए बढ़ती आबादी, गिरावट और बिगड़ती प्रवृत्ति, भोजन के लिए आर्थिक और पर्यावरणीय पहुंच, कुछ महत्वपूर्ण मुद्दे हैं जिन पर ध्यान देना नितान्त आवश्यक हैं।

महिला सशक्तिकरण–आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ते कदम

अनीता सावनानी
भाकृअनुप – भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

सशक्तिकरण एक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से व्यक्ति अपने विषय में निर्णय लेने के लिए समर्थ एवं स्वतंत्र होता हैं। इस दृष्टि से देखें तो नारी का सशक्तिकरण एक सर्वांगीण व बहुआयामी दृष्टिकोण है। यह राष्ट्र निर्माण की मुख्य धारा में महिलाओं की पर्याप्त व सक्रिय भागीदारी में विश्वास रखता है। एक राष्ट्र का सर्वांगीण व समरसता पूर्ण विकास तभी संभव है जब महिलाओं को समाज में उनका यथोचित स्थान दिया जाए। उन्हें पुरुषों के साथ–साथ विकास का सहभागी माना जाए। सशक्तिकरण के अंतर्गत महिलाएं अपने आर्थिक स्वावलम्बन, राजनैतिक भागीदारी व सामाजिक विकास के लिए आवश्यक विभिन्न कारकों पर पहुँच व नियंत्रण प्राप्त करती हैं। अपनी शक्तियों व सम्भावनाओं, क्षमताओं व योग्यताओं तथा अधिकारों व जिम्मेदारियों के प्रति जागरूक होती हैं।

किसी संस्कृति को अगर समझना है तो सबसे आसान तरीका है कि उस संस्कृति में नारी के हालात को समझने की कोशिश की जाए। किसी भी देश के विकास संबंधी सूचकांक को निर्धारित करने हेतु उद्योग, व्यापार, खाद्यान्न उपलब्धता, शिक्षा इत्यादि के स्तर के साथ ही उस देश की महिलाओं की स्थिति का भी अध्ययन किया जाता है। नारी की सुदृढ़ एवं सम्मानजनक स्थिति एक उन्नत, समृद्ध तथा मज़बूत समाज का द्योतक है।

महिला सशक्तिकरण को प्राथमिकता देने के क्रम में वर्तमान भारतीय प्रधानमंत्री द्वारा महिलाओं को पुरुषों के बराबर अवसर प्रदान करने का प्रयास किया गया है जो सुरक्षा के पाँच पहलुओं पर आधारित एक व्यापक *मिशन* है। ये पाँच पहलू हैं– माँ एवं शिशु की स्वास्थ्य सुरक्षा, सामाजिक सुरक्षा, वित्तीय सुरक्षा, शैक्षणिक एवं वित्तीय कार्यक्रमों के माध्यम से भविष्य की सुरक्षा तथा महिलाओं की सलामती। इस प्रकार हम पाते हैं कि जब भी राष्ट्र को सशक्त करने की बात आती है तो महिला सशक्तिकरण के पहलू को अनदेखा नहीं किया जा सकता।

वर्तमान में नारियाँ प्रत्येक क्षेत्र में अपना वर्चस्व स्थापित कर रही हैं। शिक्षा एवं आर्थिक स्वतंत्रता ने महिलाओं में नवीन चेतना भर दी है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में महिलाओं की भूमिका में वृद्धि हो रही है। आज महिलाएँ राजनीति, व्यापार, कला तथा खेल सहित रक्षा क्षेत्र में भी नए आयाम गढ़ रही हैं। सेना जैसे संवेदनशील क्षेत्र में भी महिलाएं अपनी भूमिका का पुरुषों के साथ कदम मिलाकर निवर्हन कर रही हैं। हाल ही में अवनी चतुर्वेदी सहित तीन लड़कियों को वायुसेना में लड़ाकू विमान उड़ाने की अनुमति प्रदान की गई है।

यह उनकी कार्यक्षमता का द्योतक है, क्योंकि प्रायः कमज़ोर समझी जाने वाली महिलाएं आज कठिन माने जाने वाले क्षेत्रों में भी अपनी क्षमता का प्रदर्शन कर रही हैं। गांधी जी ने कहा था कि "महिलाएँ पुरुषों से बेहतर सैनिक साबित हो सकती हैं। बस उनको मौका देने की ज़रूरत है।" कल्पना चावला, सुनीता विलियम्स, टैसी थॉमस, अवनी चतुर्वेदी जैसी अनेक नारियाँ आज समाज में महिलाओं की मज़बूत छवि प्रस्तुत कर रही हैं। अग्नि–टू मिसाइल के विकास में प्रमुख भूमिका निभाने वाली टैसी थॉमस को *'मिसाइल वुमेन'* के नाम से जाना जाता है।

शीर्ष क्षेत्र में भी महिलाओं ने अपनी सफलता की कहानी दुनिया के सामने रखी है। आर्थिक अधिकारों की प्राप्ति तथा आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने के कारण महिलाओं का सशक्तिकरण हुआ है। देश के कई आर्थिक संस्थानों के शीर्ष पदों पर महिलाएं कार्यभार संभाल रही हैं तथा देश के विकास में अपना योगदान दे रही हैं। अरुंधति महाचार्य, शिखा शर्मा, नैनालाल किदवई, सावित्री जिंदल आदि आर्थिक क्षेत्र में शीर्ष पदों पर काबिज हैं।

भारत के संबंध में कई बार *वर्ल्ड बैंक ग्रुप* आदि ने कहा है कि अगर यहाँ पर महिलाओं की आर्थिक भागीदारी में वृद्धि की जाए तो भारत की विकास दर में तीव्र वृद्धि हो सकती है। गौरतलब है कि 1994 से 2012 के मध्य कई लाख भारतीय गरीबी रेखा से बाहर निकल चुके हैं। इन आँकड़ों में और बढ़ोत्तरी होती अगर कार्यबल में महिलाओं की भागीदारी में और वृद्धि होती।

2012 में सिर्फ 27% वयस्क भारतीय महिलाएं विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत थीं। चिंता की बात यह है कि भारत के तीव्र शहरीकरण ने कार्यबल में महिलाओं की भागीदारी में कोई वृद्धि नहीं की है।

कार्यबल में महिलाओं की भागीदारी के मामले में भारत की *रैंकिंग* विभिन्न देशों के मध्य निम्न है परंतु लिंग आधारित हिंसा की दर के मामले में यह काफी उच्च है। देश के कार्यबल में महिलाओं की भागीदारी 2016 के 37% से नीचे गिरकर 2019 में 18% रह गई है एवं *जेंडर गैप* के मामले में 23% पर आ गई है। यह माना जाता है कि कार्यबल में महिलाओं के प्रवेश को सुनिश्चित करने और उनकी भागीदारी बढ़ाने में *जेंडर सेंसेटिव इंफ्रास्ट्रक्चर* महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जिसके तहत बच्चों हेतु पूर्वकालिक शिशुगृह, कार्यशील महिलाओं हेतु वहनीय एवं सुरक्षित *हॉस्टल* एवं आधारभूत सार्वजनिक सुविधाएँ शामिल हैं।

इन सबके बावजूद सिक्के का एक अन्य पहलू यह भी है कि आज भी महिला कार्यबल का एक बड़ा हिस्सा अन्याय एवं शोषण का शिकार होता है। महिलाओं को अपने स्वतंत्र अस्तित्व का निर्माण करने और उसे कायम रखने हेतु स्वावलंबी और आत्मनिर्भर होना बहुत जरूरी है।

कृषि क्षेत्र में भी महिलाओं का योगदान अतुल्य है। खेत की बुआई से लेकर फसल कटाई व इसके बाद तक की सारी गतिविधियों में कदम–कदम पर महिला किसानों के योगदान को देखा जा सकता है। संयुक्त राष्ट्र के खाद्य एवं कृषि संगठन के अनुसार, भारतीय कृषि में महिलाओं का योगदान लगभग 32 प्रतिशत है. जबकि कुछ राज्यों (पूर्वोत्तर राज्यों तथा केरल) में कृषि एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था में महिलाओं का योगदान पुरूषों के मुकाबले कहीं अधिक है।

इसके बावजूद वो इस क्षेत्र में अपने अस्तित्व को लेकर संघर्ष कर रही हैं. न तो महिला किसान *फ्रेंडली* मशीनें बन रही हैं न तो मंडियों में उनके लिए कोई इंतजाम हैं। करीब 48 प्रतिशत महिलाएं कृषि संबंधी रोजगार में शामिल हैं। जबकि 7.5 करोड़ महिलाएं दूध उत्पादन और पशुधन प्रबंधन में उल्लेखनीय भूमिका निभा रही हैं। वर्ष 2011 की जनगणना के मुताबिक देश में महिला किसानों की संख्या 3,60,45,846 थी. जबकि खेती में महिला मजदूरों की संख्या 6,15,91,353 थी।

इन्हीं सब पहलुओं को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए स्वयं सहायता समूह का गठन कर महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। इन समूहों में कार्य करने से उनके स्वाभिमान, गौरव व आत्मनिर्भरता में वृद्धि होती है। परिणामस्वरूप महिलाओं की क्षमताओं में बढ़ोत्तरी होती है। आज भारत दुनिया भर में महिलाओं द्वारा संचालित स्वयं सहायता समूहों के क्षेत्र में सर्वोपरि स्थान रखता है व हमारे देश की सामाजिक, सांस्कृतिक व आर्थिक परिस्थितियों में महिला समूहों की गतिशीलता, व्यवहार्यता व साध्यता में अपना योगदान दे रहा हैं। महिलाओं का एक अत्यधिक बड़ा प्रतिशत स्वयं सहायता समूहों की सदस्यता के बाद सकारात्मक रूप से प्रभावित हुआ है। महिलाओं की समूह में भागीदारी उन्हें अपनी आंतरिक शक्ति को खोजने, आत्मविश्वास अर्जित करने, सामाजिक और आर्थिक सशक्तिकरण और क्षमता निर्माण करने योग्य बनाती है।

आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र में महिलाओं की भूमिका को सुदृढ़ बनाने हेतु आवश्यक कदम

कृषि *क्लिनिक* एवं *एग्री बिजनेस* केंद्र नामक योजना के तहत लिए गए *बैंक लोन* पर अनुदान पुरुषों के लिए 36 फीसदी है जबकि महिलाओं के लिए 44 प्रतिशत है।

- *इंटीग्रेटेड स्कीम ऑफ एग्रीकल्चर मार्केटिंग* के तहत *स्टोरेज इंफ्रास्ट्रक्चर प्रोजेक्ट* में पुरुष किसानों को 25 फीसदी की तुलना में महिलाओं के लिए 33.33 फीसदी तक की सीमा तक सहायता दी जाती है।
- कृषि मशीनीकरण में मशीनों की खरीद पर महिलाओं को 10 फीसदी ज्यादा आर्थिक सहायता मिल रही है।
- राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा *मिशन* के तहत पौध संरक्षण एवं आधुनिक कृषि यंत्रों के लिए पुरुषों की अपेक्षा 10 फीसदी अधिक आर्थिक मदद दी जा रही है।
- महिलाओं के विकास हेतु सकारात्मक आर्थिक और सामाजिक नीतियों का निर्माण किया जा रहा है।
- पुरुषों के साथ महिलाओं को राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और नागरिक क्षेत्रों में वैधानिक एवं समान अवसर प्रदान किए जा रहे हैं।

- देश के लिये महत्त्वपूर्ण निर्णय लेने की प्रक्रिया में महिलाओं की समान भागीदारी हो रही है।
- स्वास्थ्य, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, रोज़गार में समान पारिश्रमिक, सामाजिक सुरक्षा आदि तक समान पहुँच हो रही है।
- महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव के सभी रूपों के उन्मूलन का प्रयास किया जा रहा है।
- सक्रिय भागीदारी द्वारा सामाजिक व्यवहार और कुप्रथाओं में परिवर्तन किया जा रहा है।
- विकास प्रक्रिया में लैंगिक भेदभाव को समाप्त करने के प्रयास किए जा रहे हैं।
- महिलाओं और बालिकाओं के प्रति सभी प्रकार की हिंसा के उन्मूलन के प्रयास किए जा रहे हैं।
- नागरिक समाज विशेषकर महिला संगठनों के साथ भागीदारी का निर्माण कर उन्हें सुदृढ़ किया जा रहा है।

भारतीय अर्थव्यवस्था एवं सामाजिक क्षेत्र में महिलाएं अग्रणी भूमिका निभा रही हैं। अगर हाल–फिलहाल की भारत की आर्थिक स्थिति को छोड़ दें, जो कि कोविड–19 से प्रभावित है, तो भारत की विकास दर पिछले कुछ समय से उच्च बनी हुई है जिसका कारण बचत और पूँजी निर्माण की उच्च दर है। इन आर्थिक गतिविधियों में महिलाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। बचत, उपभोग–अभिवृत्ति और पुनर्चक्रण–प्रवृत्ति के मामले में भारत की अर्थव्यवस्था महिला केंद्रित मानी गई है। अतः महिलाओं की असीमित क्षमता और योग्यता को ध्यान में रखते हुए ज़रूरी है कि इन्हें आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र के केंद्र में रखा जाए ताकि देश विकास के नए आयाम स्थापित कर सके।

महिलाओं को विकास की मुख्यधारा से जोड़े बिना किसी समाज, राज्य व देश के आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती। भारत की कुल आबादी की आधी महिलाओं को सशक्त बनाए बिना सुदृढ़ भारत का सपना पूरा नहीं किया जा सकता, विशेषकर 'ग्रामीण महिला'। स्वयं सहायता समूह में कार्य करने के कारण महिलाओं के आत्मविश्वास, स्वाभिमान व आत्म–गौरव में वृद्धि होती है। घरेलू परिधि के बाहर एक समूह के रूप में छोटी – छोटी बचत इकट्ठी करके ऋण लेकर बैंक कर्मचारियों से संपर्क कर लघु उद्यम स्थापित कर व समूह की क्रियाओं में भाग लेकर महिलाएं विभिन्न कार्यों से जुड़कर विकास के नये आयाम स्थापित कर रही हैं तथा समूह के स्तर पर नेतृत्व करने के साथ–साथ परिवार एवं समुदाय के स्तर पर नेतृत्व करने की क्षमता भी उभरी है। महिला सशक्तिकरण का प्राथमिक उद्देश्य ही यह है कि उनको अपने अधिकारों के प्रति सशक्त किया जाय और परिवार में निर्णय के स्तर पर ज्यादा से ज्यादा भागीदारी बढ़ाई जाएं जिससे उनका सामाजिक एवं आर्थिक विकास हो सके।

ग्रामीण महिलाओं का बागवानी के माध्यम से सशक्तिकरण

अनीता मीणा[1], नीरुपमा सिंह[2], माधुरी मीना एवं नीतु मीना

[1]भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीछवाल, बीकानेर

[2]भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

बागवानी कृषि के सबसे तेजी से बढ़ते क्षेत्रों में से एक है। पिछले ढाई दशकों के दौरान इस क्षेत्र की वृद्धि लगभग 5.5% थी। बागवानी में फसलों से अधिक रोजगार और आय प्रदान करने की क्षमता होती है। रोजगार सृजन और आय में वृद्धि के अलावा बागवानी क्षेत्र में मूल्य संवर्द्धन का बहुत बड़ा क्षेत्र है जो खेती में भूमिहीन महिलाओं के लिए रोजगार प्रदान करता है।

बागवानी भारत में कृषि के सबसे बड़े क्षेत्रों में से एक है। कुल कृषि क्षेत्र में बागवानी क्षेत्र का योगदान 1970–71 में 15.3 प्रतिशत से बढ़कर 2001–02 में 29.5 प्रतिशत हो गया है। पिछले कुछ दशकों में इन फसलों के अंतर्गत आने वाले फसल क्षेत्र में बड़ी वृद्धि हुई है। 1950–51 में बागवानी फसलों का उत्पादन 7.6 लाख हेक्टेयर था जो 2007–08 में बढ़कर 200.8 लाख हेक्टेयर हो गया। बागवानी फसलों का उत्पादन 1991–92 में 960 लाख टन से बढ़कर 2007–08 में 2070 लाख टन हो गया है।

कुल शुद्ध क्षेत्र 1420 लाख हे. है, बागवानी फसलें 230 लाख हे. में उगाई जाती हैं। विभिन्न फसलों में, फल और सब्जी की फसलें कुल उत्पादन में 31 प्रतिशत और 61 प्रतिशत योगदान देती है, जबकि 6 प्रतिशत वृक्षारोपण फसलों और फलों, मसालों और औषधीय पौधों सहित अन्य फसलों द्वारा योगदान दिया जाता है। यह अनुमान लगाया जाता है कि 70 प्रतिशत वास्तविक कृषि कार्यों के लिए महिलाएं जिम्मेदार हैं और महिलाओं का कृषक समुदाय में 60 प्रतिशत तक का हिस्सा हैं। बागवानी में महिलाओं की भूमिका उचित रूप से रेखांकित नहीं की गयी है।

महिलाएं देश की 50 प्रतिशत आबादी का गठन करती हैं और घर या उद्योगों में कृषि से संबंधित 90 प्रतिशत गतिविधियों में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। सामान्य रूप से महिलायें जीवन के हर क्षेत्र में सक्षम हैं। बड़े स्तर पर परिवार और समाज के बेहतर कामकाज के लिए सभी स्तरों पर महिलाओं की प्राकृतिक बहुमुखी मांग है। इसलिए महिलाओं के लिए उन कौशलों को चुनना और विकसित करना महत्वपूर्ण हो जाता है जो उनकी प्राकृतिक लय के अनुरूप हों ताकि वह बिना तनाव के अपनी बहुमुखी प्रतिभा को कुशलता से कर सकें।

महिलायें बागवानी फसलों की विभिन्न उत्पादन और बाद की गतिविधियों में सक्रिय भूमिका निभाती हैं। पिछले दो–तीन दशकों में कृषि में लगी महिलाओं की संख्या में लगातार वृद्धि हुई है, क्योंकि विभिन्न क्षेत्रों जैसे शहरी क्षेत्रों में पुरुषों का पलायन, निर्माण और अन्य क्षेत्रों में श्रम बल की मांग में वृद्धि हुई है। बागवानी क्षेत्र में शामिल महिलाओं के आंकड़े बहुत कम हैं, लेकिन खेती और फसल कटाई के बाद के संचालन और भंडारण में महिलाओं की भागीदारी बहुत अधिक है। बागवानी फसलें उनकी खेती के तरीकों के संबंध में क्षेत्र की फसलों से भिन्न होती हैं। अधिकांश फल, सब्जियाँ, सजावटी और वृक्षारोपण फसलें सीधे बोई नहीं जाती हैं। उन्हें *नर्सरी बेड* में अंकुर उत्पादन और उसके बाद मुख्य क्षेत्रों में रोपण के माध्यम से उगाया जाता है। महिलाओं द्वारा बीज की सफाई, बीज की तैयारी और खेत में बुवाई की जाती है। इन गतिविधियों में उनकी भागीदारी 80 प्रतिशत से अधिक है।

भूमि तैयार करने की गतिविधियों में महिलाओं की भागीदारी जैसे कि मल संग्रह, खाद का उपयोग और नर्सरी में और मैदान की सफाई 60 प्रतिशत से अधिक है। सब्जियों की रोपाई में महिलाओं की भागीदारी 80 प्रतिशत से अधिक है। लगातार लगाए गए पौधों में लगातार पानी और उचित पोषण में महिलाओं की भागीदारी बहुत अधिक है। सिंचाई, निराई–गुड़ाई, फसल चक्र, जैसी विभिन्न कृषि क्रियाएं अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। बागवानी फसलों में 80 प्रतिशत से अधिक निराई का काम महिलाओं द्वारा किया जाता है। महिला कार्यकर्ता विशेष रूप से फसलों, सब्जियों, फूलों और मसालों की कटाई में शामिल रहती हैं। सब्जियों मटर,

मिर्च, भिंडी, टमाटर, बैंगन, आलू, प्याज, मसालों की कटाई मुख्य रूप से महिला श्रमिकों द्वारा की जाती है। फसल की कटाई के बाद इसकी सफाई, उपचार, *ग्रेडिंग* और अन्य विभिन्न कार्य भी महिला मजदूरों द्वारा किए जाते हैं। किसानों एवं व्यापारियों के स्तर पर सब्जियों और मसालों की सफाई और *ग्रेडिंग* करने का कार्य महिलाओं द्वारा किया जाता है।

बागवानी फसलों की खेती में महिलाओं की भागीदारी जाति, क्षेत्र, सामाजिक कारक, परिवार की सामाजिक स्थिति जैसे कई कारकों से प्रभावित होती है। परिवार के स्वामित्व वाली भूमि का आकार के अनुसार बागवानी में महिलाओं की भागीदारी से पता चला कि बागवानी फसलों के उत्पादन और फसल कटाई के बाद के कई मुद्दे हैं। परंपरागत रूप से महिलाओं से खेत संचालन करने की अपेक्षा की जाती है, जिसमें स्वयं द्वारा किये जाने वाले कार्य शामिल होते हैं, जिनमें अधिक शारीरिक शक्ति की आवश्यकता नहीं होती है। महिलाओं की कौशल प्रशिक्षण और सूचना तक पहुंच नहीं है। आमतौर पर महिलाओं को प्रौद्योगिकियों को *डिजाइन* करने और परीक्षण करने में भेदभाव किया जाता है। कृषि यंत्रों को महिलाओं के अनुरूप नहीं बनाया गया है। महिलाओं की शारीरिक क्षमता पुरूषों के अनुरूप नहीं होती है। अतः उनके लिए तकनीकी कार्य पुरूषों से भिन्न होने चाहिए।

अध्ययनों से पता चला है कि महिलाओं ने आधुनिक और नव प्रौद्योगिकियों पर स्थानीय रूप से उपलब्ध उपायों की कम लागत को प्राथमिकता दी है। नव प्रौद्योगिकी के कार्यरूप में परिणित होने पर महिलाएं पारंपरिक रोजगार के अवसरों से विस्थापित हो जाती हैं। महिलाओं को पुरुषों की तुलना में कम वेतन मिलता है और भूमि, उपकरण, बाजार और ऋण जैसे संसाधनों तक उनकी पहुँच सीमित है। बागवानी में लैंगिक भूमिकाओं के स्वरूप से पता चलता है कि गरीबी के साथ बागवानी में महिलाओं की श्रम भागीदारी बढ़ जाती है। फल की खेती की तुलना में सब्जी की खेती में महिला पारिवारिक श्रम अधिक है। महिलाएं फसलों या उन किस्मों को पसंद करती हैं जिनमें खेत के संचालन को आसानी से किया जा सकता है।

बागवानी फसलों में लैंगिक मुद्दे खेत की फसलों से कुछ अलग हैं। लेकिन तथ्य यह है कि महिलाएं दोनों प्रकार की फसलों के उत्पादन में बहुत महत्वपर्णू भूमिका निभा रही हैं। चूंकि बागवानी फसलें अपने वाणिज्यिक, पोषण और निर्यात क्षमता के कारण महत्व प्राप्त कर रही हैं, महिलाओं की भूमिका में बदलाव होने की संभावना है और अधिक से अधिक मुद्दों के उभरने की उम्मीद है।

ग्रामीण महिलाओं का सामुदायिक नर्सरी में भागीदारी

सफल व्यावसायिक सब्जी के लिए गुणवत्ता वाले रोपण की उपलब्धता अत्यंत आवश्यक है। किसान महिलाएं आमतौर पर निजी रूप में अपने घर के पिछवाड़े में छोटी नर्सरी तैयार करती हैं। हालांकि यह अक्सर गाँवों में देखा जाता है कि शुरुआती चरणों में फसल कीट और रोग के कारण नष्ट हो जाती है। रोग या प्राकृतिक आपदाओं जैसे सूखा, अत्यधिक बारिश, बाढ़ के कारण किसान नई नर्सरी स्थापित करने के लिये पर्याप्त संसाधन नहीं जुटा पाता है। इन स्थितियों में किसान को पूरे मौसम में नुकसान होने का खतरा होता है। ऐसी स्थितियों को प्रबंधित सामुदायिक नर्सरी द्वारा हल किया जा सकता है। वाणिज्यिक स्तर पर उच्च गुणवत्ता वाले पौधशाला के लिए साधन संपन्न किसान–समूहों द्वारा *पॉलीहाउस* जैसी संरक्षित संरचनाएं स्थापित कर अधिक लाभ लिया जा सकता है। इस तरह की पौधशालाएं वांछित गुणवत्ता और मात्रा के नियमित और आकस्मिक स्रोत के रूप में काम कर सकती हैं।

सामुदायिक *नर्सरी* का गठन और औपचारिकता

1. महिला किसान स्वयं सहायता समूहों की जागरूकता: बीज बैंकों के विपरीत सामुदायिक *नर्सरी* में ग्राहकों की संख्या कम हो सकती है। इस जागरूकता का निर्माण सामुदायिक *नर्सरी* के गठन की दिशा में एक प्रमुख कदम है। एक बार महिला किसान समूह उस उपक्रम को लेने के लिए तैयार हैं जिसके लिए उन्हें विभिन्न गतिविधियों के लिए प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। *नर्सरी* प्रबंधन संसाधनों में व्यक्ति या प्रौद्योगिकी प्रदाताओं को समूह का मार्गदर्शन करना होता है। पौधशाला की भूमि अथवा *पॉलीहाउस* के निर्माण के लिए प्रबंधन का स्रोत, प्रौद्योगिकी के लिए कम लागत वाले *पॉलीहाउस,* गमलों का मिश्रण, गुणवत्तापूर्ण बीजों, कीट और बीमारी का स्रोत प्रबंधन, आदि पर महिला किसानों को प्रशिक्षण और क्षमता निर्माण किया जाना चाहिए। प्रशिक्षण में भाग लेने वाले

महिला किसानों को गुणवत्ता वाले उत्पादन के मूल सिद्धांतों पर प्रारंभिक अभिविन्यास और प्रशिक्षण की आवश्यकता होगी। उन्हें बेहतर नर्सरी प्रबंधन में भी प्रशिक्षित किया जाना चाहिए।

2. महिला किसान द्वारा संरक्षित संरचनाओं व *पॉलीहाउस* का निर्माण: राज्य सरकारों की विभिन्न योजनाएँ जो अनुदान के साथ विभिन्न आकारों के *पॉलीहाउस* के निर्माण की सुविधा प्रदान करता है। राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड ऐसे उपक्रमों के लिए सहायता भी प्रदान करता है। वैकल्पिक रूप से किसान बांस का उपयोग करके कम लागत वाले *पॉलीहाउस* तैयार कर सकते हैं। निर्माण के लिए चयनित स्थल में जल भराव नहीं होना चाहिए। नियमित जल आपूर्ति के लिए भी उसमें उचित प्रावधान होना चाहिए।

3. अंकुर उत्पादन और विपणन : अंकुर उत्पादन में महिला किसानों को स्थानीय बीजों को प्राथमिकता देनी चाहिए। पौध की आपूर्ति को नियमित बनाने के लिए बुवाई समुचित तरीके से की जानी चाहिए। पौधों की जड़ों को जैव–कारक के साथ उपचारित किया जाना चाहिए। रोग और कीटों के उपचार के द्वारा पौधों की मृत्यु दर को कम किया जा सकता है।

सामुदायिक बीज बैंकों और *नर्सरी* में महिलाओं की भागीदारी: गांवों के विकासात्मक कार्यक्रम में महिलाएं मुख्य आधार होती हैं जैसा कि पहले बताया गया है कि महिला स्वयं सहायता समूह आत्मनिर्भर होने के लिए फल और सब्जी की वाणिज्यिक पौधशाला स्थापना, कटाई उपरांत प्रसंस्करण आदि खेती से जुड़े व्यवसायों में बैंक की सहायता से पहल कर आगे बढ़ सकती हैं। यह देखा जाता है कि स्वयं सहायता समूह परिवार में महिलाओं ने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से विभिन्न कार्यो के द्वारा योगदान दिया हैं।

महिला किसानों के लिए योजना

- महिला समूहों की पहचान जो बागवानी समर्थन को *चैनलाइज़* करने के लिए *नेटवर्क* रूप में कार्य करेंगी।
- महिला किसानों की आवश्यकता–बागवानी समर्थन, लागत, तकनीकी और विस्तार के संदर्भ में आकलन
- महिला समूहों की गतिविधियों की आवश्यकता आधारित मूल्यांकन कर व्यक्तिगत प्राथमिकता देना
- महिला समूहों को पर्याप्त संगठनात्मक और वित्तीय सहायता प्रदान करना
- महिला किसानों को बागवानी और संबद्ध क्षेत्रों में तकनीकी प्रशिक्षण प्रदान करना
- कृषि और संबद्ध क्षेत्रों में लैंगिक मुद्दे पर बुनियादी, रणनीतिक और अनुप्रयुक्त अनुसंधान करने के लिए उचित प्रौद्योगिकियों और नीतियों के परीक्षण
- शोधन के माध्यम से फसल उत्पादन और उसके बाद की प्रक्रिया में महिलाओं की भूमिका के गुणात्मक और मात्रात्मक मूल्यांकन के लिए अध्ययन शुरू कराना।

इस प्रकार ग्रामीण महिलाओं का सशक्तिकरण आर्थिक और पोषण सुरक्षा के उचित माध्यम से किया जा सकेगा और आवश्यकता आधारित प्रौद्योगिकियों के विकास के माध्यम से बागवानी फसलों के उत्पादन और उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है।

ग्रामीण महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में पहल

उपेन्द्र सिंह
गन्ना विकास विभाग, मेरठ

समग्र ग्रामीण विकास की अवधारणा को साकार करने हेतु ग्रामीण महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने के लिए *"लर्निंग बाई डूइंग"* (करके सीखो) सिद्धान्त के आधार पर रोजगार सृजन की दिशा में गन्ना विकास विभाग, उत्तर प्रदेश द्वारा अनूठा प्रयास किया जा रहा है। वैश्विक महामारी कोविड–19 के कारण देश में उत्पन्न हुई सामाजिक/आर्थिक समस्याओं के निराकरण के दृष्टिगत भारत सरकार के 'आत्मनिर्भर भारत' बनाने के संकल्प को साकार करने एवं उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा नारी सशक्तिकरण हेतु चलाये जा रहे 'मिशन शक्ति अभियान' को सफल बनाने हेतु प्रदेश के गन्ना विकास विभाग द्वारा ग्रामीण महिलाओं को उनके ग्राम में ही रोजगार प्रदान करके आत्मनिर्भर बनाने की पहल की गई है। गन्ना विभाग द्वारा प्रदेश के 36 गन्ना उत्पादक जिलों की 142 गन्ना विकास परिषदों में 1,060 महिला स्वयं सहायता समूहों का गठन किया गया है। स्वयं सहायता समूहों से जुड़ी ग्रामीण महिलाओं को *"लर्निंग बाई डूइंग"* (करके सीखो) सिद्धान्त के आधार पर रोजगार प्रदान करने हेतु विशेषज्ञों द्वारा प्रशिक्षण प्रदान किया गया है। जोकि निरन्तर चल रहा है। प्रत्येक महिला समूह में सदस्यों की संख्या कम से कम 10 एवं अधिकतम 20 है।

प्रशिक्षण कार्यक्रम द्वारा महिलाओं को गन्ने के बीज चयन, हस्तचालित मशीन से गन्ने से *बड चिप* निकालना, ट्रे में अंकुरण, उगाने का समय, रोपण की विधि तथा कार्यक्रम के उद्देश्य की जानकारी दी गयी है। प्रशिक्षण प्राप्त महिलाएं *सिंगल बड चिप* विधि से गन्ने की पौध तैयार कर समूह के माध्यम से बिक्री करके आय अर्जित कर रहीं हैं। इस कार्य हेतु गन्ना विभाग द्वारा पूर्ण सहयोग प्रदान किया जा रहा है। पौध का उपयोग नई प्रजाति के बीज को बढ़ाने, प्रदर्शन, गन्ने के बीच की दूरी को कम करने व विलम्ब से बुवाई में किया जा रहा है। प्रदेश के तराई व बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में अत्यधिक नमी होने से शरदकाल के प्रारम्भ में खेत में गन्ने की बुआई नही की जा सकती है लेकिन *सिंगल बड चिप* विधि से तैयार गन्ने की पौध की नवम्बर माह में रोपाई कर गन्ने की बुआई की जा सकती है। इसके अतिरिक्त, गेहूँ की कटाई के बाद अप्रैल–मई में देर से बुआई की समस्या से भी राहत मिलेगी क्योंकि खेत को तैयार करने के उपरान्त एक महीने पहले से तैयार पौध की सीधे खेत में रोपाई की जा सकती है। इस विधि से प्राप्त गन्ने की पौध रोगरहित, कीटरहित एवं स्वस्थ होती है व गन्ने को बढ़ने का पर्याप्त समय मिलता है, जिससे गन्ने की लम्बाई व मोटाई में वृद्धि होती है, फलस्वरूप गन्ने का वजन बढ़ने से किसानों को अधिक आय प्राप्त होती है। *सिंगल बड चिप* विधि का एक लाभ यह भी है कि इसमें केवल गन्ने की आँख (*बड*) को निकालकर पौध तैयार की जाती है, अवशेष गन्ने को पेराई हेतु चीनी मिल अथवा कोल्हू में आपूर्ति कर दिया जाता है, जिससे किसानों को आर्थिक लाभ होता है।

महिला स्वयं सहायता समूह द्वारा तैयार गन्ने की पौध की बुवाई राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन (*एन.एफ.एस.एम.*) के अन्तर्गत स्थापित गन्ने के प्रदर्शन में अनिवार्य रूप से किये जाने का प्राविधान किया गया है। बैंक खाता, महिला स्वयं सहायता समूह के पंजीकृत नाम से खुलवाया गया है। इसका संचालन समूह में से ही चुनी हुई अध्यक्ष/संयोजिका एवं सदस्य सचिव द्वारा संयुक्त रूप से किया जा रहा है। *एन.एफ.एस.एम.* के प्रावधानों के अनुसार समूह के लिए पौध उत्पादन हेतु ₹ 1.50 अनुदान के माध्यम से तथा ₹ 1.50 पौध क्रय करने वाले कृषक द्वारा दिया जा रहा है। जिससे समूह को ₹ 3.00 प्रति पौध की दर से आय प्राप्त हो रही है। यदि किसी कारण से राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन के अन्तर्गत पर्याप्त धनराशि की व्यवस्था नहीं हो पाती है तो ऐसी स्थिति में गन्ना विभाग द्वारा सम्बन्धित गन्ना विकास परिषद के बजट से पौध पर देय अनुदान की धनराशि की व्यवस्था करते हुए वितरण सुनिश्चित किये जाने का प्रावधान किया गया है। समूहों को प्राप्त अनुदान/लाभान्श का वितरण सभी सदस्यों में एक समान किया जा रहा है। विभाग के इस अभियान से ग्रामीण महिलाओं को अपने ग्राम में ही रोजगार प्राप्त होने के साथ ही अतिरिक्त आय प्राप्त हो रही है। इससे ग्रामीण महिलाओं में उद्यमिता की भावना विकसित हुई है व उनके जीवन स्तर में सुधार आया है।

आत्मनिर्भर भारत एवं कृषिः दुग्ध, पशुपालन तथा मांस–मछली उत्पादन में आत्मनिर्भरता

सुमित भाऊ साहेब उन्हे
भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

भारत एक कृषि प्रधान देश है। भारत के विभिन्न भागों में कृषि की भिन्नता है। कृषि उत्पादन ख़राब मौसम, अनिश्चित बारिश, के कारण कम ज्यादा होते रहते है। किसान को खेती के उत्पादन के साथ–साथ अन्य आय विकल्पों की जरुरत पड़ती है, जिससे कि किसान की न्यूनतम आय बनी रहे। खेती के साथ पशु, पक्षी तथा मछली पालन किसान के लिए एक भरोसे का आय का साधन बन रहा है। ग्रामीण भागों में महिलाएं, युवा किसानों का पशुपालन में बड़ा योगदान है। किसान समूह बनाकर *कॉर्पोरेट फार्मिंग,* किसान उत्पादक संगठन, छोटी कम्पनियां बनाकर अपने माल को विक्रय कर सकती है, ताकि उस माल को विदेशी बाजारों में बेच सके।

देश में गाय, भैस, बकरी आदि दूध देने वाले पशु आराम से पाले जा सकते हैं। वित्तीय वर्ष 2019 में भारत के पास (संख्या लाख में) (1925) गाय, (1480) बकरियां, (1099) भैसें, (743) भेड़, (91) सूअर हैं। अपने खेत में उगने वाली घास, तथा खाद्य आसानी से उन पशुओं को खिला कर उनका पालन किया जा सकता है। ज्यादा दूध देने वाली प्रजातियों का चयन, उनका संगोपन, रख–रखाव, खाद्य नियोजन, तैयार उत्पाद को बेचना आज के युवा अच्छे से कर सकते हैं। दूध का संकलन, ग्रामीण स्तर पर दुग्धालय, दूध संयत्र की स्थापना किसान सहकारी संगठन के माध्यम से बनायीं जा सकती है। दूध के साथ–साथ, मांस, खाद, या जैव रसायन प्रक्रिया बनाने को भी बढ़ावा मिलता है। खाद्य एवं *फाइबर साइलेज* (चारा) बनाने की नए तकनीक आज कल प्रगति पर है। इस से ग्रामीण युवाओं को रोजगार प्राप्त होता है।

भारत 1998 से एक अग्रसर दूध उत्पादक देश है। भारत का कुल दूध उत्पादन बीते छः सालों के मुकाबले 35.61% से बढ़कर सन 2019–20 में 1984 लाख टन हुआ है (आर्थिक सर्वेक्षण, 2020)। भारत दूध उत्पादन में शेष राष्ट्रों से आगे है। साल 2019–20 में कुल 51,422 लाख टन दुग्ध उत्पाद विदेशी राष्ट्रों में निर्यात किये गए है। भारत सरकार की जन धन योजना ग्रामीण महिलाओं को पशु संवर्धन क्षेत्र में वित्तीय सुरक्षा प्रदान करने में सक्षम रही है। बीते कुछ सालों से दूध क्षेत्र में महाराष्ट्र, कर्नाटक, बिहार के महिला किसानों को मुख्यता डेयरी विभाग से मदद मिल रही है। दूध का प्रसंस्करण करके विविध उत्पाद बनाये जा सकते हैं, ये देश या विदेश में बेचे जा सकते हैं। भेड़ व बकरियाँ ग्रामीण भागों में दूध या मांस के लिए पाली जाती हैं। आज के वक्त में संकरित जातियों की बकरियों का पालन बड़े पैमाने पर हो रहा है। ये जानवर कम आहार, थोड़ी जगह में, और कम से कम निरीक्षण में पाले जा सकते हैं। लगभग सात मास में ये जातियां अपने बच्चे पैदा करती हैं, इससे इनकी संख्या जल्दी बढ़ सकती है। भेड़ व बकरी पालन आज के ग्रामीण तथा शहरी युवाओं का आकर्षण केंद्र बना हुआ है।

भारत में मत्स्य उत्पादन एक महत्वपूर्ण पोषण व रोजगार स्रोत है। यह क्षेत्र भारत के कुल 160 लाख मछुआरे किसानों को जीवन यापन प्रदान करता है। मत्स्य कृषि विभाग से देश को कुल योगदान 6.58% अंश कृषि में होता है। विदेशी व्यापार में मत्स्य क्षेत्र 5% कुल निर्यात और 19.23% कुल कृषि निर्यात (2017–18) का हिस्सा रहा है। देश को भारी तादाद में समुद्री या नदी तटों से मछली का उत्पादन होता है। हालाँकि खेती में पानी के लिए बनाए गए तालाब, कुएं, का उपयोग मछली पालन के लिए होता आ रहा है। आज के दौर में संरक्षित भागों में मछली की कृत्रिम संरचना बनाकर पालन किया जा रहा है। इसमें उनके आहार, जलवायु, तथा विकास की जानकारी आसानी से रखी जाती है। जल्दी बड़े होने वाली किस्मों का संगोपन कम लागत में किया जा सकता है। मछली को आसपास के शहरी भागों में बेचा जा सकता है, वहाँ उनकी मांग ज्यादा होती है। इस तरह मत्स्य पालन एक लाभकारी पर्याय आज के युवा किसानों के सामने है।

आत्मनिर्भर भारत की प्रमुख कड़ी है आत्मनिर्भर किसान

सत्येंद्र कुमार सिंह
चंद्रभानु गुप्ता कृषि स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बक्शी का तालाब, लखनऊ

कृषक हमारे देश की अर्थव्यवस्था की प्रमुख कड़ी हैं। इनके विकास के बिना देश का विकास संभव नहीं है। आजादी के सात दशक के बावजूद एक मूल प्रश्न अभी भी मानस पटल पर है कि कृषि एवं उस पर निर्भर जनसंख्या निर्वाह मूलक से आत्मनिर्भर एवं लाभदायक व्यवसाय के लक्ष्य को क्या प्राप्त कर सकेगी ?

कोरोना महामारी के संक्रमण के इस दौर में कृषि क्षेत्र पर निर्भर जनसंख्या के समक्ष अनेकों संकट हैं और यह संकट आगे भी आते रहेंगे। मानवीय एवं प्राकृतिक आपदाएं एक लंबे समय से कृषकों के समक्ष चुनौतियां उत्पन्न करती रही हैं।

आज के समय मूल प्रश्न यह है कि कृषकों को सक्षम कैसे बनाया जाए? उन्हें आत्मनिर्भर कैसे किया जाए? महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। आजादी के समय राष्ट्रीय आय का लगभग 50 प्रतिशत एवं रोजगार या कृषि क्षेत्र पर निर्भर जनसंख्या लगभग 72 प्रतिशत थी। वर्तमान समय के आंकड़ों के अनुसार राष्ट्रीय आय में कृषि का योगदान 16.5 प्रतिशत है, किंतु जनसंख्या का लगभग 55 प्रतिशत हिस्सा अभी भी कृषि पर आधारित है। उपरोक्त आंकड़ें यह प्रदर्शित करते हैं कि रोजगार सृजन एवं राष्ट्रीय आय में योगदान की दृष्टि से कृषि क्षेत्र में असंतुलन की स्थिति है। जनसंख्या का एक बड़ा भाग कम आय पर अपना जीवन निर्वाह कर रहा है। आत्मनिर्भर किसान की दृष्टि से उल्लेखनीय प्रयास हरित क्रांति थी किंतु हरित क्रांति (1966–67) से उत्पन्न लाभ क्षेत्रवार एवं जनसंख्या की दृष्टि से सीमित ही रहे। पंजाब, हरियाणा एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश के बड़े किसानों ने इसका अधिक लाभ उठाया। अतः इस असंतुलन को दूर करने के लिए हमारे पूर्व राष्ट्रपति डा. एपीजे अब्दुल कलाम ने द्वितीय हरित क्रांति का आह्वान किया। वर्तमान समय की समस्या सीमांत एवं लघु कृषकों के संदर्भ में है, जिनकी स्थिति में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ जो कुल कृषक जनसंख्या का 81 प्रतिशत भाग है किंतु कुल कृषि योग्य भूमि में जिनकी हिस्सेदारी 40 प्रतिशत है। लघु एवं सीमांत कृषकों की जोतों का औसत आकार 1.5 हेक्टेयर से भी कम है। इन आंकड़ों से स्पष्ट है कि इनकी स्थिति में सुधार हेतु कृषि एवं उससे संबंधित अन्य गतिविधियों के संचालन की आज बहुत आवश्यकता है ।

वर्तमान सरकार का एक महत्वाकांक्षी लक्ष्य 2022 तक कृषकों की आय को दोगुना करना है। इसके लिए महत्वपूर्ण अवयव को यथासंभव अपनाकर आय दुगनी की जा सकती है। सरकार ने वर्तमान समय में फसल के उचित दाम, भंडारण, परिरक्षण एवं प्रसंस्करण, फसल बीमा योजना, ठेकेदारी कृषि का विनियमिकरण, किसान सम्मान निधि, *किसान क्रेडिट कार्ड*, मृदा स्वास्थ्य परीक्षण तथा *मेगा फूड पार्क* की स्थापना करके कृषि के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं। आज भारत में इन योजनाओं के द्वारा किसान लाभान्वित हो रहे हैं। आज के इस परिवेश में किसानों की आय बढ़ाने में प्रमुख रूप से कृषि आधारित लघु प्रसंस्करण इकाईयों की स्थापना, दलहन एवं तिलहन तथा अन्य खाद फसलों का प्रसंस्करण, साथ में कृषि बागवानी जिसमें जड़ी–बूटी एवं औषधीय पौधों की खेती तथा कुक्कुट पालन, बटेर पालन, मछली पालन, बकरी पालन एवं डेयरी उद्योग को बढ़ावा देकर आय दुगनी की जा सकती है। साथ में कृषि पर आधारित सूक्ष्म उद्योगों की स्थापना, विदेशी सब्जियों की खेती जैसे ब्रोकली, लाल गोभी, लाल एवं पीली शिमला मिर्च का उत्पादन करके अतिरिक्त आय कमाई जा सकती है।

महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि कृषकों की स्थिति में सुधार हेतु अतीत में प्रयास हुए हैं। वर्तमान समय में भी प्रयास चल रहे हैं और भविष्य में भी प्रयास होते रहेंगे, जिनमें नीति, निर्माण एवं क्रियान्वयन प्रमुख पक्ष है। अब यह आवश्यक हो गया है कि मूल्यांकन आधारित दृष्टिकोण अपनाया जाए कि आखिर अपने शोध संस्थानों विभिन्न तरह की क्रांतियों नीतियों एवं योजनाओं के द्वारा हम किस हद तक लघु एवं सीमांत किसानों की दशा सुधारने में सफल रहे ? अब हमारा जोर सैद्धांतिक पक्ष की अपेक्षा व्यावहारिक पक्ष पर अधिक होना चाहिए ताकि वास्तव में आत्मनिर्भर किसान के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके।

आत्मनिर्भर भारत की ओर बढ़ते कदम

राघवेन्द्र कुमार, आँचल सिंह एवं संगीता श्रीवास्तव
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

कोरोना *वायरस* के कारण लागू *लॉकडाउन* से औद्योगिक और सामान्य गतिविधियों पर प्रभाव तथा सकल घरेलू उत्पाद में 23.9 प्रतिशत की गिरावट रूपी आपदा को अवसर में बदलने के लिए माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी द्वारा एक राहत पैकेज, आत्मनिर्भर भारत अभियान की संकल्पना मई, 2020 को प्रस्तुत की गई जोकि निःसंदेह बहुत ही महत्वाकांक्षी अभियान है। हमारी निर्भरता जब दूसरों पर कम होगी तो स्वदेशी उत्पादों को स्वाभाविक ही बढ़ावा मिलेगा और जब देश का पैसा देश में ही रहेगा तो आर्थिक उन्नति भी होगी। सभी क्षेत्रों में विकास और आत्म निर्भरता आवश्यक है, इसमें सबसे महत्वपूर्ण है कृषि क्षेत्र।

आज महाआपदा ने जहाँ एक ओर आर्थिक रूप से बड़े–बड़े देशों और उद्यमियों की कमर तोड़ दी है। ऐसी विपरीत परिस्थितियों में भी कृषि क्षेत्र ऐसा है जो मजबूती से देश की अर्थव्यवस्था को सहारा दे रहा है। इस बड़े राहत *पैकेज* से भारत में लोगों को कामकाज करने की सुविधा उपलब्ध कराई जाएगी और यह कोशिश की जाएगी कि अगले कुछ सालों में भारत अपनी जरूरत की अधिकतर चीजों के लिए खुद पर निर्भर हो जाए। इस वजह से अभियान का नाम आत्मनिर्भर भारत अभियान रखा गया है। इस अभियान के अंतर्गत देश के मजदूर, श्रमिक, किसान, लघु उद्योग, कुटीर उद्योग, मध्यम वर्गीय उद्योग सभी पर विशेष ध्यान अथवा बल दिया जाएगा। यह *पैकेज* उन सभी उद्योगों को 20 लाख करोड़ रुपये की सहायता प्रदान करेगा जोकि भारत के एक गरीब नागरिक की आजीविका का साधन है।

सूक्ष्म, लघु तथा मध्यम गृह उद्योगों के लिए आर्थिक *पैकेज*

कोविड–19 के कारण पूरे देश के *लॉकडाउन* की स्थिति का सबसे ज्यादा बुरा असर देश के सूक्ष्म, लघु तथा मध्यम उद्योगों (*एमएसएमई*) पर पड़ रहा है। इन सभी को लाभ पहुंचाने के लिए प्रधानमंत्री जी ने आर्थिक *पैकेज* का ऐलान कर दिया है। इस योजना के अंतर्गत सरकार द्वारा चुने गए इन सभी लाभार्थियों को सबसे बड़ी सहायता राशि आर्थिक *पैकेज* के रूप में प्रदान की जाएगी।

मेड इन इंडिया और *मेड फॉर द वर्ल्ड*

अब तो गाँव के पास ही स्थानीय कृषि उत्पाद समूहों के लिए ज़रूरी *इन्फ्रास्ट्रक्चर* तैयार किए जा रहे हैं। इसमें तमाम ग्रामीणों के लिए बहुत अवसर हैं। आत्मनिर्भर भारत अभियान से जुड़े हितधारकों की हर जरूरत का ध्यान रखा जाएगा। प्रधानमंत्री जी का मानना है कि देश में *मेक इन इंडिया* को रोजगार का बड़ा माध्यम बनाने के लिए कई प्राथमिक क्षेत्रों की पहचान की जानी चाहिए। उनके मुताबिक, जरूरत है कि देश में ऐसे उत्पाद बनें, जो '*मेड इन इंडिया* और *मेड फॉर द वर्ल्ड*' हो।

पीएम स्वनिधि योजना

प्रधानमंत्री जी के द्वारा आत्मनिर्भर भारत अभियान के तहत एक नई योजना की घोषणा की गई है। इस योजना का नाम है 'पीएम स्वनिधि योजना' और इस योजना के अंतर्गत रेहड़ी पटरी वालों को सरकार द्वारा ₹ 10,000 का ऋण मुहैया कराया जायेगा जिससे छोटे विक्रेता सड़क के किनारे अपना काम फिर से शुरू करने में सक्षम बनाए जाएंगे।

किसानों की आय दोगुनी करने के लिए की गई घोषणाएं

कोविड–19 की आपदा के मद्देनजर किसानों की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए आत्मनिर्भर भारत अभियान के अंतर्गत केंद्र सरकार द्वारा देश के किसानों की आय को दोगुना करने के लिए मुख्यतः 11 प्रकार की घोषणा की गई हैं:

- कृषि अवसंरचना की स्थापना के लिए ₹ 11 लाख करोड़ का कोष
- सूक्ष्म खाद्य उद्यमों के एक औपचारीकरण के उद्देश्य से एक नई योजना के लिए ₹ 10,000 करोड़ का कोष

- प्रधानमंत्री मातृ संपदा योजना के तहत मछुआरों के लिए ₹ 2,000 करोड़ आवंटित
- पशुपालन के बुनियादी ढांचे के विकास के लिए ₹ 15,000 करोड़ का *सेट–अप*
- हर्बल खेती के लिए केंद्र सरकार द्वारा ₹ 4,000 करोड़ आवंटित
- मधुमक्खी पालन की पहल के लिए ₹ 500 करोड़
- सभी फलों और सब्जियों को आच्छादन करने के लिए ₹ 500 करोड़ के *ऑपरेशन ग्रीन* का विस्तार
- अनाज, खाद्य तेल, तिलहन, दालें, प्याज और आलू जैसे आवश्यक भोजन में संशोधन
- कृषि विपणन सुधारों का एक नए कानून के माध्यम से लागूकरण
- किसान को सुविधात्मक कृषि उपज के माध्यम से मूल्य और गुणवत्ता आश्वासन
- ज्यादातर संरचनात्मक सुधारों से जुड़ा *वायबिलिटी गैप फंडिंग* ₹ 8,100 करोड़

उज्ज्वला योजना द्वारा लाभार्थी ब्रांड एंबेसडर महिलायें

देश की महिलायें उज्ज्वला योजना के तहत मुफ्त रसोई गैस सिलेंडर का लाभ प्राप्त कर रही हैं, *लॉकडाउन* के चलते केंद्र सरकार ने 6 करोड़ 28 हजार उज्ज्वला सिलेंडर बांटे हैं। उज्ज्वला योजना के तहत लाभ प्राप्त कर रही महिलाओं को अब *स्थानीय उत्पादों* की *ब्रांड एंबेसडर* बनाया जायेगा। सरकार देश की अर्थव्यवस्था को बढ़ाने के लिए स्वदेशी पर जोर दे रही है, इसलिए देश में ही बने उत्पादों के लिए बड़े पैमाने पर माहौल तैयार किया जा रहा है।

आत्मनिर्भर भारत *ऐप*

चीन के बहुत सारे *ऐप्स* को प्रतिबंधित करने के बाद भारत सरकार द्वारा 'आत्मनिर्भर भारत *ऍप*' को प्रक्षेपण किया गया है। भारतीय *ऐप* निर्माताओं और नवोन्मेषकों को प्रोत्साहित के लिए इस आत्मनिर्भर भारत *ऐप* को शुरू किया गया है। यह आत्मनिर्भर भारत *ऐप इनोवेशन चैलेंज ट्रैक*–1 *मिशन मोड* में काम करते हुए अच्छी गुणवत्ता के *ऐप्स* की पहचान और *ट्रैक*–2 के तहत नए *ऐप्स* और *प्लेटफॉर्म* बनाने के लिए आत्मनिर्भर धारणा के स्तर से लेकर बाजार की पहुंच तक सुविधाएं मुहैया कराई जाएंगी।

आत्मबल और आत्मविश्वास है आत्मनिर्भरता की कुंजी

आत्मनिर्भरता आत्मबल और आत्मविश्वास से ही संभव है। आइए, हम सब मिलकर देश के विकास में योगदान दें और वैश्विक आपूर्ति चयन में अपनी भूमिका निभाएं। आज भारत के सामने एक बहुत बड़ी चुनौती कोरोना *वायरस* आपदा के रूप में खड़ी है। हमारी संस्कृति और संस्कार हमें संसार के सुख, सहयोग और शांति के दर्शनभाव सिखलाती है। हम सब मिलकर अपनी पूरी संकल्प शक्ति के साथ इस महामारी का सामना करें और आत्मनिर्भर भारत को कृषि क्षेत्र में विकास की दिशा अग्रसर करने में योगदान दें।

स्वदेशी शूकर पालन से किसानों में आत्मनिर्भरता एवं आर्थिक समृद्धि

सतीश कुमार, जया, सुनील कुमार एवं शांतनु बनिक
भाकृअनुप–राष्ट्रीय शूकर अनुसंधान केंद्र, राणी, गुवाहाटी

भारत पशु आनुवंशिक संसाधनों के संदर्भ में एक समृद्ध राष्ट्र है। बीसवीं पशुगणना (2019) के अनुसार भारत में कुल पशु संख्या 5357.8 लाख है जिसमें शूकरों की संख्या 90.06 लाख है जो समस्त पशुसंख्या का 1.76% है। असम और झारखंड शूकर उत्पादन वाले दो सबसे बड़े राज्य हैं जहां क्रमशः 21 लाख और 12.8 लाख शूकर पाये जाते हैं। इन दोनों राज्यों में पिछली पशुगणना कर तुलना में शूकर आबादी मे 30% की वृद्धि हुई है। इस पशुगणना के अनुसार विदेशी एवं संकर नस्ल के कुल 19 लाख और देशी नस्ल के कुल 71.6 लाख शूकर उपलब्ध थे। भारत मे शूकर की कुल 10 पंजीकृत नस्लें हैं, जिनमें से 5 नस्ल यथा डूम, माली, नियांग–मेघा, ज़ोवाक, टेनी वो उत्तर पूर्व भारत में विद्यमान हैं। शूकर पालन ग्रामीण अर्थव्यवस्था का एक अभिन्न अंग है और उत्तर पूर्व भारत के सामाजिक आर्थिक विकास से जुड़ा हुआ है। इसके अलावा शूकर मांस प्रसंस्करण उद्योग में कृषि–उद्यमियों की रुचि के कारण शूकर पालन तीव्र गति से आगे बढ़ रहा है। शूकरों की मांग एवं आपूर्ति मे एक बड़ा अंतर है। खासकर उत्तर पूर्वी भारत मे शूकर मांस की बड़ी मांग है परंतु आपूर्ति की कमी है। इसलिए इसके विकास क्षमता उचित दोहन हेतु, *पौर्क* उत्पादन के लिए नस्ल चयन के स्तर पर तकनीकी हस्तक्षेप की आवश्यकता है। भारत के देशी नस्ल के शूकर यथा डूम, माली, नियांग–मेघा, ज़ोवाक, टेनी वो को उनके उच्च मांस गुणवत्ता के लिए जाना जाता है और स्थानीय लोगों में प्रसिद्ध हैं। परन्तु, स्वदेशी नस्ल के शूकर निम्न विकास दर, एक बार में कम बच्चे देने की क्षमता, एवं वयस्क अवस्था में निम्न वजन के कारण विदेशी एवं संकर नस्ल के सूअरों के अपेक्षा अपनी लोकप्रियता खो रहे हैं। इस परिस्थिति में स्वदेशी शूकरों की बेहतर मांस गुणवत्ता, स्थानीय जलवायु के प्रति अनुकूलनशीलता, बेहतर रोग प्रतिरोधक क्षमता और कम लागत पर शूकर पालन जैसे गुणों पर गौर करते हुए वैज्ञानिक हस्तक्षेप की आवश्यकता है तभी स्वदेशी शूकर पालन को लोकप्रिय बनाया जा सकेगा जिसके फलस्वरूप देशी नस्ल के शूकरों का संरक्षण भी होगा एवं साथ ही साथ शूकर पालकों को उचित आर्थिक लाभ के संबंध में उल्लेखनीय परिणाम मिलेंगे।

इसके लिए निम्नलिखित वैज्ञानिक तकनीकियों का उपयोग किया जा सकता है। आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण गुणों के लिए श्रेष्ठ शूकरों का चयन कर उनका चयनात्मक प्रजनन के माध्यम से स्वदेशी नस्ल के शूकरों का आनुवंशिक सुधार किया जा सकता है ताकि उनका उत्पादन एवं प्रजनन क्षमता बढ़ायी जा सके जिसके फलस्वरूप विदेशी नस्ल के शूकरों के आयात पर निर्भरता को कम किया जा सकता है। प्रत्येक राज्य के लिए निर्धारित शूकर प्रजनन नीति को सुचारु रूप से पालन करना चाहिए। श्रेष्ठ शूकरों को भी अपने गुणों को अभिव्यक्त करने के लिए अच्छे खान–पान की आवश्यकता होती है। अतः शूकरों को उचित पोषक तत्वों से युक्त संतुलित आहार देना बहुत जरूरी है ताकि वे अपनी आनुवांशिक क्षमता का पूरी तरह से दोहन कर सकें। शूकर पालन में उच्च उत्पादन के लिए अच्छे प्रबंधन का एक अहम योगदान होता है जिसमे सही समय पर शूकरो का टीकाकरण करना, माँ से बच्चों को अलग करना, उचित जैवसुरक्षा के उपायों को अपनाना, नवजात शूकरों की देखभाल करना, उचित समय पर दाना पानी की उपलब्धता को सुनिश्चित करना शामिल हैं। इन उपायों को अपनाकर हम अपने शूकरों को *विनिंग* के पहले होने वाली मृत्यु से बचा सकते हैं जो कि भविष्य में अधिक आर्थिक लाभ को सुनिश्चित करेगा। इन वैज्ञानिक तकनीकों को अपनाने हेतु इनका प्रचार–प्रसार शूकर पालकों के समक्ष करना अति आवश्यक है जिससे कि देशी नस्ल के शूकर पालन करना किसानों के लिए आत्मनिर्भर एवं आर्थिक समृद्धि का साधन बनें। इस प्रकार वैज्ञानिक पद्धति को अपनाकर शूकरपालक स्वदेशी शूकरों के जरिये आर्थिक लाभ की प्राप्ति कर सकते हैं।

आत्मनिर्भर भारत की आधारशिला हैं हमारे गाँव

सत्येंद्र कुमार सिंह एवं योगेश कुमार शर्मा
चंद्रभानु गुप्त कृषि स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बक्शी का तालाब, लखनऊ

हमारे शीर्ष राजनीतिक नेतृत्व द्वारा आत्मनिर्भर भारत का आह्वान किया जाना एवं अक्टूबर के प्रथम सप्ताह में बापू की 151वीं जन्मतिथि का होना एक अभूतपूर्व संयोग रहा। हम यह इसलिए कह रहे हैं कि ग्रामीण भारत की आत्मनिर्भरता उसके विभिन्न विकासात्मक अवयवों पर गांधीवादी दर्शन का गहरा प्रभाव पड़ा है। आज हम जिस आत्मनिर्भर भारत का आह्वान करते हैं उसकी आधारशिला वास्तव में हमारे गाँव हैं जो छः लाख पचास हजार हैं, जहां भारत की आत्मा निवास करती हैं।

हम जिस आत्मनिर्भरता की बात करते हैं उसमें किसी तरह के संरक्षणवाद का पुट नहीं है, गांधी जी हमेशा कहते थे कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जरूरत भर का उत्पादन अवश्य करना चाहिए। आज 21वीं सदी के युग में भारी मशीनीकरण, औद्योगिक प्रगति, सूचना एवं तकनीकी की अभूतपूर्व उपलब्धियों ने विकास के पैमानों को बदल दिया है, अब जो तीव्र एवं शुद्ध निष्पादन करेगा वहीं इस दौड़ में अपने स्थान को बनाए रख पाएगा, विकास के इस नवीन प्रतिमान में हमारे गाँव कहीं पीछे न छूट जाएं यह विचार उठना लाजिमी है, क्योंकि गाँव एवं गाँव वालों को अपनी ही दुनिया में मस्त रहने वाला समझा जाता है।

विकास *मॉडल* में एक चर्चा गांव बनाम शहरों की भी चला करती है। फ्रांसीसी विचारक फर्ना शहरों को विकास का इंजन कहते हैं लेकिन मेरे अनुसार शहर यदि विकास का इंजन है तो हमारे गांव उस इंजन के लिए ईंधन का काम करते हैं। दूसरे शब्दों में अगर मैं अपनी बात कहूँ तो शहर वास्तव में प्रकृति से परजीवी होते हैं जिनके लिए गांव कच्चे माल के स्रोत के रूप में कार्य करते हैं। इतिहास साक्षी रहा है कभी भी गाँव का पूर्ण विनाश नहीं हुआ है जबकि शहरों में यह प्रक्रिया प्रायः होती रही है। हमारी चर्चा का मूल बिंदु यह है कि गांधीवादी विचारधारा हमारी ग्रामीण भारत का भविष्य क्या होना चाहिए विशेषकर राजनैतिक आर्थिक स्वरूप एवं क्रियाशील सांस्कृतिक एवं वैचारिक इकाई के रूप में स्थिति।

उपरोक्त संदर्भ में गांधी जी के कुछ विचार आज के समय अनुकरणीय हैं, ग्राम गणराज्य की कल्पना संसाधनों के संदर्भ में *ट्रस्टीशिप* का सिद्धांत, ग्राम न्यायालय, कृषि पर आधारित लघु उद्योग का विचार, मानवीय जीवन के विविध नैतिकता संबंधी जटिल मुद्दों पर उनके विचार, जो आज के उपभोक्तावादी समाज के लिए बेहद प्रासंगिक हैं, बापू कितने दूरदर्शी थे इसका अंदाजा हम इसी बात से लगा सकते हैं कि वह हमेशा कहा करते थे कि भारत जैसे बड़े देश में दिल्ली से आधारित राजनैतिक नेतृत्व धरातल पर प्रभावी परिवर्तन नहीं ला सकता है इसलिए उन्होंने ग्राम गणराज्य की संकल्पना प्रस्तुत की। गाँव के लोगों के लिए गाँव के लोगों द्वारा शासन, हमने इस विचार का सम्मान करते हुए 73वें एवं 74वें संविधान संशोधन द्वारा इन संस्थाओं को संस्थागत स्वरूप प्रदान कर दिया। वास्तव में हम जिस लोकतंत्र की बात करते हैं उसका स्वरूप हमारी ग्रामीण राजनीतिक संरचना में ही निहित था, अब इस राजनीतिक व्यवस्था के साथ आवश्यकता थी कि ग्राम आधारित आर्थिक विकास की एक नीति। गांधीजी को प्रायः भारी औद्योगीकरण का विरोधी बताया जाता है विशेषकर नेहरू से हुई उनकी बातचीत के आधार पर लेकिन हमें यह समझना होगा कि गांधी जिस विकास की बात करते थे, वह विकास वास्तव में व्यक्ति केंद्रित न होकर समाज पर आधारित था क्योंकि कुटीर उद्योग, हस्तशिल्प, छोटी सी प्रसंस्करण इकाईयां, गेहूँ से आटा बनाना, सरसों से तेल बनाना, कपास से रूई साफ करना, यह कार्य ग्रामीण विकास के लिए अपरिहार्य होने के साथ ही भारी उद्योगों के लिए एक मध्यवर्ती उद्यम का कार्य करते थे। अतः हम गाँधी जी को औद्योगिक विकास के सिद्धांत को व्यापक संदर्भ में समझें तो उनका ग्रामीण विकास का मॉडल वास्तव में अधिकतम लोगों के जीवन में प्रभावी परिवर्तन लाने से संबंधित था न कि कुछ व्यक्तियों के हाथों में संसाधनों का संकेंद्रण। राष्ट्रीय संसाधन किसी देश के विकास हेतु महत्त्वपूर्ण होते हैं, संसाधनों का संरक्षण उनसे उत्पन्न लाभ का साम्यपूर्ण वितरण विकास की अवधारणा की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। भूमि तथा प्राकृतिक संसाधनों के संदर्भ में

गांधीजी का सरपरस्ती का सिद्धांत, जिसके अंतर्गत वे कहते हैं कि, सबै भूमि गोपाल की, अर्थात सारे संसाधन वास्तव में प्रभु के हैं और उन्हीं की इच्छा के अनुरूप इसका संचालन किया जाना चाहिए अर्थात न किसी को अधिक मिले, न किसी को कम मिले संसाधनों का अधिकतम उपयोग कर ज्यादा से ज्यादा लोगों के जीवन में बदलाव लाना हमारा उद्देश्य होना चाहिए। ग्रामीण राजनीतिक संस्थाएं वर्तमान में संक्रमण के दौर से गुजर रही है, आज हम और आप अपने चारों तरफ आधुनिक न्यायिक प्रशासनिक संस्थाओं का एक जाल सा देखते हैं, लेकिन परंपरागत ग्रामीण व्यवस्था अभी भी हमारे हिसाब से हमारे लिए एक बेहतर विकल्प है, ग्रामीण स्तर के मामलों को सुलझाने की हमारी सरपंच प्रणाली आधुनिक संस्थाओं की तुलना में ज्यादा महत्वपूर्ण हो सकती है। गाँव में ज्यादातर झगड़े मकान, घर के सामने रास्ते, जानवर, पानी निकासी, खेत की मेड़ इत्यादि से संबंधित होते हैं। इन मामलों का निपटान यदि ग्रामीण स्तर पर ही कुछ वरिष्ठजनों के नेतृत्व में हो जाए तो इससे बेहतर कोई विकल्प नहीं हो सकता है। ग्राम न्यायालय की महत्ता को गांधी जी बखूबी समझते थे इसीलिए वह हमेशा गाँवों को एक स्वायत्त इकाई के रूप में मजबूत होते देखना चाहते थे। गांधीवादी दर्शन मानवीय स्वभाव के दुर्गुणों समाज में व्याप्त समस्याओं तथा मानव मूल्य के महत्व के संदर्भ में विचारणीय है। आज के दौर में जिस तरह उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रसार हो रहा है। गांधी जी के कुछ सिद्धांत महत्वपूर्ण हो जाते हैं, *यंग इंडिया* में 1926 में गांधी जी ने सात पापों की संकल्पना प्रस्तुत की जहाँ वे श्रमविहीन संपत्ति, मानवताविहीन विज्ञान, त्यागविहीन उपासना, विवेकविहीन सुख का निषेध करते हैं। ये विचार आज के दौर के लिए उच्चतम मानवीय मूल्यों की पराकाष्ठा है। भारत जो दुनिया की एक बड़ी गरीब, कुपोषित तथा अशिक्षित आबादी का घर है वहां मानव सेवा एवं सामाजिक विकास में व्यापक परिवर्तन ला सकता है। गांधी जी मानव सेवा को सबसे बड़ा धर्म कहते हैं। अहिंसा एवं क्रोध मानव स्वभाव के दो सबसे बड़े दुर्गुण हैं। अहिंसा गांधी के लिए सर्वोच्च साध्य की तरह था, हिंसा का एक लंबा इतिहास रहा है, वर्तमान में भी यह जारी है और भविष्य में भी या विभिन्न रूपों में प्रकट होती रहेगी। अतः गांधी जी का अहिंसावादी विचार समाज के लिए हमेशा प्रासंगिक बना रहेगा।

बापू भारत के लिए बीसवीं सदी की सबसे महान उपलब्धि की तरह हैं। इनका जीवन दर्शन हमेशा व्यक्ति समाज एवं राष्ट्र को एक नई दिशा प्रदान करेगा जहां मानववाद, प्रेम, सभी के लिए स्थान तथा सहिष्णुता जैसे तत्व विद्यमान रहेंगे।

बापू की नजर में ग्रामीण भारत एक ऐसा भारत होगा जहां सभी संस्कृतियों का स्थान होगा हमारे ग्राम राजनीतिक तथा आर्थिक दृष्टि से एक सशक्त स्वायत्त इकाई होंगे जो एक नए भारत की संरचना का निर्माण करेंगे।

रागी और सहजन आधारित पौष्टिक सत्तू का विकास और सुदृढ़ीकरण

डी.सी. श्रीवास्तव, आर.के. झाडे, पी.एल. अम्बुलकर एवं सुरेन्द्र पन्नासे
जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, कृषि विज्ञान केंद्र, छिंदवाड़ा, मध्य प्रदेश

भारतीय पारंपरिक भोजन सत्तू आमतौर पर भुने हुए चने और गेहूं/जौ के आटे से बनाया जाता है। रागी आधारित सत्तू को 70:30 के अनुपात में भुने हुए चने और भुने हुए रागी के आटे से तैयार किया गया था और इसे और अधिक पौष्टिक बनाने के लिए 10 प्रतिशत *स्किम्ड मिल्क पाउडर* मिलाकर इसे और बेहतर बनाया गया था। चीनी 40 प्रतिशत मिश्रण के बाद, उत्पाद का संवेदी मूल्यों मूल्यांकन किया गया था स्थानीय और रागी एमआर–2 में 10 प्रतिशत *स्किम्ड मिल्क पाउडर* और 10 प्रतिशत सहजन की पत्ती का पाउडर मिलाने पर पौष्टिक रागी सत्तू के लिए क्रमशः 7.8 से 8.6 और 7.9 से 9.2 के बीच संवेदी मूल्यों का पता लगाया। इस प्रकार, यह निष्कर्ष निकाला गया कि उत्पाद की संवेदी गुणवत्ता पर किसी भी प्रतिकूल प्रभाव के बिना रागी को गेहूँ के स्थान पर अधिकतम 25 प्रतिशत तक संतोषजनक उपयोग किया जा सकता है।

पौष्टिक रागी सत्तू से पता चला कि दूध पाउडर के मिलाने पर, पौष्टिकत्ता और गुणवत्ता दोनों के संदर्भ में उत्पाद की गुणवत्ता में वृद्धि हुई थी। स्थानीय और रागी एमआर–2 से विकसित पौष्टिक रागी सत्तू में 13.72 और 14.56 प्रोटीन, 1.25 और 1.17 वसा, 75.30 और 75.34 कार्बोहाइड्रेट, 0.77 और 0.10 राख, 1.10 और 1.30 कच्चे *फाइबर* शामिल थे।

रागी सत्तू के विभिन्न प्रकारों में, *मिल्क पाउडर* के साथ अत्यधिक पौष्टिक रागी सत्तू को सबसे अच्छा माना जा सकता है और विशेष रूप से पौष्टिक रागी सत्तू से पता चला कि दूध पाउडर के मिलाने पर अधिक मात्रा में कैल्शियम की वृद्धि हुई थी। इसलिए, रागी के आटे से बने सत्तू को छोटे बच्चों, गर्भवती और स्तनपान कराने वाली माताओं के लिए कैल्शियम और फाइबर का अच्छा और सस्ता स्रोत माना जा सकता है।

आत्मनिर्भर भारत बनाने में हम सबको देना होगा अपना–अपना यथासंभव योगदान

आशीष सिंह यादव, ब्रह्म प्रकाश, कामिनी सिंह, अश्विनी कुमार शर्मा, अजय कुमार साह एवं अश्विनी दत्त पाठक

भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

भारत प्राचीन काल से ही आत्मनिर्भर रहा है। भारत की कला और संस्कृति इसका स्पष्ट प्रमाण है तथा इसी कारण भारत को सोने की चिड़िया कहा जाता था। परंतु कालांतर में अंग्रेजों की परतंत्रता के समयान्तराल में भारत की अर्थव्यवस्था कमजोर होती गई। अंग्रेजों की नीतियों के चलते ब्रिटिश सरकार ने अपने देश की अर्थव्यवस्था मजबूत की। स्वतंत्रता के बाद भारत ने अपनी अर्थव्यवस्था को पुनः धीरे–धीरे मजबूत करना प्रारम्भ कर दिया तथा भारत भी विश्व की मजबूत अर्थव्यवस्थाओं में अपना नाम लिखने मे समर्थ हो गया। परंतु वर्ष 2019 में चीन से उत्पन्न कोरोना महामारी ने सभी देशों की अर्थव्यवस्था को भारी क्षति पहुंचाई। भारत भी इसका अपवाद नहीं रहा। कोरोना महामारी के इस संकटकाल में भारत सरकार ने देश को पुनः आत्मनिर्भर बनाने का बीड़ा उठाया है।

आत्मनिर्भर होने का अर्थ है कि आपके पास जो स्वयं की प्रतिभा एवं कौशल है उसके माध्यम से एक छोटे स्तर पर स्वयं को प्रगति के मार्ग पर आगे बढ़ाना है या फिर बड़े स्तर पर अपने राष्ट्र के लिए कुछ सार्थक योगदान देना है। यदि हम स्वयं को आत्मनिर्भर बनाएं तो हमारा परिवार आत्मनिर्भर हो जाएगा। यदि हमारे गाँव के सभी परिवार आत्मनिर्भर होंगे, तो गाँव भी आत्मनिर्भर हो जाएंगे। यदि एक नगर के सभी गाँव आत्मनिर्भर हो जाएँ तो नगर भी आत्मनिर्भर हो जाएंगे। यदि सभी नगर आत्मनिर्भर हो जाएँ, तो प्रदेश आत्मनिर्भर हो जाएगा। यदि सभी प्रदेश आत्मनिर्भर हो जाएँ तो देश भी आत्मनिर्भर हो जाएगा। इस प्रकार, हम सबको राष्ट्र को आत्मनिर्भर बनाने में अपना–अपना सार्थक योगदान देना होगा।

आत्मनिर्भर भारत के रुप

यद्यपि आत्मनिर्भरता शब्द कोई नवीन शब्द नहीं है। ग्रामीण क्षेत्रों में कुटीर उद्योगों के द्वारा बनाई गई वस्तुओं से प्राप्त आय से मिली धनराशि से परिवार का खर्च चलाने को ही आत्मनिर्भरता कहा जाता है। कुटीर उद्योग या घर में निर्मित वस्तुओं को अपने आवास के निकटवर्ती बाजारों में ही बेचा जाता है, यदि किसी वस्तु की सामग्री अच्छी गुणवत्ता की होती है तो अन्य स्थानों पर भी इन वस्तुओं की मांग बढ़ जाती है। आम बोल–चाल की भाषा में कच्चे माल से हमारे घरों मे निर्मित वस्तुएँ जो जीवन के उपयोग के लिए बनाई जाती हैं, *लोकल* या स्थानीय सामग्री कहलाती हैं। यह निश्चित ही आत्मनिर्भता का एक रुप है। कुटीर उद्योग एवं मत्स्य पालन इत्यादि आत्मनिर्भर भारत के कुछ उदाहरण हैं।

आत्मनिर्भरता की श्रेणी में खेती, मत्स्य पालन, आंगनवाड़ी में निर्मित स्थानीय सामग्री इत्यादि अनेक प्रकार के कार्य हैं जो कि हमें आत्मनिर्भरता प्रदान करने में सहायक होते हैं। इस प्रकार से, हम अपने परिवार से अपने गाँव, अपने गाँव से अपने जिले एक दूसरे से जोड़कर देखें तो इस प्रकार सम्पूर्ण राष्ट्र को आत्मनिर्भर बनाने में हम अपना योगदान दे सकते हैं।

स्थानीय वस्तुओं का निर्माण करने में हम सुगमता से प्राप्त हो जाने वाले प्राकृतिक संसाधनों और कच्चे मालों का प्रयोग करके अपने निकटवर्ती हाटों, बाजारों व मेलों में इसे बेच सकते हैं। इस प्रकार हम स्वयं के साथ–साथ आत्मनिर्भर भारत की राह में अपना योगदान दे सकते हैं और हम सब मिलकर एक आत्मनिर्भर राष्ट्र निर्माण के सपने को साकार कर देश को मजबूत एवं समृद्ध बनाने में सहयोग कर सकते हैं।

दालों के जैवसंवर्धन द्वारा पोषण सुरक्षा में आत्मनिर्भरता

अभिषेक कुमार सिंह, ब्रह्म प्रकाश, मुकुन्द कुमार, आशीष सिंह यादव, ओम प्रकाश एवं अजय कुमार साह

भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ 226 002

मनुष्यों की उचित वृद्धि एवं विकास के लिए पौष्टिक आहार अत्यंत आवश्यक है। पौष्टिक आहार मनुष्यों को रोग से बचाने के साथ–साथ शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ रहने के लिए शरीर का चयापचय भी सही रखता है। हमारी दैनिक चयापचयिक आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु भोजन हमें ऊर्जा, प्रोटीन, आवश्यक वसा, विटामिन, एंटीऑक्सीडेंट्स तथा खनिज लवण प्रदान करते हैं। इनमें से अधिकांश पोषक तत्व हमारे शरीर में संश्लेषित नहीं हो पाते हैं। अतः इनको भोजन के माध्यम से ही शरीर में पहुँचाना आवश्यक हो जाता है। इसके साथ ही, भोजन में उपस्थित अपोषक तत्व भी मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। असंतुलित भोजन के उपभोग से विश्व भर में करोड़ों व्यक्ति खराब स्वास्थ्य तथा सामाजिक– आर्थिक दशाओं के कारण प्रभावित होते हैं। अभी तक, उच्च उत्पादकता वाली क़िस्मों का विकास देश की बढ़ती आबादी को भोजन उपलब्ध कराने के लिए किया जाता था। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने धान्यों, दालों, तिलहन, सब्जियों एवं फलों की पौष्टिक गुणवत्ता में सुधार किया है। अभी तक विभिन्न फसलों की 5,600 से अधिक किस्में व्यावसायिक खेती हेतु संस्तुत की जा चुकी हैं जिसमें जैवसंवर्धित क़िस्मों की संख्या लगभग नगण्य थी। परंतु अब जैवसंवर्धित क़िस्मों का विकास हो चुका है जो देश में पोषण सुरक्षा को प्राप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएंगी।

संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास लक्ष्यों ने वैश्विक समुदायों से खाद्य सुरक्षा के साथ–साथ पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करने का लक्ष्य रखा है। विश्व के लगभग दो अरब व्यक्ति आज कुपोषण का शिकार हैं। विश्व के 35% से अधिक गरीब दक्षिण एशिया में ही निवास करते हैं तथा भारत की 21.9% आबादी गरीबी में जीवनयापन कर रहे हैं। भारत में 19.46 करोड़ व्यक्ति कुपोषण के शिकार हैं जबकि 38.4% पाँच वर्ष से छोटे बच्चे बौने हैं तथा 35.7% बच्चों का वजन अपनी आयु की तुलना में कम पाया गया है। भारत को प्रति वर्ष 12 अरब डॉलर से अधिक का नुकसान विटामिन तथा खनिजों की कमी के कारण हो रहा है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने कुपोषण को दूर करने हेतु विभिन्न फसलों का जैवसंवर्धन करना टिकाऊ एवं लागत प्रभावी समाधान पाया है। अभी तक भाकृअनुप ने एक दर्जन से अधिक जैवसंवर्धित क़िस्मों का विकास किया है जिसको खाद्य श्रृंखला में समेकित करके मानव तथा पशुओं की आबादी के स्वास्थ्य को बेहतर किया जा सकता है।

भारत विश्व में सर्वाधिक दलहन उत्पादन करने वाला देश है जहां चना, अरहर, मूंग, उर्द, मसूर, मटर, राजमा, लोबिया, मोंठ, कुल्थी, ग्वार जैसी एक दर्जन से अधिक दलहनी फसलें उगाई जाती हैं। भारत में दलहनी फसलें कृषि योग्य मृदाओं तथा मानव स्वास्थ्य के लिए अत्यंत आवश्यक हैं। दलहनी फसलों की जड़ों की गांठों में उपस्थित *राइज़ोबियम* जीवाणु वायुमंडल से नाइट्रोजन लेकर जड़ द्वारा मृदा में स्थिरीकरण करके मृदा की उर्वरा शक्ति को अक्षुण्ण बनाए रखने की अद्‌भुत क्षमता रखते हैं। दालें कृषि प्रणाली में प्रमुख रूप से अवयव होने तथा प्रोटीन का प्रचुर स्त्रोत होने के कारण शाकाहारी लोगों के लिए उत्कृष्ट प्रोटीन का स्त्रोत हैं। विश्व की अधिकांश जनसंख्या प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से अपनी पोषण संबंधी दैनिक आवश्यकताओं के लिए पादप आधारित खाद्य पदार्थों पर निर्भर रहती है। कोविड–19 महामारी के फैलने के पश्चात पादप आधारित खाद्य पदार्थों के उपयोग का महत्व इनके सुरक्षित, पर्यावरण हितैषी तथा मानव उपभोग के लिए साफ होने के कारण और भी बढ़ गया है। दालें विभिन्न पादप आधारित खाद्य पदार्थों में आहारीय प्रोटीन का महत्वपूर्ण श्रोत होने के साथ–साथ आहारीय रेशों तथा कम *ग्लाइसीमिक इंडेक्स* के साथ *कॉम्प्लेक्स कार्बोहाइड्रेट* का भी उत्कृष्ट श्रोत होती हैं। दालों में विभिन्न जैवसक्रिय यौगिकों विशेषकर

फिनोलिक् अम्लों, *फ्लेवोनोइड्स* तथा *टेनिन्स* की उपस्थिति के कारण दालें हमारे शरीर की चयापचिक तथा कार्यिकी प्रक्रियाओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। दालें 15 से अधिक आवश्यक खनिज लवणों तथा विटामिनों का अच्छा श्रोत होने के बावजूद कई अपोषक तत्वों की उपस्थिति के कारण इनकी जैव उपलब्धता अत्यंत कम है। भारत जैसे शाकाहारी बाहुल्य देश में केवल मानव पोषण में ही नहीं, अपितु पशुओं की खाद्य सुरक्षा तथा पर्यावरणीय टिकाऊपन में भी विशेष भूमिका अदा करती हैं। मानव पोषण शृंखला में इन फसलों के महत्व को दृष्टिगत रखते हुए यह आवश्यक है कि हमारी दालें पोषक तत्वों के प्रचुर श्रोत होने के साथ–साथ आसानी से पाचक तथा न्यूनतम अपोषक तत्वों की मात्रा जैसे गुणों से युक्त हों तथा प्रोटीन से कुपोषण के साथ–साथ छिपी भुखमरी को दूर करने के लिए अत्यंत आवश्यक सूक्ष्म पोषक तत्वों की उच्च मात्रा से भी जैवसंवर्धित होनी चाहिए।

दालों में जैवसंवर्धन क्रमबद्ध पादप प्रजनन के द्वारा किसी किस्म की आनुवांशिक क्षमता के समावेश, सस्य हस्तक्षेप तथा पराजीनी समावेश द्वारा संभव है। जैवसंवर्धन के सभी उपायों में पादप प्रजनन की तकनीक सर्वाधिक विश्वसनीय मानी जाती है जो किसी भी जीनप्रारूप में निहित पोषण की रूप–रेखा को सुधारती है तथा मनोवांछित लक्षण के लिए उपलब्ध प्राकृतिक तथा विकसित आनुवांशिक परिवर्तनशीलता पर निर्भर करती है। आजकल सम्पूर्ण विश्व में पादप प्रजनन के प्रयासों द्वारा विभिन्न दलहनी फसलों के जैवसंवर्धन का कार्य सफलतापूर्वक किया जा रहा है। चना, मटर, मसूर तथा मूंग जैसी फसलों के प्रजनन कार्यक्रमों के अंतर्गत आनुवांशिक जैवसंवर्धन का कार्य सतत रूप से प्रगति पर है। भाकृअनुप–भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर ने मसूर की आईपीएल 220 किस्म का विकास किया है जिसमें लौह तत्व के साथ–साथ जस्ते की भी भरपूर मात्रा समाहित है जो उपभोक्ताओं के स्वास्थ्य के लिए अत्यंत लाभप्रद है। इसी क्रम में, भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा मसूर किस्म "पूसा अगेती" का विकास किया गया है जिसमें लौह तत्व की मात्रा 65 पीपीएम पाई गई है जो अन्य लोकप्रिय क़िस्मों की तुलना में सर्वाधिक है। इसी प्रकार, भाकृअनुप–भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर द्वारा विकसित देसी चना की किस्म आईपीसी 2005–62 में भी 26% से अधिक प्रोटीन की मात्रा होती है। *हार्वेस्ट प्लस* कार्यक्रम के अंतर्गत विभिन्न दालों के एक दर्जन से अधिक जैवसंवर्धित जीनप्रारूपों की पहचान की जा चुकी है जिनका मूल्यांकन किया जा रहा है। जैवसंवर्धन का एक अन्य विकल्प सस्य क्रियाओं द्वारा हस्तक्षेप करने से है जिसमें उर्वरकों के पर्णीय छिड़काव, मृदा में खनिज उर्वरकों के प्रयोग तथा पादप वृद्धि नियामक तथा लाभदायक सूक्ष्मजीवाणुओं द्वारा मृदा उपचार समाहित हैं। आनुवांशिक अभियंत्रण भी जैवसंवर्धन के लिए अच्छा विकल्प है जिसका लक्ष्य दालों में सूक्ष्म पोषक तत्वों की मात्रा में वृद्धि करने के लिए चयापचिक क्रियाओं को रूपांतरित करना है। *गोल्डेन राइस* जिसको *बीटा कैरोटीन (प्रो–विटामिन ए)* को उत्पादित करने के लिए आनुवांशिक रूप से अभियंत्रित किया गया है, आनुवांशिक अभियंत्रण का सर्वोत्तम उदाहरण है। आनुवांशिक अभियंत्रण द्वारा मल्टीविटामिन मक्का में तीन विटामिन (*बीटा कैरोटिन, एस्कोर्बेट* तथा *फोलेट*) की मात्रा में वृद्धि की गई है। विभिन्न दालों में भी सूक्ष्म पोषक तत्वों की मात्रा में वृद्धि करने के साथ–साथ इनकी जैव उपलब्धता बढ़ाने हेतु तथा अपोषक तत्वों की मात्रा को कम करने हेतु भी उपरोक्त विधि का प्रयोग किया जा सकता है।

इस प्रकार, देश में विकसित विभिन्न जैवसंवर्धित खाद्य उत्पादों से भारत खाद्य सुरक्षा के साथ–साथ पोषण सुरक्षा सुनिश्चित कर सकेगा जिससे सभी भारतीय स्वस्थ्, ऊर्जावान एवं दीर्घायु हो सकेंगे।

संपादक परिचय

नाम	पदनाम	
डॉ. अजय कुमार साह	प्रधान वैज्ञानिक (कृषि प्रसार) प्रभारी, प्रसार एवं प्रशिक्षण प्रभारी, राजभाषा एवं सचिव नराकास (कार्यालय–3), भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान लखनऊ	
डॉ. मनोज कुमार त्रिपाठी	प्रधान वैज्ञानिक फसल उत्पादन विभाग भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान लखनऊ	
डॉ. विनय कुमार सिंह	प्रधान वैज्ञानिक फसल उत्पादन विभाग भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान लखनऊ	
डॉ. श्वेता सिंह	वैज्ञानिक (वरिष्ठ वेतनमान) फसल सुरक्षा विभाग भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान लखनऊ	
श्री ब्रह्म प्रकाश	मुख्य तकनीकी अधिकारी प्राथमिकता निर्धारण, अनुश्रवण व मूल्यांकन इकाई भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान लखनऊ	
श्री अभिषेक कुमार सिंह	वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी (राजभाषा) राजभाषा प्रकोष्ठ भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान लखनऊ	

ISBN : 978-81-954349-6-1

संस्थान परिचय

16 फरवरी 1952 को स्थापित भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान 1 अप्रैल, 1969 को भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् (*आई.सी.ए.आर.*) को हस्तांतरित हुआ तथा आज *आईएसओ* प्रमाणित संस्था है। राष्ट्रीय स्तर पर इसकी गतिविधियों को समाविष्ट करने के लिए इसका एक क्षेत्रीय केंद्र, मोतीपुर (बिहार) तथा दो दूरस्थ केन्द्र; जैव नियंत्रण केंद्र, प्रवरानगर (महाराष्ट्र) व चुकंदर प्रजनन केंद्र, मुक्तेश्वर (उत्तराखंड) में स्थापित हैं। मुख्यालय पर यह पाँच विभागों यथा फसल सुधार, फसल उत्पादन, फसल सुरक्षा, पादप दैहिकी एवं जैवरसायन तथा कृषि अभियांत्रिकी के साथ अनुसंधानरत है। इन विभागों के अलावा, संस्थान के पास मृदा, जल एवं पादप नमूनों के विश्लेषण हेतु केन्द्रीय सुविधा, रस गुणवत्ता विश्लेषण प्रयोगशाला, कृषि-मौसम प्रयोगशाला (मौसम विज्ञान सम्बन्धी उत्तम वेधशाला सहित) हैं जोकि मौसमी उतार-चढ़ाव एवं जलवायु से सम्बन्धित आंकड़े उपलब्ध कराती है। संस्थान का प्रसार एवं प्रशिक्षण अनुभाग गन्ना तकनीकों के त्वरित प्रग्रहण के लिए शोध एवं विकास कार्यक्रमों को अनवरत संचालित करता है। यहाँ एक सुव्यवस्थित गुड़ इकाई है जिसमें गुणवत्ता सुधार हेतु तकनीक, प्रतिस्पर्धी मूल्य पर गुड़ एवं अन्य मूल्य संवर्धित उत्पाद के अलावा, गुड़ भंडारण के पहलुओं पर अनुसंधान किया जाता है। इस संस्थान में गन्ने की अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना तथा लखनऊ जिले का कृषि विज्ञान केन्द्र भी अवस्थित हैं। संस्थान के प्रशासनिक नियंत्रण में एक अन्य कृषि विज्ञान केंद्र, लखीमपुर-खीरी में कार्यरत है।

भाकृअनुप-भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान
रायबरेली रोड, पोस्ट दिलकुशा, लखनऊ - 226002, भारत
फोन : 0522-2480726, 2491801
ई-मेल : director.sugarcane@icar.gov.in, फैक्स : 091-522-2480738
वेबसाइट : iisr.icar.gov.in